॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

१७

नारायणविरचितः

हितोपदेश-मित्रलाभः

(अश्लीलांश विवर्जितः)

'रश्मिकला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहितः

व्याख्याकारः

पं० केशवदेव शास्त्री

मथुरास्थश्रीमाथुरचतुर्वेदसंस्कृतमहाविद्यालयस्य

अवकाशप्राप्ताध्यापकः

सम्पादकः

कपिलदेव गिरि, साहित्याचार्यः, एम. ए.

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

१७

नारायणविरचितः

हितोपदेश-मित्रलाभः

(अश्लीलांश विवर्जितः)

'रश्मिकला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहितः

व्याख्याकारः

पं० केशवदेव शास्त्री

मथुरास्थश्रीमाथुरचतुर्वेदसंस्कृतमहाविद्यालयस्य

अवकाशप्राप्ताध्यापकः

सम्पादकः

कपिलदेव गिरि, साहित्याचार्यः, एम. ए.

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० ३२
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर
दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

द्वितीय संस्करण १९८१

मूल्य रु०

अन्य प्राप्तिस्थान

१. चौखम्भा संस्कृत संस्थान
पो० बाक्स नं० १३९
जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : ६५८८९

२. चौखम्भा विश्वभारती
पो० बाक्स नं० १३९
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी
फोन : ६५४४४

३. चौखम्भा भारती अकादमी
आकर ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : ६३३५४

मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

GOKULDAS SANSKRIT SERIES
NO. 17

HITOPADEŚA-MITRALĀBHA

OF

NĀRAYAṆA

With

'Raśmikalā' Sanskrit Hindi Commentary

By

Pt. KEŚAVADEVA ŚĀSTRĪ

Śrī Māthurchaturveda Sanskrit Mahāvidyālaya, Mathura.

Edited by

KAPILA DEO GIRI, Sāhityāchārya, M. A.

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

A House of Oriental and Antiquarian Books

VARANASI DELHI

Publishers :
CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (India)
Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar
DELHI-110007 Phone : 221617

Second Edition 1981
Price Rs. 6-00

Also can be had from

1. **CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN**
   Post Box No. 139,
   Jadau Bhawan, K. 37/116
   Gopal Mandir Lane
   VARANASI-221001 (India)
   Phone : 65889

2. **CHAUKHAMBHA VISVABHARATI**
   Post Box No. 139,
   Chowk (Opposite Chitra Cinema)
   VARANASI-221001
   Phone : 65444

3. **CHAUKHAMBHA BHARATI ACADEMY**
   Gokul Bhawan, K. 37/109
   Gopal Mandir Lane
   VARANASI-221001 (India)
   Phone : 63354

भूमिका

कथा की उद्गम भूमि

कथा कहने और सुनने की परम्परा बहुत पुरानी है। कथा के पात्रों के पास दो अमृत कलश हैं। एक कहने वाले के पास और दूसरा सुनने वाले के पास। कहने वाला सुनने वाले के पात्र में निरंतर उड़ेलता जाता है फिर भी यह अमृत कलश रीता नहीं होता अपितु बढ़ता ही जाता है। इसे हम 'लोककथा' कहें चाहे 'दन्तकथा' के नाम से पुकारें यह कथा साहित्य के कलेवर में मेरुदण्ड का कार्य करता है। देश, पात्र और परिस्थिति के अनुसार इस में परिवर्तन होता गया है। भगवान् शिव पार्वती को निरंतर कथा सुनाते रहते हैं। यही कथा कागभुशुण्डि-गरुड़-संवाद में है। फिर भारद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद में भी इसी का पुट है। इसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि अपनी कथा रामायण के माध्यम से और महर्षि व्यासजी अपनी कथा भागवत, महाभारत तथा पुराणों के माध्यम से प्रचार करते हैं।

ऋग्वेद के 'सम्वादसूक्तों' में कथा के बीज सुरक्षित हैं। फिर संहिता, उपनिषदों आदि में आकर यह कथासाहित्य विशाल वटवृक्ष का रूप ग्रहण करता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य, जैन तथा बौद्ध साहित्य में कथा अपनी चरम सीमा पर है। भारत के तीनों धार्मिक परम्पराओं में यह अक्षुण्ण रूप में प्रवाहित हुई है। इन तीनों धर्माचार्यों ने अपनी बातों की पुष्टि में कथाओं का पुट देकर जनता का मनोरंजन किया, साथ ही सर्वसामान्य जन के नैतिक धरातल को भी ऊँचा उठाया। अतः भारतीय कथा-साहित्य का उद्गम स्थल भारतदेश है। इसका उद्देश्य महान् रहा है। आज भी ये कथाएँ हजारों वर्ष की अवधि बिताकर भी अपना सत्य सन्देश हमें सुनाती हैं। ये कथाएँ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में; फिर प्रान्तीय बोलियों में उत्तरोत्तर सजित हुई हैं और यहीं से होकर कभी यूरोपीय देशों तथा पश्चिमी जगत् में पहुँची हैं; वहाँ के जन जीवन में, रहन-सहन में, आचार-विचार में दूध में पानी की तरह घुल मिलकर प्रीति भाजन बनीं हैं। इन भारतीय नीतिकथाओं में लोकप्रिय है 'पंचतन्त्र' ; जिसका 'हितोपदेश' नूतन संस्करण के रूप में सज-धज कर नारायण की सूझ-बूझ से संस्कृत साहित्य को अवदान मिला है।

हितोपदेश

नीतिकथाओं में 'हितोपदेश का दूसरा स्थान है। पहला स्थान 'पञ्चतन्त्र' को प्राप्त है यद्यपि 'पञ्चतन्त्र' आज अपने मूल रूप में नहीं रह गया है। मूल रूप किस विधा को लिये हुए था यह कहना आज कठिन है; फिर भी इसके विभिन्न उपलब्ध अनुवादों के आधार पर इसकी रचना ई० की तीसरी शताब्दी के लगभग निश्चित की गयी है।

प्रस्तुत 'हितोपदेश' का निर्माण 'पञ्चतन्त्र' के आधार पर हुआ है, साथ ही अन्य अज्ञात नामा कथा-ग्रन्थों से भी यह उपदेशप्रद तथा नीतिविषयक रस ग्रहण करके अनुप्राणित है। इसका स्पष्ट उल्लेख स्वयं इसके रचयिता ने ही किया है यथा :—

पञ्चतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते।

फिर यह भी बताया है कि यहाँ कथा के व्याज से नीति की बातें कही गयी हैं (कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते) और इसका नाम 'हितोपदेश' है :—

श्रुतो हितोपदेशोऽयमिति।

रचयिता अपनी रचना में पूर्णतः सफल है इसमें कोई सन्देह नहीं। पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर मानवोचित आचार-विचार, आहार-विहारों का आरोप कर हृदय को चुम्बक की तरह छूनेवाली शैली से कथाएँ कही गयी हैं। सचमुच यह कितनी आश्चर्य में डालने वाली कथाएँ हैं। मनुष्य ही मनुष्य के बीच कथा कहने का हकदार है परन्तु यहाँ तो पशु-पक्षी नीति की बात करते हैं; एक दूसरे की विपत्ति में मानव मन की तरह सुख-दुःख की अनुभूति करते हैं; आँखों से आँसू बहाते हैं; मित्र और शत्रु की परख रखते हैं, अपने मित्रों के कल्याण के लिये उपदेश देते हैं। मनुष्य से न सीखें तो इन पशु-पक्षियों से सद्भाव एवं सद्व्यवहार की बात सीखें। यही इसका सत्य सन्देश है। यह कितनी हृदय-ग्राही अनमोल कल्पना है। सच में ऐसी मनुष्येतर कथाशिल्प की कल्पना का मिसाल मिलना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। इन कथाओं में एक कथा के भीतर दूसरी कथा को गूंथ दिया गया है और उसकी समाप्ति शिक्षा या किसी उपदेश में हुई है। एक उपदेशात्मक श्लोक को शीर्षक बनाकर उसकी स्पष्टता के लिये गद्य भाग में कथा शुरू की गयी है। कथा की समाप्ति पर उसका सम्बन्ध किसी अन्य कथा से जोड़कर आगे की कथा आरम्भ की गयी है।

यह संस्कृत शिक्षा की पहली पुस्तक मानी जाती है। इसकी शब्दावली में सामासिक जटिलता नहीं है; अत्यन्त सुगम, सहजबोध चित्ताकर्षक शैली में रचित है। पंचतन्त्र में तो पाँच तन्त्र (भाग) हैं (मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धि-विग्रह, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षित-कारक); परन्तु हितोपदेश में चार भाग हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह तथा सन्धि। इन्हीं चारों में पंचतन्त्र के पाँचों तन्त्र प्रकारान्तर से समा गये हैं। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यही है कि यूरोप आदि की अनेक भाषाओं में यह अनूदित हैं तथा यूरोपीय

साहित्य को पूर्णरूप से प्रभावित किया है। इसीलिये पंचतन्त्र को कथा-साहित्य की विभूति के रूप में स्मरण किया जाता है तथा उससे संग्रहीत 'हितोपदेश' की कथाओं को भी गौरवशाली पद मिला है। कच्चे घड़े की रेखा की भाँति सुकुमार मति के बालकों को कथा के माध्यम से नीति-संबन्धी शिक्षा देनेवाला 'हितोपदेश' से बढ़कर कोई रचना संस्कृत साहित्य में नहीं है।

देशकाल-परिस्थिति एवं रचना-काल

हितोपदेश की कथाओं से देशकाल एवं परिस्थिति का यथार्थ परिचय नहीं मिलता; फिर भी कथाओं में जो कुछ प्रतीक तथा पारिभाषिक शब्द आये हैं उनके अनुशीलन से इसकी उद्‌गमभूमि का कुछ आभास मिलता है। मित्रलाभ की सातवीं कथा में 'गौरीव्रत' का उल्लेख है, जिसमें वस्त्रालङ्कारयुक्त कुलीन युवती के पूजन के प्रतिरात्रि विधान का उल्लेख है। 'गौरीव्रत' या 'गौरीपूजन' की परम्परा पूरब की संस्कृति में प्राचीन काल से है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी भी जगत जननी जानकी से जनकपुर में 'गौरी-पूजन' कराते हैं :—

तेहि अवसर सीता तहँ आई।
गिरजा पूजन जननि पठाई॥ (बा० दो० २२७, चौ० १)।

'अष्टवर्षा भवेद्गौरी' के अनुसार आठ वर्ष की कुमारी कन्याओं को गौरी का प्रतीक मानकर पूजन की परम्परा है जो अब भी बङ्गाल, बिहार, वाराणसी की संस्कृति में है। परन्तु इस 'गौरीव्रत' के लिए कुलीन युवतियों का विधान वाममार्ग की गर्हित परम्परा की ओर संकेत है। इसी आधार पर 'हितोपदेश' की उद्‌गम भूमि बंगाल बतलाया गया है; जहाँ शाक्त, तान्त्रिक पूजा का विशेष प्रचार था। इसी प्रकार 'भट्टारकवासर' शब्द आया है 'रविवार' दिन के अर्थ में। 'भट्टारक' शब्द का 'सूर्य' तथा 'पूज्य' अर्थ में प्रयोग है। पूरब में सूर्यवार—रविवार के व्रत एवं अनुष्ठान का प्रचलन अभी भी है। धार्मिक दृष्टि से इस दिन तैल मर्दन तथा मांस भक्षण का निषेध है। भोजपुरी गीत में अगहन मास के रविवार व्रत का महत्त्व है :—

कातिक मासे कातिक छठि कइलों।
अगहन कइलों अतवार॥

इसी प्रकार 'चान्द्रायणव्रत' का भी उल्लेख हुआ है। जैन साहित्य में 'चान्द्रायण व्रत' का उल्लेख मिलता है। इसमें चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार भोजन के कौर घटाने-बढ़ाने पड़ते हैं। परन्तु 'चान्द्रायणव्रत' का प्रचार अब देखने में नहीं आता। भट्टारकवार के उल्लेख के ऊपर डा० फ्लीट का कहना है कि यह उल्लेख नवम शती के शिलालेखों में विशेष रूप से प्राप्त होता है।[1] अतः हितोपदेश की रचना नवमशती के बाद और १२वीं

---

१. देखें, पं० बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४४९।

शती से पूर्व लगभग ११वीं शती में होनी चाहिए। ग्रन्थ में पाटलिपुत्र का भी नाम आया है। पाटलिपुत्र का आधुनिक नाम 'पटना' है जो बिहार की राजधानी है। पाटलिपुत्र की स्थापना ५०० ई० पूर्व में मगध नरेश अजात शत्रु ने की थी। बौद्धग्रन्थों में 'पाडलिग्राम' आया है। जैन ग्रन्थों में 'पाडलिपुत्त' या 'पाडलि उत्त' रूप मिलता है। ११वीं शताब्दी में होने वाले हेमचन्द्राचार्य ने भी यहीं उदाहरण निर्देश किया है। अजातशत्रु ने अपनी रक्षा के लिये गंगा-सोन के संगम पर इस पाडलिग्राम में किला बनवाया था। इसी प्रकार **अर्बुदाचल (आबू), उज्जयिनी, मालवा, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज (कन्नौज) वाराणसी, मगधदेश** और **कलिंगदेश** का उल्लेख है। इन सब उदाहरणों से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि रचयिता तथा रचना की उद्गमभूमि पूर्वी छोर ही है। हितोपदेश में आये हुए श्लोकों पर भी ध्यान देने पर यह ज्ञात होता है कि महाभारत, स्मृतिग्रंथ, पुराण, चाणक्यनीतिशास्त्र और किरातार्जुनीय से ये उधार लिये गये हैं। कथा और श्लोकों का मणिकाञ्चन योग अत्यन्त मनोहर है। अपनी जगह में रचयिता ने इन्हें सजाकर सत्यं शिवं सुन्दरं का रूप दिया है।

रचयिता

इसके रचयिता नारायण पंडित हैं। कुछ लोग इन्हें नारायण भट्ट भी कहते हैं। लेकिन हितोपदेश के अंतिम पद्यों से इसके रचयिता 'नारायण' हैं (**नारायणेन प्रचरतु रचितः संग्रहोऽयं कथानाम्**)। इनके आश्रयदाता का नाम धवलचन्द्र है। धवलचन्द्र जी बंगाल के माण्डलिक राजा थे। नारायण पंडित राजा धवलचन्द्रजी के राजकवि थे। कवि ने स्वयं कृतज्ञता प्रकट की है धवलचन्द्र के प्रति '**श्रीमान् धवलचन्द्रोऽसौ जीयात् माण्डलिको रिपून्** ।' हितोपदेश का नैपाली हस्तलेख १३७३ ई० का प्राप्त है। वाचस्पति गैरोलाजी के अनुसार नारायण पंडित ने १४वीं शती के आस-पास में हितोपदेश की रचना की थी।[1] पहले यही मत पंडित बलदेव उपाध्याय जी का भी था।[2] मंगलाचरण तथा समाप्ति श्लोक से नारायण की आस्था शिव में विशेष प्रकट हो रही है। कुछ भी हो 'हितोपदेश' के रचयिता अपनी रचना से अमर हैं और संस्कृत-कथा साहित्य में 'हितोपदेश' एक शिक्षाप्रद एवं मनोहर अवदान के रूप में अवतरित हुआ है तथा संस्कृत के अभ्यासी छात्रों के लिये यह प्रथम सोपान बना है। इति शुभम्

बी० २/१७८ बी भदैनी
वाराणसी
विजयादशमी, २०३३

विनयावनत—
कपिलदेव गिरि

---

१. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ९१९।
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३९१ (चतुर्थ संस्करण)।

कथासार

१. कथामुख

गङ्गाजी के तट पर पाटलिपुत्र (पटना) नाम का नगर है। उसमें राजा के समस्त गुणों से सम्पन्न सुदर्शन नाम का राजा था। किसी समय उसने किसी मनुष्य द्वारा पढ़े गये दो श्लोकों को सुना। पहले श्लोक का अर्थ यह है—समस्त सन्देहों को मिटाने वाला, परोक्षार्थ का प्रकाशक, सब का नेत्र रूप शास्त्र का ज्ञान जिस पुरुष को नहीं है वह अन्धा है। दूसरे पद्य का आशय यह है— युवावस्था, धनसम्पत्ति, प्रभुता, अविवेकता इनमें एक एक भी अनर्थ के लिए पर्याप्त होता है। जिसके पास ये चारो हैं उसके अनर्थ का तो कहना ही क्या है। ऐसा सुनकर राजा ने शास्त्रीयज्ञान से शून्य, नित्यप्रति कुमार्ग पर चलने वाले अपने पुत्रों को विद्याभ्यास न होने से व्याकुलचित होकर विचार किया। जैसे काने नेत्र का, नेत्रपीड़ा से अतिरिक्त कोई फल नहीं, वैसे ही जो पुत्र विद्वान् तथा धार्मिक नहीं है उस पुत्र से कुछ भी लाभ नहीं है। अनुत्पन्न (उत्पन्न न हुआ), मृत (मर गया) एवं मूर्ख इन तीनों में पहले दो (अनुत्पन्न, मृत) फिर भी कुछ अच्छे हैं—क्योंकि एक ही बार दुःख देते हैं, परन्तु मूर्ख पुत्र तो पग पग पर दुःख देता है अतः कुछ भी अच्छा नहीं है। राजा ने इस चिन्ता से व्याकुल होकर पण्डितों की सभा कराई और कहा—अहो विद्वद् गण, कुमार्ग पर चलने वाले और मूर्ख मेरे पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश कर उनके जीवन को सार्थक बना दें। क्या आप लोगों में कोई ऐसा विद्वान् है ? इसी बीच में नीतिशास्त्र में कुशल महापण्डित विष्णुशर्मा जो बृहस्पति के तुल्य गिने जाते हैं, उन्होंने कहा—हे राजन् ! आपके पुत्र अच्छे कुछ में उत्पन्न हुए हैं। इन्हें नीतिशास्त्र का ज्ञान मैं करा सकता हूँ। छः महिना के अन्दर ही नीतिशास्त्र का ज्ञान देकर विद्वान् बना दूँगा। तब विनयपूर्वक राजा ने कहा—आप हमारे पुत्रों के लिए नीतिशास्त्र का ज्ञान देने के अधिकारी हैं, यह कहकर सम्मानपूर्वक अपने पुत्रों को विष्णु शर्मा को सौंप दिया।

२. काक-मृग-कूर्म और मूषिक (चूहा) की कथा

साधन तथा धन से हीन बुद्धिमान् मित्र अपने सहयोग के द्वारा दुष्कर कार्य को भी सिद्ध कर लेते हैं, इस आशय से विष्णुशर्मा राजपुत्रों को काक-मृग-चूहे की कथा

सुनाने लगे। गोदावरी नदी के किनारे पर एक बड़ा सेमल का पेड़ है। उसमें अनेक दिशाओं से आकर पक्षी निवास करते हैं। जब रात्रि थोड़ी रह गई और चन्द्रमा भी अस्त होने लगा तब लघुपतनक नाम का कौआ जागा। द्वितीय यमराज के समान हाथ में जाल लिये आते हुए व्याध को देखकर विचार करने लगा अहो, आज प्रातःकाल ही अपशकुन हुआ। न मालुम क्या अनिष्ट होगा, ऐसा कहकर व्याकुलता से उसके (व्याध के) पीछे-पीछे चल दिया। व्याध ने भी चावल के दानों को बिखेर कर जाल फैला दिया। उसी समय चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा अपने परिवार के साथ आकाश मार्ग से जा रहा था। उसने निर्जन वन में बिखरे पड़े चावल के कणों को देखकर, कण चुगने में तत्पर एवं लोभी अपने बन्धु कबूतरों से कहा—भाई, पहले खूब समझ लो, इस निर्जन वन में ये चावल कण कहाँ से आए, मैं इसे अच्छा और कल्याणकारी नहीं मानता हूँ। सोने के कंगन के लोभ से गहरे कीचड़ में फँसा जैसे बटोही (विप्र) बूढ़े व्याघ्र से पकड़ा गया और मारा गया कहाँ से आए, मैं इसे अच्छा और कल्याणकारी नहीं मानता हूँ। सोने के कंगन के लोभ से गहरे कीचड़ मे फँसा जैसे बटोही (विप्र) बूढ़े व्याघ्र से पकड़ा गया और मारा गया वैसे ही हम लोगों को भी मरना पड़ेगा। कबूतरों ने कहा—यह कैसे ? तब चित्रग्रीव बोला—

३. वृद्धव्याघ्र और पथिक की कथा

चित्रग्रीव ने कहा—दक्षिणारण्य में घूमते हुए मैंने देखा कि एक बूढ़ा बाघ स्नान करके हाथ में कुश लेकर कह रहा है—हे पथिको, सोने का कंगन ले लो। ऐसा सुनकर कोई लोभी राहगीर (पथिक) अनेक चिन्ताकर पूछने लगा—आप हिंसक स्वभाव वाले हैं, आप में विश्वास कैसे किया जाय ? तब बाघ बोला—भाई, जवानी में मैंने अनेक मनुष्य तथा गौओं का वध किया है, जिस पाप से मेरे स्त्री-पुत्र सब मर गये, मैं वंश हीन हो गया हूँ। किसी धार्मिक ने मुझे दुःखी देखकर उपदेश दिया कि आप दान-धर्मादि पुण्य कार्य कीजिये उसी दिन से मैं नित्य गङ्गा में स्नान करता हूँ, दान देता हूँ, मेरे नख तथा दाँत गल कर गिर चुके हैं फिर भी मेरा विश्वास कैसे नहीं करते हो ? अब इस सरोवर में स्नान करके यह सोने का कंगन तुम मुझसे ले लो। वह लोभी राहगीर ब्राह्मण बाघ के वचन में विश्वास कर, तालाब में स्नान करने गया तो दुस्तर कीचड़ में फँस गया। भागने में भी असमर्थ हो गया। कीचड़ में फँसे हुए उसे देखकर बाघ ने कहा—अहो, बड़े दलदल में फँस गये हो, अच्छा मैं तुमको उठाता हूँ। ऐसा कहकर धीरे से उसके समीप गया और जब बाघ ने बटोही को पकड़ा तब वह विचार करने लगा। मैंने यह अच्छा नहीं किया कि इस घातक का विश्वास कर लिया। ऐसा विचार करते ही बाघ ने पकड़कर उसे मार डाला और खा गया। इस कारण से इन चावलों में लोभ करोगे तो हम लोगों की भी ऐसी ही

दुर्गति हो सकती है। उसके उपदेश को अन्य कबूतरों ने नहीं माना और लोभवश आकाश से उतर कर सब के सब दाना चुगने लगे तो जाल में फँस गये। इसके बाद चित्रग्रीव ने धैर्य रखने का उपदेश देकर एक चित्त से जाल लेकर उड़ने की आज्ञा सबों को दी। कबूतर जाल लेकर उड़ गए। व्याध पीछे-पीछे चला और सोच रहा था कि अभी ये लोग इकट्ठे होकर जाल लेकर उड़ रहे हैं, जब इन में विवाद होगा तब गिर कर मेरे आधीन होंगे—ऐसा सोचकर व्याध्र कुछ दूर गया, अन्त में निराश होकर व्याध अपने घर को लौट गया। तब चित्रग्रीव उन सब कबूतरों को गण्डकी नदी के तीर पर स्थित अपने मित्र हिरण्यक नामक चूहे के पास ले गया। पहले तो वह (हिरण्यक) चित्रग्रीव को न पहचान कर डर से बिल के अन्दर छिप गया पीछे उसे पहचान कर उसका पाश काटने लगा। तब चित्रग्रीव ने पहले अपने आश्रित कबूतरों के पाश काटने के लिए अनुरोध किया। अनन्तर हिरण्यक ने सभी कबूतरों का पाश काट डाला। यह सब देखकर लघुपतनक ने भी हिरण्यक से मित्रता का अनुरोध किया। तब हिरण्यक ने "भक्ष्य और भक्षक की प्रीति विपत्ति का कारण होती है," यह कहकर उदाहरणार्थ एक (मृग-शृगाल) की कथा कहना आरम्भ कर दिया।

४. मृग-काक और शृगाल की कथा

हिरण्यक ने कहा—मगध देश में चम्पकवती नाम का बड़ा जङ्गल है। उसमें अधिक काल से अति प्रेमपूर्वक हिरन और कौआ रहते थे। गठीले शरीरवाले स्वेच्छा से घूमते हुए मृग को स्यार ने देखा और विचार किया कि इसके स्वादु मांस कैसे खाने को मिले। अच्छा, पहले इसे विश्वास दिलाऊँ, यह सोच उसके समीप जाकर बोला—मित्र, आप सकुशल हैं। मृग ने कहा—तुम कौन हो, उसने कहा—क्षुद्रबुद्धिनाम वाला मैं स्यार हूँ। इस वन में बन्धु विहीन होकर मृतक की तरह अकेला रहता हूँ। आज आपके मिलने पर बन्धु सहित पुनः मनुष्यलोक में आया हूँ। सर्वाङ्गीण सेवा लाभ की इच्छा से आपका सेवक बनकर रहूँगा। मृग ने कहा—अच्छा ऐसा ही सही। सूर्यास्त हो जाने पर वह दोनों मृग के निवास स्थान पर गये। उस वन में चम्पा के पेड़ की डाली पर मृग का पुराना साथी सुबुद्धि-नाम का कौआ रहता था। उन्हें देखकर कौआ ने कहा—मित्र चित्राङ्ग! यह व्यक्ति कौन है। मृग ने कहा—यह स्यार हम लोगों से मित्रता का इच्छुक है। मित्र! अचानक आये हुए अपरिचित व्यक्ति के साथ मित्रता करना उचित नहीं होता—यह आपने अच्छा नही किया। बिलाव के दोष से जरद्गव गिद्ध मारा गया। ऐसा कहकर उनकी कथा कहने लगा—

५. गृध्र और बिलाव की कथा

गङ्गाजी के तट पर गृध्रकूट नामक पर्वत पर पाकर का पेड़ है। उसके खोड़र में अपने

दुर्भाग्य के फल से नेत्र तथा नखों से रहित जरद्गव नामक गिद्ध रहता था। उस वृक्ष के निवासी अन्य पक्षीगण अपने आहार से कुछ कुछ अंश निकाल कर इसे देते थे, उसीसे इसके जीवन का निर्वाह होता था और यह बेचारा गीध उनके बच्चों की रक्षा (देख-रेख) करता था। इसके बाद कभी दीर्घकर्ण नाम का बिलाव पक्षियों के बच्चों को खाने के लिये वहाँ आया। उसे आते हुए देखकर पक्षियों के बच्चे भयभीत होकर चिल्लाने लगे। उस कोलाहल को सुनकर जरद्गव ने कहा—यह कौन आता है? दीर्घकर्ण ने गिद्ध को देखकर डर के साथ कहा—हाय, मैं मर गया, चूंकि यह मुझे मार डालेगा। मैं नजदीक में हूँ, भाग नहीं सकता। अच्छा, जो होना है वह हो। अपना विश्वास दिलाने को सोचकर नजदीक जाकर बोला—महोदय, प्रणाम करता हूँ। गिद्ध ने कहा–तुम कौन हो? उसने कहा—मैं बिलाव हूँ। गिद्ध बोला—दूर हट जा, यदि न हटा तो मेरे द्वारा मारा जायगा। बिलाव ने कहा–मेरी बात सुन लीजिये, उसके बाद यदि मैं वास्तव में मारने के योग्य हूँ तो सहर्ष मार दीजियेगा। गिद्ध ने कहा—यहाँ कैसे आया है? उसने कहा—मैं नित्य स्नान करके ब्रह्मचर्य से चान्द्रायण व्रत करने के लिए इस गङ्गा तट पर रहता हूँ। आपके धर्मज्ञान की प्रशंसा समस्त पक्षिगण मुझसे करते हैं। अतः वयोवृद्ध आप से धर्म-श्रवण की इच्छा से आया हूँ। पर आप ऐसे धर्म के ज्ञान वाले हैं कि आये हुए मुझ अतिथि को मारने के लिये दौड़ पड़े। सुनिये, गृहस्थ धर्म यह है–ऐसा कहकर उसे विश्वास दिलाकर वहीं रहने लगा।

तब वह बिलाव के बच्चों को क्रमशः अपने कोटर में लाकर खाने लगा। अपने बच्चों की हत्या से दुःखी होकर इधर-उधर के अन्वेषण के लिये निकले पक्षिगण को देखकर बिलाव भाग गया। बाद में घूमकर आये पक्षियों ने अपने मृत बच्चों की हड्डियों को जरद्गव के खोड़र में देखकर निश्चय कर लिया कि इसी दुरात्मा ने हमारे बच्चों को मारा है। तदन्तर रोष से सब ही ने मिल कर आक्रमण कर दिया और गिद्ध को मार डाला।

कौए के मुख से ऐसी कथा सुनकर स्यार ने कहा–जब मृग का साथ आपका प्रथम हुआ। तब तो मृग के लिये आप के भी कुल शील का ज्ञान न था। फिर कैसे प्रतिदिन स्नेह बढ़ रहा है? तब मृग के अनुरोध से कौआ ने भी मान लिया। एक दिन स्यार उस वन के एक प्रदेश में धान का खेत दिखला दिया। मृग प्रतिदिन जाकर धान खाता था। एक दिन धान के स्वामी (खेतिहर) ने जन्तु द्वारा विनिष्ट देखकर उसके चारों तरफ रस्सों का जाल बाँध दिया। मृग सर्वदा की तरह जैसे पहुँचा कि रस्सी के जाल की उलझन में फँस कर सोच में पड़ गया। मन ही मन में कहता है कि काल की फाँसी की तरह इस व्याध की फाँसी से छुड़ाने में सिवा मित्र के दूसरा कौन सहायक हो सकता है। इसी बीच में स्यार वहाँ उपस्थित होकर विचार करने लगा कि हमारी जादूगरी सफल हो गई अब मनोरथ सिद्ध हो जायगा जब ये काटा जायगा तब माँस तथा रक्त से तनी हुई इसके अस्थिपञ्जर मुझे अवश्य मिलेंगे वह अधिक समय तक भोजन चलायेगा। स्यार को देखकर मित्रदृष्टि से हर्षित होकर कहता है। मित्र! शीघ्रता से मेरे इस बन्धन को दाँतों से चबाकर काट दो और मुझे

विचाओं । विलम्ब में क्षेत्रपति का भय है । स्यार ने पाश (फाँसी) को बार-बार देखकर वचार किया कि बन्धन मजबूत है, खुलाकर भाग नहीं सकता है । कहता है-मित्र, आज रविवार है । ये फाँसी नसों से बनी हुई है, कैसे इनका दाँतों से स्पर्श करूँ । मित्र ! तुम यदि अन्यथा न मानों तो प्रातःकाल मैं आऊँगा जो कहोगे वह करूँगा । इसके बाद प्रतिदिन की भाँति कौआ मृग को न आया देखकर अन्वेषण करने के लिये निकला तो फांसी की उलझन में फँसा देखकर बोला—अहो मित्र, यह क्या ? मृग ने कहा कि मित्र वचन की अवहेलना का यह परिणाम है । कौआ ने कहा—वह ठग कहाँ है ? मृग ने कहा—मेरे मांस की लालसा से यहीं बैठा है । कौआ ने कहा—मित्र ! मैंने तो पहिले ही कह दिया था ।

प्रातःकाल लाठी हाथ में लिये आते हुए खेत के मालिक को कौआ ने देखकर मृग से कहा—मित्र मृग ! तुम अपने को मृतक के समान दिखलाकर हवा से पेट को फुलाकर पैरों को निश्चल किये रहो । मैं चोंच से तुम्हारी आँखों को खोदता हूँ । जब मैं शब्द करूँ तब तुम उठकर भाग जाना । कौआ के कहने पर मृग उसी मुद्रा में हो गया । तब प्रसन्न चित्त से क्षेत्रपति (कृषक) ने मृतक की तरह मृग को देखा और उसे स्वयं मरा हुआ जान कर बन्धन से छुड़ाकर रस्सियों को समेटने में तत्पर हो गया । जब खेतिहर कुछ दूर चला गया तो वह कौआ के शब्द को सुनकर शीघ्रता से भाग गया । तब गुस्सा में आकर शृगाल के लक्ष्य से कृषक ने लाठी का प्रहार किया और उससे स्यार मारा गया । ऐसा सुनने पर भी लघुपतनक ने कहा—"तुम मुझे अपना मित्र न बनाओगे तो अनशन करके आपके दरवाजे पर प्राण त्याग दूँगा" जब ऐसा कहा तब उन दोनों में मित्रता हो गई । वे दोनों प्रतिदिन परस्पर आहार के आदान-प्रदान से प्रीतिपूर्ण वार्तालाप से समय व्यतीत करने लगे ।

एक दिन लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा—मित्र ! कौआ को आहार मिलने में कष्ट होता है । मैं इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाना चाहता हूँ । हिरण्यक ने कहा-कहाँ जाओगे ? कौआ ने बतलाया-कर्पूरगौर नामक स्थान पर जाऊँगा । वहाँ मेरा सुपरिचित पुराना मित्र मन्थर नामक कछुआ रहता है । वह धर्मात्मा है । वह भोजन के भिन्न-भिन्न प्रकारों से मेरा संवर्धन (पुष्टि) करेगा । हिरण्यक ने कहा—तब मुझे यहाँ रहकर क्या करना है । इसलिये मुझे भी वहाँ साथ में लेते चलिये, तब कौआ ने कहा—बहुत अच्छा और दोंनो परस्पर विचित्र वार्तालाप सुख से कर्पूरगौर सरोवर के समीप पहुँच गये । दूर से ही लघुपतनक को देख मन्थर ने सादर अतिथि सत्कार जैसे लघुपतनक का किया उसी प्रकार से हिरण्यक का भी किया । कौआ ने कहा-मित्र मन्थरक ! यह हमारे साथ में आए हुए हिरण्यक नामक मूषिकों (चूहों) के राजा हैं । तब मन्थरक ने हिरण्यक से निर्जन वन में आने का कारण पूँछा । हिरण्यक ने कहा—सुनिये कहता हूँ ।

६. हिरण्यक की कथा

चम्पका नगरी में संन्यासियों का आश्रम था। उसमें चूड़ाकर्ण नामक संन्यासी रहता था। वह खाकर बचे हुए भिक्षान्नसहित भिक्षापात्र को खूंटी पर लटका कर सो जाता था। मैं उसके अन्न को उछल-उछल कर खाता था। एक दिन उसका मित्र वीणाकर्ण संन्यासी वहाँ आया परस्पर प्रेम वार्तालाप करते रहे। बीच-बीच में मुझे डराने के लिए पुराने बाँस के ठुकड़े से जमीन को पीटते हुए वीणाकर्ण बोला—मित्र, वार्तालाप में मन आपका स्थिर क्यों नहीं रहता? तब चूणाकर्ण ने कहा—मित्र, यह चूहा बचे हुए भिक्षान्न को रोज खाता है। वीणाकर्ण ने खूंटी को देखकर सोचा वह जरा-सा चूहा इतना ऊँचा कैसे उछल जाता है। इसमें कोई कारण अवश्य है। तब उसने बहुत दिनों से संचित मेरा बहुत धन बिल खोदकर निकाल लिया। उसी समय से मैं उत्साहहीन और निर्बल हो गया हूँ। अब यहाँ रहना उचित नहीं है और यह बात किसी से कहनी भी नहीं चाहिये ऐसा सोचकर इस निर्जन वन में आया हूँ। मैं अपने आप कर्म से लघुपतनक से अनुगृहीत हूँ। अब उसी पुण्य परम्परा से स्वर्ग तुल्य आपका आश्रय पा गया हूँ। तब मन्थरक ने कहा—तुमने अधिक संग्रह किया उसका यह फल है। संचय अवश्य करना चाहिये परन्तु अधिक संचय नहीं करना चाहिये। अधिक संचय करने वाला स्यार धनुप से मारा गया।

७. संग्रह करने वाले स्यार की कथा

कल्याणकटक में रहने वाला भैरव नाम का व्याघ एक दिन धनुप लेकर मृगों को ढूढ़ता हुआ विन्ध्य पर्वत के वन में पहुँचा। वहाँ एक मृग को मारकर आते हुए उसने भयङ्कर आकार वाले सूअर को देखा तब मृग को भूमि में रखकर बाण से सूअर पर प्रहार किया। सूअर ने भी घोर गर्जना करके व्याध के अण्डकोश प्रदेश में आघात किया जिससे वह व्याध मर गया। उन दोनों के पैरों के ताड़न से एक साँप भी मारा गया। इसी बीच में आहार के लिए घूमते हुए दीर्घराव नामक स्यार ने मरे हुए सूअर, व्याध तथा साँप को देखकर सोचा। अहो मेरा भाग्य है कि आज अधिक खाने का पदार्थ मिला। इनके माँस से मेरा तीन महीने तक भोजन चलेगा—जैसे मनुष्य के माँस से एक मास, मृग और सूअर के माँस से दो मास, सर्प के माँस से एक दिन बिताऊँगा। अतः आज धनुष की प्रत्यञ्चा खानी चाहिए। इस प्रकार जब वह प्रत्यञ्चा को खाने लगा तब धनुप का बन्धन टूट कर स्यार की छाती में धनुप की चोट लग गई, स्यार वहीं पर मारा गया। इसीलिए अधिक संग्रह नहीं करना चाहिये। ऐसी बातचीत कर वे लोग वहाँ पर सुख से रहने लगे।

एक दिन चित्राङ्ग नाम का मृग किसी से डराया हुआ वहाँ आकर मिला। उसके बाद आने वाले किसी भय का कारण समझकर मन्थरक जल में प्रविष्ट हो गया। चूहा बिल में घूस गया, कौआ वृक्ष के अग्र भाग पर जा चढ़ा। कौन है, इसको बहुत दूर तक देखा; फिर भी भय का कारण कुछ भी मालूम नहीं हुआ। पीछे कौआ के वचन से फिर आकर उसी स्थान पर सब बैठ गये। महाशय मृग! आप सकुशल हैं। आओ भोजन करो, पानी पीओ। यहाँ रहकर इस वन को सनाथ करो। चित्राङ्ग कहता है शिकारी से डरकर मैं आप लोगों की शरण में आया हूँ और मित्रता करना चाहता हूँ। हिरण्यक ने कहा—मित्रता तो स्वतः हो गई है। अब आप अपने घर के समान सुखपूर्वक यहाँ रहें। इस बात को सुनकर मृग प्रसन्न हुआ। अपनी इच्छा से घास खाकर पानी पिया और उसके समीप वृक्ष की छाया में बैठ गया। तब मन्थरक ने पूछा—मित्र मृग! तुमको किसने डराया, क्या इस निर्जन वन में व्याध (बहेलिया) घूमते हैं। मृग ने कहा—कलिङ्ग देश में रुक्माङ्गद नाम का राजा है। वह दिग्विजय के कार्य-क्रम से आकर चन्द्रभागा नामक नदी के तट पर सेना का पड़ाव डाल कर बैठा है। कल प्रातःकाल वह कर्पूरगौर सरोवर के समीप अवश्य उपस्थित हो जायगा ऐसी बात मैंने व्याधों के मुंह से सुनी है। तब तो यहाँ का रहना भी खतरनाक है। अब जो करना है वह करना चाहिये। यह सुनकर मन्थरक ने डर कर कहा—मैं दूसरे जलाशय में जाना चाहता हूं। मृग और कौआ ने भी इस बात का समर्थन किया, परन्तु हिरण्यक ने सोच कर कहा—दूसरा जलाशय मिलने पर ही मन्थरक की कुशल है। भूमि के मार्ग से चलने पर क्या व्यवस्था होगी। इस विषय में भी उपाय सोचना चाहिये। कहा भी गया है जो कार्य उपाय से सफल होता है। वह परिश्रमों से नहीं होता है। जैसे कीचड़ के मार्ग से जाते हुए हाथी को स्यार ने मार दिया। ऐसा कहकर वह कथा कहने लगा।

८. हाथी और स्यार की कथा

ब्रह्म वन में कर्पूरतिलक नाम का हाथी था। उसे देखकर स्यारों ने सोचा—यदि ये किसी उपाय से मर जाय तो इसके देह के माँस से हम लोगों के लिये चार मास का भरपूर भोजन हो जायगा। तब एक वृद्ध स्यार अपनी बुद्धि के बल से इसे मारने की प्रतिज्ञा की। वह ठग वृद्ध स्यार हाथी के पास जाकर प्रणाम कर कहने लगा—महाराज! वन के सभी पशुओं ने मिलकर इस वनस्थली के राज्य सिंहासन पर आपका अभिषेक के लिये मुझे भेजा है। अब राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त जैसे न टले उस प्रकार आप शीघ्रता से चलिये। तब राज्य के लोभ से वह हाथी स्यार के चले हुए मार्ग से दौड़ता हुआ भारी कीचड़ में फँस गया और मर गया।

पूर्वकथा का शेष

हिरण्यक के हित वचन का तिरस्कार कर डर से मूढ़ होकर मन्थरक उस तालाब को छोड़ कर चल दिया। हिरण्यक आदि भी स्नेह से अनिष्ट की आशङ्का कर उसके पीछे-पीछे चल दिये। इसके बाद स्थल मार्ग से जाता हुआ मन्थरक वन में घूमते हुए किसी व्याध को मिला। व्याध ने उसे अपने धनुष में बाँधकर घर की ओर चल दिया। मृग-कौआ-चूहा दुःखी होकर उसके पीछे-पीछे चल दिये। तब हिरण्यक ने मृग और कौआ से कहा। जब तक व्याध वन के बाहर न निकले तब तक मन्थरक को छुड़ाने का उपाय करना चाहिये। उन दोनों ने कहा—कर्त्तव्य का निर्देश कीजिये। हिरण्यक ने कहा—मृग जल के समीप जाकर अपने को मरे की तरह दिखलाये और कौआ उस पर चढ़कर अपनी चोंच मारे तब व्याध मन्थरक को छोड़कर मृग के पास अवश्य ही जायगा। इतने में मन्थरक के बन्धन को काट दूँगा। मन्थरक जल में प्रविष्ट हो जायगा। व्याध जब आपके नजदीक आये तो आप लोग शीघ्र भाग जाना। उन दोनों मृग और कौआ ने वैसा ही किया। व्याध मृग को मरा हुआ समझ कर छुरी लेकर मृग के समीप आया। इसी बीच में हिरण्यक ने आकर मन्थरक का बन्धन काट डाला तब मन्थरक जलाशय में घुस गया। मृग भी व्याध को समीप में आते हुए देख उठ कर भाग गया। व्याध निराश होकर घर लौट गया। अतः जो निश्चित छोड़कर अनिश्चित की आशा करता है उसके निश्चय नष्ट होते हैं और अनिश्चित तो नष्ट है ही। तब से वे मन्थरादि अपने स्थान में सुखपूर्वक रहने लगे।

॥ श्रीः ॥

हितोपदेश-मित्रलाभः

'रश्मिकला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहितः
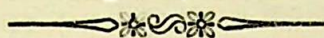
मङ्गलाचरणम्

भक्तेन्दिन्दिरवन्दिताङ्घ्रिनलिन नानानिलिम्पैर्नुतं,
नव्यं नीरदनायकं निजतनो सन्तर्जयन्तं रुचा।
नन्दानन्दननन्दनं व्रजवधूस्नेहैकसन्मन्दिरं,
गोविन्दं त्वरविन्दसुन्दरमुखं श्रीगोकुलेन्दुं श्रये ॥

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु प्रसादात् तस्य धूर्जटेः।
जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला ॥ १ ॥

अन्वयः—यन्मूर्ध्नि शशिनः कला जाह्नवीफेनलेखा इव (अस्ति), तस्य धूर्जटेः प्रसादात् सताम् साध्ये सिद्धिः अस्तु ॥

व्याख्या—यन्मूर्ध्नि = यस्य मूर्धा; यन्मूर्धा, तस्मिन् (ष० त०), यस्य शिरसि, शशिनः = चन्द्रस्य, कला = षोडशो भागः, जाह्नवीफेनलेखा इव (अस्ति), तस्य प्रसिद्धस्य, धूर्जटेः = शिवस्य, प्रसादात् = कृपाबलात्, सताम् = सज्जनानाम्, साध्ये = कार्ये, सिद्धिः = साफल्यम्, अस्तु = भवतु ॥

टिप्पणी—जाह्नवीफेनलेखा = जाह्नव्याः फेनाः (षष्ठीतत्पुरुषः), जाह्नवीफेनानां लेखा, जाह्नवीफेनलेखा (ष० त०), प्रसादात् = प्र + सद् + घञ्। "प्रसादस्तु प्रसन्नता" इत्यमरः। सताम् = अस् + लट् (शतृ)। उपमालंकार। अनुष्टुप् छन्दः।

भाषार्थ—जिनके मस्तक पर चन्द्रमा की कला गङ्गाजी के फेन की लकीर की तरह विद्यमान है उन श्री शिवजी की प्रसन्नता से सज्जनों के कार्य में सिद्धि हो ।१।

ग्रन्थस्य प्रयोजनं प्रतिपादयति—

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु।
वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च ॥ २ ॥

अन्वयः—अयम् हितोपदेशः श्रुतः (सन्) संस्कृतोक्तिषु पाटवम् सर्वत्र वाचाम् वैचित्र्यम् नीतिविद्याम् च ददाति ॥

व्याख्या—अयम्=एषः, हितोपदेशः=तन्नामकग्रन्थः, श्रुतः=आकर्णितः, संस्कृतोक्तिषु = संस्कृतवचनेषु, पाटवम् = पटुताम्, सर्वत्र = निखिलस्थलेषु, वाचाम्=गिराम्, वैचित्र्यम् = विचित्रताम् ,नीतिविद्याम् = नीतिशास्त्रज्ञानम्, ददाति = प्रयच्छति ॥

टिप्पणी—हितोपदेशः = हितानाम् हितकारकाणां वचनानाम्, उपदेशः, हितोपदेशः, लक्षणया तादृशो ग्रन्थविशेषः हितोपदेशनामकः। अथवा हितम् अस्ति यस्मिन् सः, हितः "अर्श आदिभ्योऽच्"। हितश्चासौ उपदेशः हितोपदेशः (क० धा०) अथवा हितः उपदेशो यस्मिन् सः हितोपदेशः (बहु०), श्रुतः = श्रु + क्तः। संस्कृतोक्तिषु = संस्कृतस्य उक्तयः, संस्कृतोक्तयस्तासु (ष० त०), पाटवम् = पटोर्भावः पाटवम्, तत्। पटु + अण्। सर्वत्र = सर्व + त्रल्। वैचित्र्यम,विचित्र + ष्यञ्। नीतिविद्याम्, नीतेर्विद्या, नीतिविद्या, ताम् (ष० त०), ददाति = दा + लिट् तिप्।

भावार्थः—यह हितोपदेश नाम का ग्रन्थ सुनने पर संस्कृत भाषा के वचनों में चतुरता तथा समस्त स्थलों में विचित्रता एवं नीतिशास्त्र का ज्ञान देता है ॥ २॥

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—प्राज्ञः अजरामरवत् विद्याम्-अर्थम् च चिन्तयेत् मृत्युना केशेषु गृहीत इव धर्मम् आचरेत् ॥

व्याख्या—अजरामरवत् = अजरश्चासौ अमरः अजरामरः (कर्मधारयः), तेन तुल्यः अजरामरवत् "वति प्रत्ययः। प्राज्ञः = प्रज्ञ एव प्राज्ञः = पण्डितः, विद्याम् = शास्त्रादिज्ञानम्, अर्थम् = धनम् च, चिन्तयेत् = ध्यायेत्। केशेषु कचेषु, मृत्युना = कालेन, गृहीत इव = धृतः इव, स्वधर्मम् = पुण्यम्, आचरेत् = अनुतिष्ठेत् ॥

भावार्थः—बुद्धिमान् मनुष्य अजर तथा अमर की तरह विद्या एवं धन का उपार्जन करे। मौत ने चोटी दबा रक्खी है अर्थात् किसी दिन काल का ग्रास बनना पड़ेगा। यह सोचकर अपने स्वधर्म का आचरण करना चहिये ॥३॥

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥ ४ ॥

अन्वयः—सर्वदा अहार्यत्वात् अनर्घत्वात् अक्षयत्वात् च सर्वद्रव्येषु अनुत्तमम् विद्या एव इति आहुः "मनीषिणः" इतिशेषः ॥

व्याख्या—सर्वदा सर्वकाले, अहार्यत्वात् = स्तेयतानर्हत्वात्, अनर्घत्वात् = अमूल्यत्वात्, अक्षयत्वात् = अविनाशित्वात्, सर्वद्रव्येषु = निखिलवस्तुजातेषु, अनुत्तमम् = सर्वोत्तमम, द्रव्यम् = वस्तु, विद्या एव = शास्त्रादिज्ञानमेव, आहुः = कथयन्ति (विपश्चितः इति शेषः) ॥

टिप्पणी—अहार्यत्वात् = हर्तुंयोग्यम् हार्यम्,हृ + ण्यत् वृद्धि। न हार्यम् अहार्यम् (नञ् त०), अहार्यस्य भावः अहार्यत्वम्, तस्मात्। (त्वप्रत्यय०), सर्वद्रव्येषु= सर्वाणि च तानि द्रव्याणि सर्वद्रव्याणि, तेषु (क० धा०), अनुत्तमम् = न विद्यते उत्तमो यस्मात् तत् अनुत्तमम् (बहुः०),आहुः = ब्रूञ + लट् + आहादेशः।

भावार्थः—विद्या चुराई नहीं जा सकती अतः अमूल्य है, अविनाशी है, समस्त द्रव्यों में विद्या ही सर्वोत्तम द्रव्य है ॥ ४ ॥

संयोजयति विद्यैव नीचगापि नरं सरित् ।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—नीचगा अपि सरित् दुर्धर्षम् समुद्रम् इव विद्या एव दुर्धर्षम् नृपं प्रति नरम् संयोजयति, अतः परम् भाग्यम् ॥

व्याख्या—नीचगा अपि = निम्नस्थानगामिनी, सरित् = नदी, नरम्=मनुष्यम्, दुर्धर्षम् = दुष्प्राप्यम्, समुद्रम् = सागरमिव, नीचगापि = नीचपुरुषगता अपि दुर्धर्षम् = पूर्वोक्तम्, नृपम् = राजानम्, संयोजयति = संयोगं कारयति, अतः = अस्मात्, परम् = अनन्तरम्, भाग्यम् = भागधेयम् ॥ (अधिकधनलाभाय भाग्यमेव प्रभवति) इति ।

टिप्पणी—नीचं गच्छति इति नीचगा । नीच गम् + ड + टाप् । दुर्धर्षम्=दुःखेन धर्षितुं योग्यः दुर्धर्षः तम् दुर्धर्षम् = (सुप् सुपा) इति समासः, खल् प्रत्ययश्च । नॄन् पातीति नृपः (उपपदसमासः), नृ + पा + कः ।

भावार्थः—जैसे अधः प्रदेश में बहनेवाली नदी अपने प्रवाह में पतित पदार्थ को भी दुर्जय समुद्र में पहुंचा देती है । इसी तरह सर्वसाधारण जन को विद्या ही प्रबल राजा के पास पहुँचा देती है ॥ ५ ॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मम् ततः सुखम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—विद्या विनयम् ददाति विनयात् पात्रताम् याति पात्रत्वाद् धनम् आप्नोति धनाद् धर्मम् ततः सुखम् (आप्नोति) ॥

व्याख्या—विद्या = शास्त्रादिज्ञानम्, विनयम् = शिष्टाचारम्, ददाति = राति, विनयात् = पूर्वोक्तात् , पात्रताम् = सज्जनताम्, याति = प्राप्नोति, पात्रत्वात् = सत्पात्रत्वात् , धनम् = द्रव्यम, आप्नोति=लभते, धनीत्=वित्तात् , धर्मम्=पुण्यं-कर्म, आप्नोति तत्, पुण्यप्राप्त्यनन्तरम्, सुखम् = आनन्दम्, प्राप्नोति । पद्यपठित-विनयादीनां मूलकारणीभूता विद्यैवेतिभावः ॥

टिप्पणी—ददाति = दा + लट् + तिप् । विनयात् = हेतु में पञ्चमी । पात्रताम्= पात्रस्य भावः पात्रता ताम्, पा + तल् + टाप् , तल प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है । याति=या + लट् + ति । धनम्=रिक्थमृक्थं धनंवसु इत्यमरः । पात्रत्वात् = पात्रस्य भावः पात्रत्वम्, तस्मात् , पात्र + त्व । त्वप्रत्ययान्तशब्द नपुंसकलिङ्ग होता है । हेतु में पञ्चमी, धर्मम् = "स्याद्धर्ममास्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृष,"इत्यमरः । तत = तस्मात् इति ततः, तत् + तसिल् यह अव्यय है । यहाँ पर कारणमाला अलङ्कार और अनुष्टुप् छन्द है । परम्परा संबंध से सुख आदि सब पदार्थों का हेतु विद्या है । इस पद्य से यही शिक्षा मिलती है ।

भाषार्थः—विद्या पुरुष को विनीत बनाती है, विनीत को ही सज्जन कहते हैं। योग्य व्यक्ति ही धन कमाने वाला कहलाता है। धन कमाने का फल है धर्माचरण। इसके बाद सुख ही है दुःख का नाम नहीं। तात्पर्य यह हुआ सब सुखों का प्रधान साधन विद्या ही है ॥ ६ ॥

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽऽद्रियते सदा ॥ ७ ॥

अन्वयः—शस्त्रस्य विद्या शास्त्रस्य विद्या (इति) द्वे विद्ये प्रतिपत्तये (स्तः), आद्या वृद्धत्वे हास्याय (भवति) द्वितीया सदा आद्रियते ॥

व्याख्या—शस्त्रस्य = आयुधस्य, विद्या = ज्ञानम्, शास्त्रस्य = मुनिप्रणीत-वाङ्मयस्य, विद्या = ज्ञानम्, इतिद्वे = द्वित्वसंख्याविशिष्टे, विद्ये = ज्ञाने, प्रतिपत्तये = उन्नतये, "मनुष्याणाम् इतिशेषः" (स्तः)। आद्या = शस्त्रविद्या; वृद्धत्वे = स्थविरे, हास्याय = उपहासाय (भवति), द्वितीया = शस्त्रविद्या, सदा = शश्वत् , आद्रियते = आदरमेव प्राप्यते "नोपहासम्," शास्त्रविद्या, सर्वदैव सर्वैः सत्क्रियते ॥

टिप्पणी—विद्या = विदन्ति अनया, इति विद्या, विद + काप् + टाप्। प्रति-पत्तये = प्रति + पद + क्तिन् , यहाँ तादर्थ्य में चतुर्थी हुई है। आद्या = आदौ भवा, आदि + यत् + टाप्। वृद्धत्वे=वृद्धस्य भावः वृद्धत्वम्, तस्मिन् , वृद्ध + त्व। हास्याय= तादर्थ्य में चतुर्थी। द्वितीया = द्वयोः पूरणी द्वि + तीय + टाप्। आद्रियेत आङ् + द्द + लट् (कर्म में)। यहाँ पर व्यतिरेक अलङ्कार और अनुष्टुप् छन्द है ॥

भाषार्थः—अपनी उन्नति या ज्ञान के लिये शस्त्र तथा शास्त्र ये दो विद्याएँ प्रसिद्ध हैं। उनमें शस्त्रविद्या वृद्धावस्था आने पर शक्ति क्षीण होने पर उपहास का स्थान ग्रहण करती है और शास्त्रविद्या समस्त अवस्थाओं में आदर का स्थान पाती है ।७।

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् ।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते ॥ ८ ॥

अन्वय—यत् नवे भाजने लग्नः संस्कारः अन्यथा न भवेत् तत् इह बालानाम् कथाच्छलेन नीतिः कथ्यते ॥

व्याख्या—यत् = यस्मात् कारणात् , नवे = नूतने, भाजने = पात्रे, लग्नः=संसक्तः, संस्कार = संस्कृतिः, अन्यथा = रूपान्तरं प्राप्तः, न भवेत् = न स्यात्। तत् = तस्मात् कारणात्, इह = अस्मिन् ग्रन्थे, बालानाम् = अनधीतनीतिशास्त्राणाम् , कथाच्छलेन—काककूर्मादीनां कथोपदेशेन, नीतिः = नयः, कथ्यते = उच्यते ॥

टिप्पणी—यत् = अव्यय है। नवे "प्रत्ययोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः" इत्यमरः। यह भाजने पद का विशेषण है। संस्कारः = सम् + कृ + घञ्। अन्यथा = अन्य + थाल् , यह अव्यय है। भवेत् = भू + विधिलिङ् + तिप्। इह =

अस्मिन् इति, इदम्+ह, यह अव्यय है, कथाच्छलेन=कथायाः छलम् कथाच्छलम्, तेन (ष० त०), "प्रबन्धकल्पना कथा" इत्यमरः। नीतिः=नी+क्तिन्। क्तिन् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग होता है। कथ्यते=कथ+लट् (कर्म में)। छन्द पूर्ववत् है॥

भावार्थः—सर्व प्रथम स्वभावमें जो वस्तु आ जाती है उसकी छाप हमेशा स्वभाव में रहती है, बदलती नहीं। अतः कथा-प्रसङ्ग से नीतिशास्त्र अनभिज्ञों के लिये इस हितोपदेश नामक ग्रन्थ से नीतिशास्त्र का ज्ञान करया जा रहा है॥ ८॥

मित्रलाभः सुहृद्भेदः विग्रहः सन्धिरेव च।
पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते॥ ९॥

अन्वयः—मित्रलाभः सुहृद्भेदः विग्रहः सन्धिः एव च पञ्चतन्त्रात् तथा अन्यस्मात् ग्रन्थात् आकृष्य लिख्यते (मया: इतिशेषः)॥

व्याख्या—मित्रलाभः=तन्नामको ग्रन्थभागः, यत्र मित्राणां लाभः। सुहृद्भेदः=तन्नामको ग्रन्थभागः, यत्र सुहृदां भेदः=(भेदनम्) विरोधः, विग्रहः=तन्नामकोग्रन्थभागो, यत्र विग्रहः=युद्धम्। तथा संधि=तन्नामको ग्रन्थभागो, यत्र संधिः=पणबन्धः, मेलनम्। एवं च भागचतुष्टयं विष्णुशर्मकृतात् पञ्चतन्त्रनामकात् ग्रन्थात्, अन्यस्मात्=महाभारतादितः, आकृष्य=गृहीत्वा, लिख्यते=अक्षरेषु विन्यस्यते। (मया नारायणशर्मणेति शेषः)

टिप्पणी—मित्रलाभः=मित्रणां लाभः मित्रलाभः (ष० त०), सुहृदभेदः=सुहृदां भेदः सुहृद्भेदः (ष० त०), आकृष्य=आङ्+कृष्+क्त्वा (ल्यप्) लिख्यते=लिख्+लट्+कर्म में। अनुष्टुप छन्द है।

भावार्थः—मित्रलाभः, सुहृद्भेदः, विग्रह, सन्धि—इन चार प्रकरणों वाला यह ग्रन्थ (हितोपदेश) विष्णुशर्मा के बनाये पञ्चतन्त्र एवं महाभारतादि पुस्तकों के आधार पर लिखा जा रहा है॥ ९॥

अथ कथामुखम्

अस्ति भागीरथीतटे पाटलिपुत्रनामधेयं नगरम्। तत्र सर्वस्वामिगुणोपेतः सुदर्शनो नाम नरपतिरासीत्। स नरपतिरेकदा केनापि पठ्यमानं श्लोकद्वयं शुश्राव।

व्याख्या—अस्तीति–भागीरथीतटे=भागीरथादागतः भागीरथी, तस्याः तीरः भागीरथीतीरः ततिस्मन् (ष० त०), भागरथीतीरे=गङ्गातटे, पाटलिपुत्रनामधेयम्=नाम एव नामधेयम्, पाटलिपुत्रः नामधेयं यस्य तत् पाटलिपुत्रनामधेयम् (बहु०), इदानीं 'पटना' इति प्रसिद्धः। नगरम्=पुरम् (अस्ति), तत्र=पूर्वोक्तनगरे, सर्वस्वामिगुणोपेतः=स्वामिनो गुणाः स्वामिगुणः (ष० त०), सर्वे ते स्वामिगुणाः=सर्वस्वामिगुणाः (क० धा०) तैः, उपेतः, सर्वस्वामिगुणोपेतः=(तृ०

त०), समस्तराजगुणैः दयादाक्षिण्यादिभिः उपेतः=युक्तः। सुदर्शनो नाम=सुष्ठु दर्शनम् यस्य सः सुदर्शनः=तन्नामकः (बहु०), नरपतिः=राजा, नराणां पतिः, नरपतिः (ष० त०), आसीत्=अभवत्। सः=पूर्वोक्तः, भूपतिः—प्रजापालकः, भुवः=पतिः, भूपतिः (ष० त०), एकदा=एकस्मिन् समये, केनापि=अपरिचितेन जनेन पठ्यमानम्=अधीयमानम्, श्लोकद्वयं=पद्ययुगलम्, शुश्राव—श्रुतवान्॥

भाषार्थः—भागीरथी (भगीरथ द्वारा लाई गई) गङ्गा के तट पर पाटलिपुत्र (पटना) नाम का नगर है। वहाँ दया, दाक्षिण्यादि समस्त स्वामिगुणसम्पन्न सुदर्शन नाम का राजा था। उस राजा ने एक समय किसी अपरिचित व्यक्ति द्वारा पढ़े गये दो श्लोक सुने॥

तथाहि—

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रम् यस्य नास्त्यन्ध एव सः॥ १०॥

अन्वयः—अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् सर्वस्य लोचनम् शास्त्रम् यस्य नास्ति स अन्ध एव॥

व्याख्या—अनेकसंशयोच्छेदि=बहुविधसन्देहनिवारकम्, परोक्षार्थस्य=भाविभूतार्थस्य, दर्शकम्=ज्ञापकम्, सर्वस्य=अखिलस्य, लोचनम्=चक्षुः, शास्त्रम्=वेदव्याकरणज्यौतिषादिकम्, यस्य=पुरुषस्य, नास्ति=न भवति, विद्यते वा स=पुरुषः, अन्ध एव= नेत्ररहित एव अस्तीतिशेषः।

टिप्पणी—न एके, अनेके (नञ् त०), अनेके च ते संशयाः, अनेकसंशयाः (क० धा०), तान् उच्छिनत्ति तच्छीलम्, तत् अनेकसंशयोच्छेदि (उपपदसमासः), अक्ष्णः परमिति विग्रहे समासान्तविधानसामर्थ्यादव्ययीभावः समासः। निपातनात् परस्यौकारादेशः परोक्षश्चासौ अर्थः परोक्षार्थस्तस्य (क० धा०)।

भाषार्थ—अनेक सन्देहों का निवारक एवं अप्रत्यक्ष अर्थ का दर्शक तथा पुरुषमात्र का वास्तविक नेत्र शास्त्र ही है। यह (शास्त्रीयज्ञान) जिसको नहीं है वह अन्धा ही है॥ १०॥

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥ ११॥

अन्वयः—यौवनम् धनसम्पत्तिः प्रभुत्वम् अविवेकता एकैकम् अपि अनर्थाय (भवति) यत्र चतुष्टयम् (तत्र) किमु॥

व्याख्या—यौवनम्=तारुण्यम्, धनसम्पत्तिः=वित्तागमः, प्रभुत्वम्=आधिपत्यम्, अविवेकता=अज्ञानता, (एषु) एकैकम् अपि=प्रत्येकम् अपि, अनर्थाय=उच्छृङ्खलत्वसंपादनाय (भवति), यत्र=यस्य पुरुषस्य सविधे, चतुष्टयम्=इमानि यौवनादीनि (वर्तन्ते), तत्र उच्छृङ्खलता वर्तते इति किमु वक्तव्यम्॥

टिप्पणी—यूनोर्भावः यौवनम् + युवन् + अण्, धनसम्पत्तिः = धनस्य संपत्तिः धनसम्पत्तिः (ष० त०), अविवेकता = न विवेकः अविवेकः (नञ्त०), तस्य भावः, अविवेकता—अविवेक + तल्, प्रभुत्वम् प्रभोर्भावः प्रभुत्वम् + प्रभु + त्व नपुं०।

भावार्थः—युवावस्था, मूढता, नित्यप्रति धन का आगम या धन की अधिकता और मुखियापन इन चारों में प्रत्येक अनर्थकारी हैं। जिस पुरुष के पास ये चारों विद्यमान हैं उस पुरुष को अनर्थकारी कहा जाय तो आश्चर्य ही क्या है।

इत्याकर्ण्यात्मनः पुत्राणामनधिगतशास्त्राणां नित्यप्रत्युन्मार्गगामिनां शास्त्राननुष्ठानेनोद्विग्नमनाः स राजा चिन्तयामास।

व्याख्या—इति = इदम्, पूर्वोक्तश्लोकद्वयम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, आत्मनः=स्वस्य, पुत्राणाम् = सुतानाम्, अनधिगतशास्त्राणाम् = शास्त्रीयज्ञानशून्यानाम्, नित्यंप्रत्युन्मार्गगामिनां = निरन्तरं निन्द्यपथपथिकानाम्, शास्त्राननुष्ठानेन = विद्याऽनभ्यासेन, उद्विग्नमनाः = व्याकुलचित्तः (सन्), सः = पूर्वोक्तः, राजा = नृपः सुदर्शनः, चिन्तयामास—चिन्तितवान्॥

टिप्पणी—अनधिगतशास्त्राणाम् = न अधिगतम् अनधिगतम् (नञ् त०), अनधिगतं शास्त्रं यैस्ते अनधिगतशास्त्रास्तेषाम् (बहु०), उन्मार्गगामिनाम्=उन्मार्गेण गच्छन्ति इति तच्छीलाः, उन्मार्गगामिनस्तेषाम् (उपपदसमासः), शास्त्राऽननुष्ठानेन = न अनुष्ठानम् अननुष्ठानम् (नञ्त०), शास्त्रस्य अननुष्ठानम् शास्त्राननुष्ठानम् तेन (ष० त०), उद्विग्नमनाः = उद्विग्नं मनो यस्य सः, उद्विग्नमना (बहु०)।

भावार्थः—इन श्लोकों को सुनकर शास्त्रीयज्ञान शून्य एवं प्रतिदिन उन्मार्गगामी अर्थात् जूआ खेलना इत्यादि दुर्व्यसनों में तत्पर अपने पुत्रों को शास्त्रीयज्ञान से विमुख देखकर व्याकुल चित्त होकर राजा ने विचार किया॥ ११॥

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः।
काणेन चक्षुषा किम्वा चक्षुः पीडैव केवलम्॥ १२॥

अन्वयः—जातेन पुत्रेण कः अर्थः? यः (पुत्रः) न विद्वान् न च धार्मिकः। काणेन चक्षुषा वा किम्? केवलम् चक्षुः पीडा एव।

व्याख्या—जातेन = उत्पन्नेन, पुत्रेण = सुतेन, कः अर्थः = किं प्रयोजनम्, "सेत्स्यति" यः न विद्वान् = न प्राज्ञः, न च धार्मिकः = श्रौतस्मार्तकर्मरहितः, काणेन = दर्शनशक्तिशून्येन, नेत्रेण = चक्षुषा। कः अर्थः = प्रयोजनम् वा अथवा केवलम् चक्षुः पीडैव = अक्षिव्यथामात्रम् अस्ति इति शेषः॥

टिप्पणी—विद्वान् = वेत्तीति विद्वान् "विद्वान् विपश्चिद् दोषज्ञः" इत्यमरः। धार्मिकः = धर्मेण चरतीति धार्मिकः। चक्षुःपीडा = चक्षुषः पीडा चक्षुःपीडा (ष० त०), दृष्टान्तालङ्कारोऽयम्। अनुष्टुप् छन्दः।

भावार्थः—जो पुत्र न विद्वान् है और न धार्मिक है उसके जन्म से कोई लाभ नहीं है। जैसे दर्शनशक्तिशून्य नेत्र से कोई दर्शन कार्य सिद्ध नहीं होता केवल नेत्र दुःख होता है ॥ १२ ॥

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः।
सकृद्दुःखकरावाद्यौ अन्तिमस्तु पदे पदे ॥ १३ ॥

अन्वयः—अजातमृतमूर्खाणाम् आद्यौ वरम् अन्तिमः न, आद्यौ सकृद्दुःखकरौ अन्तिमस्तु पदे-पदे ॥

व्याख्या—अजातमृतमूर्खाणाम् = अनुत्पन्नव्यसुबालिशानाम्, (मध्ये)आद्यौ = आदिमौ, वरम् = किञ्चित् प्रियम्, यथा तथा भवतः इतिशेषः। अन्तिमः = मूर्खः, तु न वरम् = किञ्चिदपि प्रियो न भवति। आद्यौ = अजातमृतौ, सकृत् = एकवारम्, दुःखकरौ = पीडाकारकौ, अन्तिमः = अन्त्य, मूर्खस्तु पदे पदे प्रतिपदम्, प्रतिस्थानम् दुःखकर इतिशेषः ॥

टिप्पणी—अजातमृतमूर्खाणाम् = अजातश्च मृतश्च मूर्खश्च अजातमृतमूर्खाः, तेषाम् (द्वन्द्वसमासः), आद्यो = आदौ भवौ आद्यौ दुखःकरौ दुःखं कुरुतः इति दुःखकरौ।

भावार्थः—जन्म नहीं लेने वाला या जन्म लेकर तुरन्त मरने वाला पुत्र मूर्ख-पुत्र की अपेक्षा कुछ ठीक है क्योंकि पुत्र का जन्माभाव तथा जन्म के बाद तुरन्त मर जाने से एकबार ही दुःख होता है और मूर्खपुत्र से तो हर समय हर स्थान पर दुःख बना ही रहता है ॥ १३ ॥

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥ १४ ॥

अन्वयः—येन जातेन वंशः समुन्नतिम् याति सः जातः। परिवर्तिनि संसारे मृतः कः न जायते ॥

व्याख्या—जातेन=उत्पन्नेन, जन्मना; येन=पुरुषेण, वंशः=कुलम्, समुन्नतिम् = उत्कर्षम, याति = प्राप्नोति, सः = पुरुषः, जातः = सफलजन्मा, परिवर्तिनि= परिणामशीले, संसारे = प्रपञ्चे, मृतः = निधनं प्राप्तः, को वा किन्नामकः (जनः), न जायते = नोत्पद्यते।

भावार्थः—परिणामशील संसार में मरने के बाद सब ही जन्म लेते हैं, यह परिपाटी सदा से चली आ रही है। परन्तु वास्तविक जन्म (सफलजन्म) उसी का है जिससे वंश की अच्छी उन्नति हो ॥ १४ ॥

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद बन्ध्या कीदृशी भवति ॥ १५ ॥

अन्वयः—गुणिगणगणनारम्भे यस्य कठिनी सुसम्भ्रमात् न पतति तेन अम्बा यदि सुतिनी "तर्हि" वद, वन्ध्या कीदृशी भवति।

व्याख्या—गुणिगणगणनारम्भे=सुधीसमुदायसंख्यीकरणोपक्रमे, यस्य= पुत्रस्य (विषये), कठिनी=वर्णलेखनसाधनरूपा खटिका, भाषायां खड़ियेति नाम्ना प्रसिद्धा, सुसम्भ्रमात्=अतिशीघ्रम्, न पतति=न चलति। तेन=सुतेन, अम्बा=जननी, सुतिनी=ससुता, चेत् "तर्हि" वद=कथय, वन्ध्या=अऋतुमती, कीदृशीः=किंस्वरूपा, भवति=अस्ति॥

टिप्पणी—गुणिगणगणनारम्भे=गुणिनां गणः गुणिगणः (ष० त०) तस्य गणना (ष० त०) तस्याः आरम्भः तस्मिन् (ष० त०), सुसम्भ्रमात्=अत्यन्तं संभ्रमः, सुसम्भ्रमः, तस्मात्। सुतः, अस्ति, अस्या सा सुतिनी, पतति=पत्+ लट्+तिप्, सुत+इनि+ङीप्। भवति=भू+लट्+तिप्, आर्याछन्दः॥

भाषार्थः—गुणीजनों के समुदाय की गणना के आरम्भ काल में अतिशीघ्रता से जिसका नाम लेखनी नहीं लिख देती ऐसे पुत्र की जननी अपने को 'मैं पुत्रवती हूँ' ऐसा अभिमान रखती है, तो कहिये वन्ध्या (बाँझ जिसे ऋतुधर्म न होता हो) कैसी होती है॥ १५॥

अपि च—दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं मनः।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः॥ १६॥

अन्वयः=यस्य मनः दाने तपसि शौर्ये विद्यायाम् अर्थलाभे च न प्रथितम् सः मातुः उच्चार एव (अस्ति)।

व्याख्या—यस्य=पुत्रस्य, दाने=वितरणे, तपसि=तपस्यायाम्, शौर्ये=शूरत्वे, विद्यायाम्=ज्ञाने, अर्थलाभे=वित्तोपार्जनोपाये, मनः=चित्तम्, न प्रथितम्=न संलग्नम्, सः=पुत्रः, मातुः=निजजनन्याः, उच्चारः एव=पुरीष एव (अस्ति)।

टिप्पणी—शौर्ये शूरस्य भावः कर्म वा शौर्यम् तस्मिन्, शूर+ष्यञ्। अर्थलाभे= अर्थस्य लाभः अर्थलाभः तस्मिन् (ष० त०), उच्चारः="उच्चारावस्करौ शमलं शकृत् गूथं पुरीषं वर्चस्कः" इत्यमरः।

भाषार्थः—जिस पुत्र का मन दान, तप, शूरता, विद्या एवं धनोपार्जन में संलग्न नहीं है वह पुत्र अपनी माता का विष्टारूप ही है॥ १६॥

अपरञ्च—वरमेको गुणीपुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च॥ १७॥

अन्वयः—गुणीपुत्रः एकः अपि वरम्, मूर्खशतानि अपि न वरम्, एकः चन्द्रः तमः हन्ति, तारागणः अपि न (हन्ति)।

व्याख्या—गुणी = गुणवान्, एकः = एकाकी, अपि, पुत्रः=सुतः, वरम्=ज्यायान्, मूर्खशतानि=मूर्खाः शतशः अपि, न वरम् = न ज्यायांसः। चन्द्रः=रजनीकरः, एक एव = एकाक्येव, तमः = रात्रिजन्यतिमिरम, हन्ति = विनाशयति, परं तारागणः अपि = नक्षत्रादीनां समूहोऽपि (तमो) न हन्ति।

टिप्पणी—गुणी = गुणाः = सन्ति अस्मिन् इति गुणी, गुण + इनि, मूर्खशतानि = शतं च शतं च शतं च शतानि (द्वन्द्वैकशेषः), मूर्खाणां शतानि मूर्खशतानि (ष० त०), तारागणः=ताराणां गणः = तारागणः (ष० त०), हन्ति = हन् + लट् = तिप्।

भावार्थ—गुणी पुत्र यदि एक भी है तो अच्छा है, परन्तु मूर्ख पुत्र यदि सैकड़ों हैं तो वे अच्छे नहीं हैं। अकेला चन्द्रमा रात्रि के घनघोर अन्धकार को विध्वंस कर देता है पर सैकड़ों ताराओं का समुदाय भी उसे हटाने में समर्थ नहीं होता ॥ १७ ॥

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः काप्यतिदुष्करम्।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धः धार्मिकः सुधीः ॥ १८ ॥

अन्वयः—येन क्वापि पुण्यतीर्थे अति दुष्करम् तपः कृतम् तस्य पुत्रः वश्यः समृद्धः धार्मिकः सुधीः भवेत् ॥

व्याख्या—येन = पुरुषेण, क्व अपि = कस्मिन्नपि, तीर्थे = पुण्यक्षेत्रे, अतिदुष्करम्= अतिकष्टसाध्यम, तपः = कृच्छ्रचान्द्रायणव्रतनियमादि, कृतम् = आचरितम्, तस्य= पुरुषस्य, पुत्रः = सुतः, वश्यः = वशंगतः, समृद्धः = धनधान्यादिपूर्णः, धार्मिकः= धर्मनिष्ठः, सुधीः=विद्वान्, भवेत् = स्यात् ॥

टिप्पणी—पुण्यतीर्थे = पुण्यं च तत् तीर्थम् पुण्यतीर्थम् तस्मिन् (कर्मधा०), अतिदुष्करम् = अत्यन्तं दुष्करम् अतिदुष्करम् (गतिसमासः), वश्यः = वशंगत 'वश + यत्, समृद्धः = सम्यक् ऋद्धः समृद्धः (गतिसमासः), धर्मेण चरति धार्मिक धर्म + ठक् + (इक्), सुधीः = शोभनाधीर्यस्य सः (बहु०), भवेत् = भू + लिङ् + तिप्—यहाँ संभावना में लिङ् लकार हुआ है ॥

भावार्थः—जिस व्यक्ति ने किसी पुण्य तीर्थ स्थान में कष्ट साधन साध्य व्रत नियमादि किया है। उसका पुत्र आज्ञाकारी तथा धन-धान्य से पूर्ण, धर्म में रुचि रखने वाला एवं बुद्धिमान् होता है ॥ १८ ॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥१९॥

अन्वयः—हे राजन्! नित्यम् अर्थागम अरोगिता च प्रियवादिनी प्रिया च भार्या वश्यः पुत्रः अर्थकरी विद्या (इमानि) षट् जीवलोकस्य सुखानि (सन्ति) ॥

व्याख्या—हे राजन्=हे नृप, अर्थागमः=वित्तलाभः, नित्यम्=प्रतिदिनम्, अरोगिता=अनामयत्वम्, भार्या=पत्नी, प्रिया=प्रेमयुक्ता, प्रियवादिनी=मधुरालापिनी, पुत्रः= सुतः, वश्यः=वशंगतः, अर्थकरी=धनोपार्जिका, विद्या=विषयज्ञानम्, "एतानि" षट्=षट्संख्यकानि, जीवलोकस्य=मनुष्यलोकस्य, सुखानि=सुखकराणि (सन्ति)।

टिप्पणी—अर्थागमः=अर्थस्य आगमः अर्थागमः (ष० त०), रोगः अस्यास्तीति रोगी। रोग+इनि। रोगिणो भावः रोगिता रोगिन्+तल् स्त्रीत्वम्, न रोगिता अरोगिता (नञ्), प्रियवादिनी=प्रियं वदतीति तच्छीला·प्रियपदोपपदपूर्व वद्+णिनि+ङीप्। वश्यः वश+यत्, अर्थकरी=अर्थस्य करी अर्थकरी (ष० त०), अर्थ+कृ+टः+ङीप्। जीवलोकस्य=जीवानां लोकः जीवलोकः, तस्य (ष० त०), प्रिया=प्रीणाति या सा प्रिया "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति कप्रत्ययः, कित्वात् गुणाभावः+इयङ्+टाप्।

भावार्थः—हे राजन्! रोजाना धन की प्राप्ति एवं निरोगिता तथा प्रेम रखने वाली तथा मधुर बोलने वाली स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र तथा अर्थकरी विद्या ये छ मनुष्यलोक के सुख हैं ॥ १९ ॥

को धन्यो बहुभिः पुत्रैः कुशूलाऽऽपूरणाऽऽढकैः।
वरमेकः कुलाऽऽलम्बी यत्र विश्रूयते पिता ॥ २० ॥

अन्वयः—कुशूलापूरणाढकैः बहुभिः पुत्रैः कः धन्यः कुलालम्बी एकः पुत्रः वरम्, यत्र पिता विश्रूयते ॥

व्याख्या—कुशूलापूरणाढकैः=तुषपूर्णधान्यसंग्रहस्थानावरकपात्रसदृशैः, तद्-तुल्यर्थैः, बहुभिः=अनेकैः, पुत्रैः=सुतैः, कः=पिता, धन्यः=कृतार्थः "भवेत्," कुलालम्बी=वंशमर्यादापालकः, एकः=एकत्वविशिष्टः, पुत्रः=तनयः, वरम्=पर्याप्तम्, यत्र=यस्मिन्, निमित्तभूते पुत्रे, पिता=जनकः विश्रूयते=लोके ख्यातिम् प्राप्नुयात् ॥

टिप्पणी—कुशूलापूरणाढकैः=आसमन्तात् पूरणाः, आपूरणाः (गतिसमासः), कुशूलस्य आपूरणाः कुशूलापूरणाः (ष०त०), कुशूलापूरणाश्च ते आढकाः कुशूला-पूरणाढकास्तै (क० धा०), धन्यः=धनंलब्धा धन्यः "धन=यत् "धनगणंलब्धाः" इत्यनेन। "सुकृतं पुण्यवान् धन्यः" इत्यमरः। कुलालम्बी=कुलम् आलम्बते तच्छीलः। कुल+आ+लबि+णिनि। विश्रूयते+वि+श्रु+लट्+त।

भावार्थः—धान्य शून्य खत्ती (धान्यसंग्रहस्थान) के ढकनेवाले पात्रों की भांति निष्फल ऐसे अनेक पुत्र गुणहीनों से कोई भी पिता कृतार्थता का लाभ नहीं पा सकता है। वंशमर्यादा का अवलम्बन करने वाला एक ही पुत्र पर्याप्त होता है ॥ २० ॥

व्याख्या—गुणी = गुणवान्, एकः = एकाकी, अपि, पुत्रः=सुतः, वरम्=ज्यायान्, मूर्खशतानि=मूर्खाः शतशः अपि, न वरम् = न ज्यायांसः। चन्द्रः=रजनीकरः, एक एव = एकाक्येव, तमः = रात्रिजन्यतिमिरम्, हन्ति = विनाशयति, परं तारागणः अपि= नक्षत्रादीनां समूहोऽपि (तमो) न हन्ति।

टिप्पणी—गुणी = गुणाः = सन्ति अस्मिन् इति गुणी, गुण + इनि, मूर्खशतानि = शतं च शतं च शतं च शतानि (द्वन्द्वैकशेषः), मूर्खाणां शतानि मूर्खशतानि (ष० त०), तारागणः=ताराणां गणः = तारागणः (ष० त०), हन्ति = हन् + लट् = तिप्।

भावार्थ—गुणी पुत्र यदि एक भी है तो अच्छा है, परन्तु मूर्ख पुत्र यदि सैकड़ों हैं तो वे अच्छे नहीं हैं। अकेला चन्द्रमा रात्रि के घनघोर अन्धकार को विध्वंस कर देता है पर सैकड़ों ताराओं का समुदाय भी उसे हटाने में समर्थ नहीं होता ॥ १७ ॥

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः काप्यतिदुष्करम्।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धः धार्मिकः सुधीः ॥ १८ ॥

अन्वयः—येन क्वापि पुण्यतीर्थे अति दुष्करम् तपः कृतम् तस्य पुत्रः वश्यः समृद्धः धार्मिकः सुधीः भवेत् ॥

व्याख्या—येन = पुरुषेण, क्व अपि = कस्मिन्नपि, तीर्थे = पुण्यक्षेत्रे, अतिदुष्करम्= अतिकष्टसाध्यम्, तपः = कृच्छ्रचान्द्रायणव्रतनियमादि, कृतम् = आचरितम्, तस्य= पुरुषस्य, पुत्रः = सुतः, वश्यः = वशंगतः, समृद्धः = धनधान्यादिपूर्णः, धार्मिकः= धर्मनिष्ठः, सुधीः=विद्वान्, भवेत्= स्यात् ॥

टिप्पणी—पुण्यतीर्थे = पुण्यं च तत् तीर्थम् पुण्यतीर्थम् तस्मिन् (कर्मधा०), अतिदुष्करम् = अत्यन्तं दुष्करम् अतिदुष्करम् (गतिसमासः), वश्यः = वशंगत 'वश + यत्, समृद्धः = सम्यक् ऋद्धः समृद्धः (गतिसमासः), धर्मेण चरति धार्मिक धर्म + ठक् + (इक्), सुधीः = शोभनाधीर्यस्य सः (बहु०), भवेत् = भू + लिङ् + तिप्—यहाँ संभावना में लिङ् लकार हुआ है ॥

भावार्थः—जिस व्यक्ति ने किसी पुण्य तीर्थ स्थान में कष्ट साधन साध्य व्रत नियमादि किया है। उसका पुत्र आज्ञाकारी तथा धन-धान्य से पूर्ण, धर्म में रुचि रखने वाला एवं बुद्धिमान् होता है ॥ १८ ॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥१९॥

अन्वयः—हे राजन्! नित्यम् अर्थागम अरोगिता च प्रियवादिनी प्रिया च भार्या वश्यः पुत्रः अर्थकरी विद्या (इमानि) षट् जीवलोकस्य सुखानि (सन्ति) ॥

व्याख्या—हे राजन्=हे नृप, अर्थागमः=वित्तलाभः, नित्यम्=प्रतिदिनम्, अरोगिता=अनामयत्वम्, भार्या=पत्नी, प्रिया=प्रेमयुक्ता, प्रियवादिनी=मधुरालापिनी, पुत्रः= सुतः, वश्यः=वशंगतः, अर्थंकरी=धनोपार्जिका, विद्या=विषयज्ञानम्, "एतानि" षट्=षट्संख्यकानि, जीवलोकस्य=मनुष्यलोकस्य, सुखानि=सुखकराणि (सन्ति)।

टिप्पणी—अर्थागमः=अर्थस्य आगमः अर्थागमः (ष० त०), रोगः अस्यास्तीति रोगी। रोग+इनि। रोगिणो भावः रोगिता रोगिन्+तल् स्त्रीत्वम्, न रोगिता अरोगिता (नञ्), प्रियवादिनी=प्रियं वदतीति तच्छीला प्रियपदोपपदपूर्वं वद्+णिनि+ङीप्। वश्यः वश+यत्, अर्थंकरी=अर्थस्य करी अर्थंकरी (ष०त०), अर्थ+कृ+टः+ङीप्। जीवलोकस्य=जीवानां लोकः जीवलोकः, तस्य (ष० त०), प्रिया=प्रीणाति या सा प्रिया "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति कप्रत्ययः, कित्वात् गुणाभावः+इयङ्+टाप्।

भाषार्थः—हे राजन्! रोजाना धन की प्राप्ति एवं निरोगिता तथा प्रेम रखने वाली तथा मधुर बोलने वाली स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र तथा अर्थंकरी विद्या ये छ मनुष्यलोक के सुख हैं ॥ १९ ॥

को धन्यो बहुभिः पुत्रैः कुशूलाऽऽपूरणाऽऽढकैः।
वरमेकः कुलाऽऽलम्बी यत्र विश्रूयते पिता ॥ २० ॥

अन्वयः—कुशूलापूरणाढकैः बहुभिः पुत्रैः कः धन्यः कुलालम्बी एकः पुत्रः वरम्, यत्र पिता विश्रूयते ॥

व्याख्या—कुशूलापूरणाढकैः=तुषपूर्णधान्यसंग्रहस्थानावरकपात्रसदृशैः, तद्वत्व्यर्थैः, बहुभिः=अनेकैः, पुत्रैः=सुतैः, कः=पिता, धन्यः=कृतार्थः "भवेत्," कुलालम्बी=वंशमर्यादापालकः, एकः=एकत्वविशिष्टः, पुत्रः=तनयः, वरम्=पर्याप्तम्, यत्र=यस्मिन्, निमित्तभूते पुत्रे, पिता=जनकः विश्रूयते=लोके ख्यातिम् प्राप्नुयात् ॥

टिप्पणी—कुशूलापूरणाढकैः=आसमन्तात् पूरणाः, आपूरणाः (गतिसमासः), कुशूलस्य आपूरणाः कुशूलापूरणाः (ष०त०), कुशूलापूरणाश्च ते आढकाः कुशूलापूरणाढकास्तैः (क० धा०), धन्यः=धनंलब्धा धन्यः "धन=यत् "धनगणंलब्धाः" इत्यनेन। "सुकृतं पुण्यवान् धन्यः" इत्यमरः। कुलालम्बी=कुलम् आलम्बते तच्छीलः। कुल+आ+लबि+णिनि। विश्रूयते+वि+श्रु+लट्+त।

भाषार्थः—धान्य शून्य खत्ती (धान्यसंग्रहस्थान) के ढकनेवाले पात्रों की भाँति निष्फल ऐसे अनेक पुत्र गुणहीनों से कोई भी पिता कृतार्थता का लाभ नहीं पा सकता है। वंशमर्यादा का अवलम्बन करने वाला एक ही पुत्र पर्याप्त होता है ॥ २० ॥

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः, पुत्रः शत्रुरपण्डितः॥ २१॥

अन्वयः—ऋणकर्ता पिता शत्रुः व्यभिचारिणी माता (शत्रुः) रूपवती भार्या शत्रुः अपण्डितः पुत्रः शत्रुः (भवति)।

व्याख्या—ऋणकर्ता = अधमर्णः, पिता = जनकः, शत्रुः = अरिः, व्यभिचारिणी= परपुरुषरता, भार्या = पत्नी, शत्रुः = रिपुस्वरूपा, पुत्रः = सुतः, अपण्डितः=अविद्वान्, शत्रुः = रिपुः (भवति)।

टिप्पणी—ऋणकर्ता =ऋणस्य कर्ता ऋणकर्ता (ष० त०), व्यभिचारिणी = व्यभिचरतीति तच्छीला, वि+अभि+चर+णिनि+ङीप्। व्यभिचारीणी के स्थान में कहीं पर "शिक्षापराङ्मुखी" ऐसा पाठ है वहाँ शिक्षायां पराङ्मुखी ऐसा सप्तमी तत्पुरुष समास समझना चाहिये। पुत्र को शिक्षा देने में विमुख माता शत्रु तुल्य होती है। यह अर्थ है। रूपवती = प्रशस्तं रूपमस्याः अस्ति इति रूपवती। रूप+ मतुप्+ङीप्। अपण्डितः = न पण्डितः अपण्डितः (नञ् त०)।

भावार्थः—कर्ज लेने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता, अति सुन्दरी अपनी स्त्री एवं मूर्ख पुत्र ये सब वैरी के तुल्य हैं॥ २१॥

यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान् पूज्यते नरः।
धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति॥ २२॥

अन्वयः—नरः यस्य कस्य (वंशे) प्रसूतः अपि गुणवान् (चेत्) पूज्यते, वंशविशुद्धः अपि धनुः निर्गुणः (चेत्) तदा "किम् करिष्यति।

व्याख्या—नरः = मनुष्यः, यस्य कस्य = आढ्यस्य अनाढ्यस्य वा (कुले), प्रसूतः = उत्पन्नः, गुणवान् = विद्यादाक्षिण्यादिगुणसम्पन्नः सन् पूज्यते = सत्क्रियते। वैधर्म्येण दृष्टान्तमाह-निर्ग्रन्थिवेणुनिर्मितः अपि निर्गुणः=ज्यारहितः, धनुरिव = कार्मुकमिव। वंशविशुद्धः अपि=उत्तमकुलोत्पन्नः अपि, निर्गुणः = पूर्वोक्तगुणरहितः "नरः" किं करिष्यतिः = किं विधास्यति। दृढवंशनिर्मितं धनुः मौर्व्यारहितं सद् यथा निष्प्रयोजनम् भवति तथैव सत्कुलप्रसूतोऽपि नरः विद्यादिगुणशून्यः सन् निरर्थको भवति इतिभावः।

टिप्पणी—नरः = "मनुष्या मानुषाः मर्त्याः मनुजाः मानवाः नराः।" इत्यमरः। प्रसूतः, प्र+सू+क्त, गुणवान् = गुण+मतुप्, पूज्यते = पूज+लट्+त (कर्म में)। वंशविशुद्धः=वंशेन विशुद्धः वंशविशुद्धः (तृ० त०), निर्गुणः = निर्गतः गुणः यस्मात् स निर्गुणः (बहु०), धनुष् शब्द स्त्रीलिङ्ग में नहीं होता है अतः यहाँ पुल्लिंग में दिखलाया है।

भावार्थः—साधारण (महान् या दरिद्र) कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य यदि गुणवान् है तो आदर का पात्र होता है। वैधर्म्य में दृष्टान्त—जैसे शुद्ध बाँस से बना हुआ धनुष यदि प्रत्यञ्चा शून्य है तो क्या कर सकता है। इसी तरह शुद्ध कुल की सन्तान यदि गुणहीन है तो व्यर्थ है ॥ २२ ॥

अनभ्यासे विषंविद्या अजीर्णे भोजनं विषम्।
विषं सभादरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥ २२ ॥(अ)

अन्वयः—अनभ्यासे विद्या विषम् (भवतीति क्रियापदं सर्वत्र योज्यम्) अजीर्णे भोजनम् विषम्, दरिद्रस्य सभा विषम्, वृद्धस्य तरुणी विषम् (भवति)।

व्याख्या—अनभ्यासे = अनभ्यसने, विद्या = शास्त्रज्ञानम्, विषम् = गरलम्, अजीर्णे = भुक्तान्नापरिपाकदशायाम्, भोजनम् = अदनम्, विषम् = गरलतुल्यम्, दरिद्रस्य = वित्तहीनस्य, सभा = गोष्ठी, विषम् = पूर्वोक्तम्, वृद्धस्य = स्थविरस्य, तरुणी = युवतिः, विषम् = गरलतुल्या (भवति)।

टिप्पणी—अनभ्यासे = न अभ्यासः अनभ्यासः तस्मिन् (नञ्त०), अजीर्णे = न जीर्णम् अजीर्णम् तस्मिन्। तरुणी = तरुणत्वजातिविशिष्टा तरुणी, तरुण + ङीप् ॥

भावार्थः—अनभ्यास में विद्या, अजीर्ण में भोजन, दरिद्र के लिए सभा तथा वृद्ध के लिये युवावस्था वाली स्त्री विषतुल्य है ॥ २२ ॥(अ)

हा हा पुत्रक! नाधीतं गतास्वेतासु रात्रिषु।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि ॥ २३ ॥

अन्वयः—हा हा पुत्रक! गतासु एतासु रात्रिषु न अधीतम् (त्वया) तेन त्वम् विदुषाम् मध्ये पङ्के (मग्ना) गौः इव सीदसि ॥

व्याख्या—हा हा पुत्रक! = हे अनुकम्पित पुत्र! गतासु = सुखेन व्यतीतासु, एतासु = आसु, रात्रिषु = निशासु, नाधीतम् = न पठितम्, तेन = अनध्ययनात्मक कारणेन, त्वम् = भवान्, विदुषाम् = पण्डितानाम्, मध्ये = अन्तराले, पङ्के = कर्दमे गौरिव = गोवत् (वृष इव) सीदसि = विषादं लभसे ॥

टिप्पणी—पुत्रक=अनुकम्पितः पुत्रः पुत्रकः, तत्सम्बुद्धौ हे पुत्रक!

भावार्थः—हे पुत्र! सुख से बीतने वाली इन रात्रियों में तुमने नहीं पढ़ा इसलिये तुम दलदल कीच में फँसे हुए बैल की तरह विद्वानों की गोष्ठी में दुःख पाते हो ॥ २३ ॥

तत् कथमिदानीं ममैते पुत्रा गुणवन्तः क्रियन्ताम्? यतः—

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात्, इदानीम् = सम्प्रति, मम = सुदर्शनस्य, नृपस्य, एते = इमे, पुत्राः=सुताः, कथम् = केन प्रकारेण, गुणवन्तः = विद्यादिगुणसम्पन्नाः, क्रियन्ताम् = विधीयन्ताम्।

भाषार्थः—इसलिये किस प्रकार ये मेरे पुत्र विद्यादि से गुणवान् किये जाँय। क्योंकि—

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥ २४॥

अन्वयः—आहारनिद्राभयमैथुनम् एतत् नराणाम् पशुभिः समानम् (सामान्यम्) हि धर्मो तेषाम् अधिकः विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

व्याख्या—आहारनिद्राभयमैथुनम् = भक्षणप्रस्वापभीतिव्यवायम्, नराणाम् = पुरुषाणाम्, पशुभिः = चतुष्पदैः, एतत् = इदम्, सामान्यम् = तुल्यम्, हि = यस्मात् कारणात्, तेषाम् = नराणाम्, अधिकः = विशेषः, व्यावर्तकः, धर्मः = पुण्यार्जनम्, धर्मेण=पूर्वोक्तेन, हीनाः = रहिताः (सन्ति), तेः पशुभिः पूर्वोक्तैः समानाः तुल्याः। धर्मरहिता नराः, आहारादियुक्तत्वात् पशुतुल्या इति भावः।

टिप्पणी—आहारनिद्राभयमैथुनम् = आहारश्च निद्रा च भयं च मैथुनं च एषां समाहारः (द्वन्द्वः) एकवद्भावश्च। "स्यान्निद्रा शयनं स्वापः" "भीतिर्भीसाध्वसंभयम्" "साधारणं च सामान्यम्" "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसीसुकृतं वृषः" इत्यमरः।

भाषार्थः—खाना, सोना, डरना तथा स्त्री-संभोग इन क्रियाओं से मनुष्य तथा पशु में कोई विशेषता (भेद) नहीं है धर्माचरण ही मनुष्यों की विशेषता है। अतः जो धर्मरहित (ज्ञानरहित) हैं वह पशु के समान हैं॥ २४॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैको न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥ २५॥

अन्वयः—यस्य धर्मार्थकाममोक्षाणाम् एकः अपि न विद्यते तस्य जन्म अजागलस्तनस्य इव निरर्थकम्।

व्याख्या—धर्मार्थकाममोक्षाणाम्=पुरुषार्थचतुष्टस्य (मध्ये), यस्य = पुरुषस्य, एकोऽपि = एष्वन्यतम अपि, न विद्यते=नास्ति, तस्य=पुरुषस्य, जन्म = जननम्, जनुरिति वा, अजागलस्तनस्य = छागीकण्ठमासग्रन्थेः, इव = यथा, निरर्थकम् = निष्प्रयोजनम्। पुरुषार्थहीननरस्य जन्म अजागलस्तनस्येव विफलमितिभावः।

टिप्पणी—धर्मार्थकाममोक्षाणाम् = धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च इतिधर्मार्थकाममोक्षाः तेषाम् (इत० द्वन्द्वः), विद्यते = विद्+लट्+त। अजागलस्तनस्य= अजायाः गलः अजागल (ष० त०), अजागलस्य स्तनः तस्य (ष० त०), निरर्थकम्=निर्गतः, अर्थः, यस्मात् तत् (बहु०), उपमा अलं अ० छं।

भाषार्थः—जिस पुरुष के पास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में से एक भी नहीं है उस पुरुष का जन्म बकरी के गले में लटकती हुई मांस की ग्रन्थि (गाँठ) की तरह निष्फल है॥ २५॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ २६ ॥

अन्वयः—आयुः कर्म च वित्तम् च विद्या निधनम् एव च एतानि पञ्च अपि गर्भस्थस्य एव देहिनः सृज्यन्ते ॥

व्याख्या—आयुः = जीवनावधिः, कर्म = क्रिया, पुण्यपापाचरणम्, विद्या = शास्त्रज्ञानम्, निधनम्=मरणम्, एतानि = पूर्वोक्तानि, पञ्च=तत्संख्यकानि, गर्भस्थस्यैव = भ्रूणस्थितस्य, एव देहिनः=शरीरिणा, सृज्यन्ते=रच्यन्ते "विधात्रेतिशेषः।"

टिप्पणी—गर्भस्थस्य = गर्भे तिष्ठतीति गर्भस्थः, गर्भ+स्था+क, (उपपद समासः), देहिनः=देहम् अस्ति यस्य स देही तस्य देहिनः, देह+इनि। सृज्यन्ते= सृजधातु से लट् लकार कर्म में हुआ है।

अवश्यंभाविनो भावाः भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः ॥ २७ ॥

अन्वयः—अवश्यं भाविनः भावाः महताम् अपि भवन्ति यथा नीलकण्ठस्य नग्नत्वम् हरेः महाहिशयनम्।

व्याख्या—अवश्यंभाविनः = निश्चयरूपेण भवितुं योग्याः। भावाः = सुखदुःखादिरूपव्यापाराः महताम् = महापुरुषाणाम् अपि भवन्ति = जायन्ते। यथा नीलकण्ठस्य = श्रीशिवस्य, नग्नत्वम् = निर्वस्त्रत्वम्, हरेः = श्रीविष्णोः, महाहिशयनम् = सर्पराजोपरि प्रस्वापः ॥

टिप्पणी—अवश्यंभाविनः = अवश्यं भवन्तीति तच्छीलाः। अवश्यं+भू+णिनिः। नीलकण्ठस्य = नीलः कण्ठः यस्य सः नीलकण्ठस्तस्य (बहु०), नग्नत्वम् = नग्नस्य भावः नग्नत्वम्। नग्न+त्व+नपुंसकत्वम्। महाहिशयनम् = महाँश्चासौ अहिः महाहिः (क० धा०) तस्मिन् शयनम् तत् महाहिशयनम् (स० त०), भवन्ति, भू+लट्+झि।

भावार्थः—अवश्य घटने वाली घटनाएं ऐश्वर्यभावसम्पन्न महाप्रभुओं को भी घट जाती हैं। जैसे महादेवजी की नग्नता तथा विष्णु भगवान् का शेषजी के ऊपर शयन करना ॥ २७ ॥

अपि च—यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इतिचिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किन्न पीयते ॥ २८ ॥

अन्वयः—यत् अभावि तत् भावि न यद् भावि चेत तत् अन्यथा न इति चिन्ताविषघ्नः अयम् अगदः किम् न पीयते।

व्याख्या—यत् = शुभम् अशुभम् वा (अभावि)=भवितुमनर्हम्, तत्=पूर्वोक्तम् भावि = भवितुमर्हम्, न=नास्ति, यत् पूर्वोक्तम्, भावि = भवितुमर्हम्, चेत् = यदि

तत् = पूर्वोक्तम् । अन्यथा न = प्रकारान्तरेण न संभवि । इति=हेतोः, अयम्=एषः, चिन्ताविषघ्नः = आध्यानगरलविनाशकः, अगदः = भेषजः, किम् = कुतः, न पीयते = न धीयते ॥

टिप्पणी—अभावि = न भविष्यतीति तच्छीलम्, न+भू+णिनिः । अन्यथा= अन्येन प्रकारेण, अन्य+थाल् चिन्ताविषघ्नः = चिन्ता एव विषम् चिन्ताविषम् (रूपकसमासः), क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्, इत्यमरः । चिन्ताविषं हन्तीति चिन्ताविषघ्नः । हन्+कः । अगदः = न विद्यते गदः यस्मात् स अगदः (बहु०), पीयते= पा+लट्+(कर्म में) त+यक् । रूपक अलं० अ० छं० ॥

भावार्थः—जो कार्य होने वाला नहीं है वह कभी नहीं होता और जो होने वाला है वह अवश्य होता है । अतः इस चिन्तारूप जहर की विनाशिनी औषधि का पान क्यों नहीं करते हो ॥ २८ ॥

अपिच—एतत् कार्याक्षमाणामालस्यवचनम् ।

व्याख्या—एतत् = यदभावीति कथनं, कार्याक्षमाणाम् = कर्म कर्तुमसमर्थानाम्, आलस्यवचनम् = अलसभावोक्तिः ।

भावार्थः—कार्य करने में असमर्थ किन्हीं आलसी जनों की वह उक्ति है ।

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ २९ ॥

अन्वयः—यथा हि एकेन चक्रेण रथस्य गतिः न भवेत् तथा पुरुषकारेण विना दैवम् न सिध्यति ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, हि = निश्चयेन, एकेन = एकाकिना, चक्रेण = रथाङ्गेन, रथस्य = स्यन्दनस्य, गतिः = गमनम्, न भवेत् = न स्यात्, तथा=तेन-प्रकारेण, पुरुषकारेण = पुरुषार्थेन, विना = ऋते, दैवम् = अदृष्टम्, न सिध्यति = सफलं न भवति ॥

टिप्पणी—एकेन = "एकाकी त्वेक एककः" इत्यमरः । चक्रेण=करण में तृतीया। गतिः = गम्+क्तिन् । भवेत् = भू+लिङ् (संभावना में) तिप् । पुरुषकारेण = विना के योग में तृतीया । दैवम् = देवस्य भावः देव+अण्+दैवं "दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः" इत्यमरः । सिध्यति = सिध+लट्+तिप् ।

भावार्थः—जैसे एक पहिये से रथ की गति नहीं होती उसी तरह पुरुषार्थ के विना प्रारब्ध (भाग्य) सफल नहीं होता ॥ २९ ॥

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते ।
तस्मात् पुरुषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ३० ॥

अन्वयः—पूर्वजन्मकृतम् कर्म दैवम् इति कथ्यते तस्मात् अतन्द्रितः (सन्) पुरुषकारेण यत्नम् कुर्यात् ।

व्याख्या—पूर्वजन्मकृतम् = प्रागजन्मानुष्ठितम्, कर्म = क्रिया, दैवम् = भाग्यम्, इति कथ्यते=इति निगद्यते, तस्मात्=पूर्वम् उक्तात् कारणात् , अतन्द्रितः= अनलसः (सन्), पुरुषकारेण = पुरुषार्थेन, यत्नम् = उद्योगम्, कुर्यात=विदधीत ॥

टिप्पणी—पूर्वजन्मकृतम् = पूर्वं च तत् , जन्म पूर्वजन्म (क० धा०) तस्मिन् कृतम्, तत् (स० त०), कथ्यते = कथ + णिच् + लट् (कर्म में) यक् + त। अतन्द्रितः = न तन्द्रितः, अतन्द्रितः (नञ्त०), यत्नम् = यत + नङ्। कुर्यात् = कृ + विधिलिङ + तिप् ।

भाषार्थः—पहले जन्म में किये हुए कर्म को ही प्रारब्ध कहा जाता है। अतः आलसहीन हो पुरुषार्थ से उद्योग करना चाहिये ॥ ३० ॥

न दैवमिति सञ्चित्य त्यजेदुद्योगमात्मनः ।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति ॥ ३१ ॥

अन्वयः—दैवम् इति संचिन्त्य आत्मनः उद्योगम् न त्यजेत्। अनुद्योगेन तिलेभ्यः तैलानि आप्तुम् न अर्हति (मानवः, इति शेषः) ।

व्याख्या—दैवम् = भाग्यम, सञ्चिन्त्य = विचार्य, आत्मनः=स्वस्य, उद्योगम्= प्रयत्नम्, न त्यजेत् = न जह्यात् , अनुद्योगेन = प्रयत्नेन विना, तिलेभ्यः=तन्नामक- धान्यविशेषेभ्यः, तैलानि=तिलविकारान्, आप्तुम्=लब्धुम्, न अर्हति=न शक्नोति ॥

टिप्पणी—सञ्चिन्त्य = सं + चिन्त + क्त्वा + ल्यप्, यह अव्यय है। उद्योगम् = उद् + युज् + घञ्। सन्त्यजेत्, सं + त्यज + विधिलिङ् + तिप् । अनुद्योगेन = न उद्योगः = अनुद्योगः तेन (नञ् त०), तैलानि = तिलानाम् विकाराः, तिल + अण् , आप्तुम् = आप् + तुमुन् । अर्हति = अर्ह + लट् + तिप् ।

भाषार्थः—पुरुष अपने भाग्य पर (भाग्य में होगा तो बिना उद्योग के मिलेगा) ऐसा विचारकर अपने उद्योग का त्याग न करे। बिना उद्योग किये कोई भी व्यक्ति तिलों से तेल नहीं पा सकता है ॥ ३१ ॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥३२॥

अन्वयः—लक्ष्मीः उद्योगिनम् पुरुषसिंहम् उपैति कापुरुषाः दैवेन देयम् इति वदन्ति अतः दैवम् निहत्य आत्मशक्त्या पौरुषम् कुरु, यत्ने कृते न सिध्यति यदि, तर्हि, अत्र कः दोषः ।

व्याख्या=लक्ष्मीः = रमा, उद्योगिनम् = प्रयत्नशीलम्, पुरुषसिंहम् = नर- शार्दूलम् उपैति = समीपमायाति, कापुरुषाः=कुपुरुषाः, उद्योगहीनाः जनाः, दैवेन=

भाग्येन, देयम् = दातव्यम्, इति=इत्थम्, वदन्ति=ब्रुवन्ति। अतः दैवम् = भाग्यम्, निहत्य = अश्रद्धाय, आत्मशक्त्या = स्वसामर्थ्यानुगुण्येन, पौरुषम् = पुरुषार्थम्, कुरु = अनुतिष्ठ, यत्ने = उपाये, कृते=विहिते, न सिध्यति यदि = सिद्धिं नाप्नोति चेत् "तर्हि" अत्र = अस्मिन् विषये, को दोषः? = को नाम वाच्यः स्यात्।

टिप्पणी—उद्योगिनम् = उद्योगः यस्यः अस्ति स उद्योगी तम् तथोक्तम्, उद्योग्+इनि। पुरुषसिंहम् = पुरुषः सिंह इव इति पुरुषसिंहः तम् (उपमितसमासः), उपैति = उप + एति, "एत्येधत्यू०" इति वृद्धिः। एति=इण् + लट् + त। यहाँ (पुरुषसिंह शब्द में) सिंह शब्द श्रेष्ठ अर्थ का बोधक है। इसमें प्रमाण अमरोक्तिः—'स्युरुत्तरपदेव्याघ्रपुंगवर्षभकुञ्जराः सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः'। कापुरुषाः = कुत्सिताः पुरुषाः कुपुरुषाः (गतिसमासः), कु शब्द को का आदेश। आत्मशक्त्या=आत्मनः = शक्तिः आत्मशक्तिः तया (ष० त०)।

भाषार्थः—लक्ष्मी सिंह की तरह उद्योगशील पुरुष के पास स्वयं आ जाती है। केवल प्रारब्ध पर ही विश्वास करना कायरता का चिह्न है अतः भाग्य का भरोसा त्याग कर सामर्थ्यानुसार उद्योग करो, यदि उपाय करने पर कार्य में सिद्धि न मिले तो किससे क्या कहा जाय॥ ३२॥

यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद् यदिच्छति।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते॥ ३३॥

अन्वयः—यथा कर्ता मत्पिण्डतः यत्-यत् इच्छति एवम् मानवः आत्मकृतम् कर्म प्रतिपद्यते।

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, कर्ता = कारकः, यत्-यत् = यन्नामकम् यदाकारकम्, मृत्पिण्डतः = वर्तुलाकारमृत्तिकाराशेः, इच्छति = वाञ्छति, तत्तत् = कर्तृमनसिस्थितम्, कुरुते = निर्मिमीते। एवम् = पूर्वोक्तरीत्या, मानवः = मनुजः आत्मकृतम् = निजाचरितम्, कर्म = क्रियाम्, शुभाशुभफलरूपाम्, प्रतिपद्यते = प्राप्नोति॥

टिप्पणी—कर्ता = करोतीति कर्ता = कृ + तृन्। मृत्पिण्डतः = मृदः पिण्डः मृत्पिण्डः, (ष० त०) तस्मात्-मृत्, पिण्ड + तसिल्। इच्छति = इष + लट् + ति, कुरुते = कृ + लट् + त। मानवः, मनो अपत्यं पुमान् मानवः। मनु + अञ्। आत्मकृतम् = आत्मना कृतम्, आत्मकृतम्. तत् (तृ० त०)। प्रतिपद्यते = प्रति + पद् + लट् ÷ त।

भाषार्थः—जैसे कुम्हार मिट्टी के पिण्ड से जो-जो वस्तु बनाना चाहता है उसी प्रकार मनुष्य अपने किये हुए तत्तत् कर्मों के फल को प्राप्त होता है॥ ३२॥

काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वाऽपि निधिमग्रतः ।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते ॥ ३४ ॥

अन्वयः—काकतालीयवत् प्राप्तम् निधिम् अग्रतः दृष्ट्वा अपि दैवम् स्वयम् न आदत्ते पुरुषार्थम् अपेक्षते ॥

व्याख्या—काकतालीयवत् प्राप्तम् = अतर्कितोपनतम्, निधिम्=रत्नपूर्णपात्रम्, अग्रतः = पुरस्तात् , प्रत्यक्षतः, दृष्ट्वापि = विलोक्यापि, दैवम् = भाग्यम्, स्वयम् = आत्मना, न आदत्ते = न गृह्णाति, पुरुषार्थम् = हस्तगतं कर्तुमुद्योगम्, अपेक्षते = अपेक्षां करोति ।

टिप्पणी—काकतालीयवत् = काकागमनमिव तालपतनमिव, इति काकतालम् (सुप् सुपा) इति समासः, काकतालमिव इति काकतालीयम्, सादृश्येऽर्थे छप्रत्ययः । पुरुषस्य अर्थः पुरुषार्थः (ष० त०)।

भावार्थः—अकस्मात् प्राप्त हुई धनराशि को आगे पड़ी हुई देख कर भी भाग्य स्वयं उसे ग्रहण नहीं कर पाता किन्तु उसे हस्तगत करनेवाले व्यापार की इच्छा करता है ॥ ३४ ॥

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हि कार्याणि उद्यमेन सिध्यान्ति मनोरथैः न (सिध्यन्ति), मृगाः सुप्तस्य सिंहस्य मुखे नहि प्रविशन्ति ॥

व्याख्या—हि = यस्मात् , कारणात्, कार्याणि = कृत्यानि, उद्यमेन = उद्योगेन, सिध्यन्ति = सफलानि भवन्ति, न मनोरथैः = न अभिलाषैः । मृगाः = हरिणाः = सुप्तस्य = निद्रितस्य, मुखे = दंष्ट्रान्तराले, न प्रविशन्ति = न प्रवेशं कुर्वन्ति ॥

टिप्पणी—कार्याणि = कर्तुं योग्यानि = कृ + ण्यत् , उद्यमेन = करण में तृतीया, सिध्यन्ति = सिध + लट् + झि, मनोरथैः 'इच्छा काङ्क्षास्पृहेहा तृड् वाञ्छा लिप्सा-मनोरथाः' इत्यमरः । 'प्रविशन्ति = प्र + विश् + लट् + झि । अर्थान्तरन्यासः अलं० ।

भावार्थः—संसार के कार्य उद्योग से सिद्ध होते हैं अभिलाषाओं से नही । जैसे, हिरन स्वतः सोते हुए सिंह के मुख में नहीं चले जाते हैं ॥ ३५ ॥

माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ ३६ ॥

अन्वयः—येन बालो न पाठितः माता शत्रु पिता वैरी (बालः) हंसमध्ये बकः यथा सभामध्ये न शोभते ॥

व्याख्या—येन = मातृजनेन, पित्रा वा, बालः=माणवकः न पाठितः = न, अध्यापितः (सा) माता = जननी, शत्रुः = रिपुसदृशी, पिता = जनकश्च, वैरी = शत्रुरूपः (बालः) पूर्वोक्तः, हंसमध्ये = मरालमध्ये, बकः = कङ्कः, यथा = इव, सभामध्ये = संसदि, न शोभते=न द्योतते, नाद्रियते इति भावः ॥

टिप्पणी— हंसमध्ये=हंसानां मध्यम् हंसमध्यम्, तस्मिन् , (ष० त०)। बकः= 'अथबकः कङ्कः' इत्यमरः। पाठितः = पठ + णिच् + क्तः। सभामध्ये = सभायाः मध्यम्, सभामध्यम् तस्मिन् (ष० त०)। शोभते + शुभ + लट् + त।

भावार्थः—जिस माता या पिता ने अपने बालक को न पढ़ाया वे शत्रु के समान हैं। और वह अनपठित बालक भी हंसों के बीच में बगुले की भाँति सभा में शोभा नहीं पाता है ॥ ३६ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥ ३७॥

अन्वयः—रूपयौवनसम्पन्नाः, विशालकुलसंभवाः, (अपि) विद्याहीनाः (सन्तः), निर्गन्धाः किंशुकाः इव न शोभन्ते ॥

व्याख्या—रूपयौवनसम्पन्नाः = सौन्दर्यतारुण्ययुक्ताः, विशालकुलसंभवाः = कुलीनाः (अपि), विद्याहीनाः = अविद्वांसः (सन्तः), निर्गन्धाः = सुगन्धरहिताः किंशुकाः = पलाशवृक्षाः इव, न शोभन्ते = शोभां न प्राप्नुवन्ति ॥

टिप्पणी—रूपयौवनसम्पन्नाः = रूपं च यौवनं च रूपयौवने (द्वन्द्वः) ताभ्यां सम्पन्नाः, ते (तृ० त०)। विशालकुलसम्भवाः = विशालं च तत् कुलम्, विशालकुलम् (क० धा०) तस्मिन् संभवाः, ते, (स० त०)। विद्यया हीनाः विद्याहीनाः (तृ० त०), निर्गन्धाः=निर्गतः गन्धः, येभ्यस्ते (बहु०), उपमा, अलं० अ० छं०।

भावार्थः—सुन्दरता एवं युवावस्था से युक्त तथा उच्च कुल में उत्पन्न हुए भी हैं परन्तु यदि विद्याशून्य हैं तो सुगन्ध रहित ढाक (पलाश) वृक्ष की भाँति शोभा नहीं पाते हैं ॥ २७ ॥

अपरञ्च—पुस्तकेषु च नाऽधीतं नाऽधीतं गुरुसन्निधौ।
न शोभते सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियाः॥ ३८॥

अन्वयः—पुस्तकेषु न अधीतम्, गुरुसन्निधौ न अधीतम्, स्त्रियाः जारगर्भः इव सभामध्ये न शोभते।

व्याख्या—'येन' पुस्तकेषु = शास्त्रग्रन्थेषु, न अधीतम्=न पठितम्, गुरुसन्निधौ= उपाध्यायसमीपे, नाधीतम् = न पठितम्, स्त्रियाः = नार्याः, जारगर्भः इव = परपुरुषोत्पन्नसन्तानम् यथा, सभामध्ये = सज्जनपरिषदि, न शोभते=शोभां न लभते ॥

टिप्पणी—अधीतम् = अधि + इङ् + क्त, गुरुसन्निधौ=गुरोः सन्निधिः गुरुसन्निधिः तस्मिन् (ष० त०), जारगर्भः = जारात् जातः जारजातः गर्भः यस्य स जारगर्भः (मध्यमपदलोपिसमासः), सभामध्ये = सभायाः मध्यं, तस्मिन् (ष० त०)।

भावार्थः—जिसने न तो पुस्तकें पढ़ीं और न गुरुजनों से शिक्षा ही पाई, वह परपुरुष से उत्पन्न किसी स्त्री की सन्तान के समान सभा के मध्य में शोभा नहीं पाता ॥ ३८ ॥ (अ)।

मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किंचिन्न भाषते ॥ ३८ ॥ (अ)

अन्वयः—वस्त्रवेष्टितः मूर्खः अपि तावत् सभायाम् शोभते, यावत् किंचित् न भाषते तावत् मूर्खः शोभते ॥

व्याख्या—वस्त्रवेष्टितः=धृतोत्तमवसनः अपि, मूर्खः = बालिशः, अनधीतशास्त्रः। सभायाम् = पण्डितसदसि, शोभते = शोभां लभते तावत्। यावत् = यत्कालपरिमाणम्, किञ्चित् = किमपि, न भाषते = न वदति ॥

टिप्पणी—वस्त्रैः वेष्टितः = वस्त्रवेष्टितः (तृ० त०)।

भावार्थः—उत्तम वेश-भूषा से सुसज्जित मूर्ख भी जब तक कुछ न बोले तब तक विद्वानों की सभा में शोभा पाता है (बोलने पर तो वह अनादर का ही पात्र होता है) ॥ ३८ ॥ (अ)।

एतच्चिन्तयित्वा राजा पण्डितसभां कारितवान्। राजोवाच—'भो भोः पण्डिताः ! श्रूयतां मम वचनम्—'अस्ति कश्चिद् एवं भूतो विद्वान् , यो मम पुत्राणां नित्यम् उन्मार्गगामिनाम् अनधिगतशास्त्राणाम् इदानीं नीतिशास्त्रोपदेशेन पुनर्जन्म कारयितुं समर्थः ?'

व्याख्या—राजा = नृपः, सुदर्शनः, एतत् = पूर्वोक्तम्, चिन्तयित्वा = विचार्य, पण्डितसभाम् = विद्वद्गोष्ठीम्, कारितवान् = कारयामास, राजोवाच=नृपोऽब्रवीत्-भो भोः पण्डिताः = अहो विद्वांसः। श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्, मम = मे, वचनम्= कथनम्। अस्ति = वर्तते, कश्चित् = कोऽपि, एवंभूतः=एतादृशः, विद्वान्=पण्डितः। यः ममपुत्राणां = ममसुतानाम्, नित्यम्, प्रतिदिनम्, उन्मार्गगामिनाम् = कुत्सितपथपान्थानाम् = अनधिगतशास्त्राणाम्=शास्त्रज्ञानशून्यानाम्, इदानीम् = सम्प्रति, नीतिशास्त्रोपदेशेन = नयविद्याशिक्षया, पुनर्जन्म=जन्मान्तरम्, कारयितुम् = सम्पादयितुम्, समर्थः, शक्तः (स्यादिति शेषः)।

टिप्पणी—उन्मार्गगामिनाम् = उन्मार्गं गच्छन्तीति तच्छीलाः। उन्मार्ग + गम् + णिनिः (उपपदसमासः), अनधिगतशास्त्राणाम् = न अधिगतम्, अनधि-

गतम्, (नञ्त०) तत्, शास्त्रम् = शास्त्रज्ञानं येस्ते, अनधिगतशास्त्रास्तेषाम्, (बहु०), नीतिशास्त्रोपदेशेन = नीतेः = शास्त्रम, नीतिशास्त्रम् (ष० त०), नीतिशास्त्रस्य उपदेशः नीतिशास्त्रोपदेशस्तेन (ष० त०)। कारयितुम् = कृ + णिच् + तुमुन् ॥

भाषार्थः—राजा सुदर्शन ने विचार कर पण्डितों की सभा कराई। राजा ने पण्डितों से कहा—अहो विद्वज्जनो, कोई ऐसा विद्वान् है, जो नित्य उन्मार्ग में चलने वाले, तथा शास्त्रज्ञान-शून्य मेरे पुत्रों को नीतिशास्त्र पढ़ाकर उनका नया जन्म करा सके ?

यतः—काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—काचः काञ्चनसंसर्गात् मारकतीं द्युतिं धत्ते, तथा मूर्खः सत्संनिधानेन प्रवीणताम् याति ।

व्याख्या—काचः = क्षारः 'क्षार = काचे, रसे गुडे भस्मनि धूर्ते लवणे' इति हेमचन्द्रः। काञ्चनसंसर्गात् सुवर्णसम्पर्कात्, मारकतीम् मरकतमणि (हरिन्मणि)-सदृशीम, द्युतिम् = प्रभाम्, धत्ते = दधाति, तथा = तद्वत्, मूर्खः = मूढः, सत्सन्निधानेन = सज्जनसामीप्येन, प्रवीणताम् = नैपुण्यम्, याति = प्राप्नोति ॥

टिप्पणी—काञ्चनसंसर्गात् = काञ्चनस्य संसर्गः काञ्चनसंसर्गस्तस्मात् (ष०त०), धत्ते + धा + लट् + त, मरकतस्य इयम्, मारकती ताम्, मरकत + अण् + ङीप्, सत्सन्निधानेन=सतां सन्निधानम्, सत् सन्निधानम्, तस्मात् (ष० त०), प्रवीणताम् = प्रवीण + तल् + स्त्रीत्वम् ॥

भाषार्थः—जैसे काच सुवर्ण के सम्बन्ध से पन्नामणि के समान चमकता है। इसी तरह मूर्ख जन सज्जनों की संगति से सब कार्य करने में निपुण हो जाता है ॥ ३९ ॥

उक्तं च—हीयते हि मतिस्तात ! हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति, विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—तात ! हीनैः सह समागमात् मतिः हीयते, समैश्च समताम्, एति, विशिष्टैः च विशिष्टताम्, एति ॥

व्याख्या—हे तात् = हे वत्स ! मतिः = बुद्धिः, हीनैः = नीचैः, सह = साकम्, समागमात् = सम्पर्कात् हीयते = हीना भवति। समैः = आत्मसमानैः सह समागमात्, (पूर्वोक्तात्) समताम्=तुल्यताम्, एति=प्राप्नोति। विशिष्टैः = आत्मनः, उत्तमैः सह समागमात् = पूर्ववत्, विशिष्टताम् = उत्कृष्टताम्, ऐति = प्राप्नोति ॥

टिप्पणी—मतिः=मन् + क्तिन्, 'बुद्धिर्मनीषाधिषणाधीप्रज्ञाशेमुषी मतिः' इत्यमरः। हीनैः = सह के योग में तृतीया। समागमात् = हेतु में पंचमी। समताम् = सम + तल् + टाप्।

भावार्थः—पुरुष की बुद्धि नीचों की संगति से मलिन होती है, तथा अपने समान बुद्धि वालों के सम्पर्क से समान एवं उत्तमों की संगति से उत्तम होती है। (अतः उत्तमों की संगति करनी चाहिये।) ॥ ४० ॥

अत्रान्तरे विष्णुशर्मनामा महापण्डितः सकलनीतिशास्त्रतत्त्वज्ञो बृहस्पतिरिवाऽब्रवीत्—'देव! महाकुलप्रसूता एते राजपुत्राः, तत् मया नीतिं ग्राहयितुं शक्यन्ते।'

व्याख्या—अत्र = अस्मिन्, अन्तरे = अवसरे, सकलनीतिशास्त्रतत्त्वज्ञः = समस्तनयशास्त्रसारवेत्ता, बृहस्पतिः इव = देवगुरुवत्, विष्णुशर्मनामा = उक्ताभिधः, महापण्डितः = प्रकाण्डपण्डितः, अब्रवीत् = जगाद। देव! = हे राजन्, महाकुलप्रसूताः = उच्चवंशसमुत्पन्नाः, एते = इमे, राजपुत्रा = नृपकुमाराः, तत् = तस्मात् कारणात्, मया=विष्णुशर्मणा, नीतिम् = नयं, ग्राहयितुम् = ग्रहणं कारयितुम्, बोधयितुमित्यर्थः, शक्यन्ते = पार्यन्ते ॥

टिप्पणी—विष्णुशर्मनामाः = विष्णुशर्मा नाम यस्य सः (बहु०), महापण्डितः= महांश्चासौ पण्डितः महापण्डितः (क० धा०), सकलनीतिशास्त्रतत्त्वज्ञः = नीतेः = शास्त्रम्, नीतिशास्त्रम् (ष० त०), सकलञ्च तत् नीतिशास्त्रम् तत् (क० धा०), तस्य तत्त्वम् जानाति इति सकलनीतिशास्त्रतत्त्वज्ञः, (ष० त० गर्भक उपपद-समासः)। महाकुलप्रसूताः = महच्च तत् कुलम् महाकुलम् (क० धा०) तस्मिन् प्रसूताः, ते तथोक्ताः (स० त०), राजपुत्राः = राज्ञः पुत्राः राजपुत्राः (ष० त०), शक्यन्ते = शक् + लट् (कर्म में) त + यक्।

भावार्थः—इसी अवसर में बृहस्पति के समान समस्त नीतिशास्त्र के तत्त्ववेत्ता विष्णुशर्मानामवाले पण्डितजी बोले—हे राजन्! ये राजकुमार उच्चकुल में उत्पन्न हुए हैं। अतः मैं इन्हें नीतिशास्त्र का ज्ञान करा सकता हूँ ॥

यतः—नाऽद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती भवेत्।
न व्यापारशतेनाऽपि शुकवद् पाठ्यते बकः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—अद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती न भवेत्। बकः व्यापारशतेन अपि शुकवत् न पाठ्यते ॥

व्याख्या—अद्रव्ये = शिक्षादिग्रहणाय, अनुपयुक्तपात्रे, काचित् = कापि, क्रिया= शिक्षेत्यादिका, निहिता = स्थापिता, फलवती न भवेत् = शिक्षाफलम् न स्यात्।

यथा बकः = कङ्कः, व्यापारशतेन अपि = शतशः प्रयत्नैः, शुकवत् = कीर इव, न पाठ्यते = न शिक्षयितुं शक्यते ।

टिप्पणी—अद्रव्ये = न द्रव्यम् अद्रव्यम् तस्मिन् (नञ् त०), फलवती = फलं यस्या विद्यते सा फलवती = फल + मतुप् + वत्व + ङीप् । व्यापारशतेन=व्यापाराणां शतम् व्यापारशतम् तेन (ष० त०), शुकवत् = शुकेन तुल्यम्, शुकवत्, शुक + वति । यह अव्यय है । पाठ्यते = पठ + णिच् + लट् (कर्म में) यक् + त ।

भावार्थः—अपात्र में रक्खी गई कोई भी क्रिया सफल नहीं होती । सैकड़ों व्यापार करने पर भी बगुला तोते के समान नहीं पढ़ाया जा सकता ॥ ४१ ॥

अन्यच्च—अस्मिंस्तु निर्गुणं गोत्रे नाऽपत्यमुपजायते ।
आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—अस्मिन् गोत्रे निर्गुणम् अपत्यम् न उपजायते, पद्मरागाम् आकरे काचमणेः जन्म कुतः ।

व्याख्या—अस्मिन् = एतस्मिन्, गोत्रे = वंशे, गुणहीनम् = सन्ततिः, न उपजायते = न उत्पद्यते, पद्मरागाणाम्=माणिक्यमणीनाम्, आकरे = खानौ, काचमणेः= क्षाररत्नस्य, जन्म = उत्पत्तिः, कुतः = कस्मात्, (भविष्यति) ।

टिप्पणी—गोत्रे-'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ' इत्यमरः । निर्गुणम् = निर्गताः गुणाः यस्मात् तत् (बहु०), उपजायते = उप + जन् + लट् + त । पद्मरागाणानाम्=शोणरत्नं लोहितकः पद्मरागः इत्यमरः । काचमणेः=काचश्चासौ मणिः, काचमणिः तस्य (क० धा०) ।

भावार्थः—इस गुणवान् कुल में कोई निर्गुण (गुणहीन) सन्तान पैदा नहीं होती । क्योंकि जिस खान से माणिकमणि निकलती है उसमें काचमणि निकले इसमें कोई कारण नहीं है ॥ ४२ ॥

'अतोऽहं षण्मासाभ्यन्तरे भवत्पुत्रान् नीतिशास्त्राऽभिज्ञान् करिष्यामि ।' राजा सविनयं पुनरुवाच ।

व्याख्या—अतः = अस्मात् कारणात्, षण्मासाभ्यन्तरे = मासषट्कात् प्रागेव, भवत्पुत्रान् = युष्मत्सुतान्, नीतिशास्त्राऽभिज्ञान् = नयशास्त्रकोविदान्, करिष्यामि = विधास्यामि । राजा = नृपः, सविनयम् = विनीतः सन्, पुनः = भूयः, उवाच = जगाद् ॥

टिप्पणी—षट् च ते मासाः षण्मासाः (क० धा०), तेषाम् अभ्यन्तरम् तस्मिन् (ष० त०), भवत्पुत्रान् = भवतः पुत्राः भवत्पुत्रास्तान् (ष० त०), नीतिशास्त्राभिज्ञान् = नीतेः शास्त्रम् तस्य अभिज्ञाः, तान् (ष० त०) ।

भाषार्थः—इस लिये मैं छ महिना के अन्दर ही आपके पुत्रों को नीतिशास्त्र का विद्वान् बना दूँगा। यह सुन कर राजा सुदर्शन ने विनीत भाव से फिर बोला॥

कीटोऽपि सुमनः सङ्गादारोहति सतां शिरः।
अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः॥ ४३॥

अन्वयः—कीटः अपि सुमनः संगात् सताम् शिरः आरोहति। महद्भिः सुप्रतिष्ठितः अश्मा अपि देवत्वम् याति।

व्याख्या—कीटः = कृमि विशेषः, सुमनः संगात् = कुसुमसंम्पर्कात्, सताम् = महताम्, शिरः = मस्तकम्, आरोहति = आरोहणं करोति, महद्भिः = महापुरुषैः, वेदविद्भिः, सुप्रतिष्ठितः = विहितप्राणप्रतिष्ठात्मक संस्कारः। अश्मापि = पाषाणोऽपि देवत्वम्=देवभावनायोग्यम्, याति = भवति॥

टिप्पणी—सुमनः = सङ्गात् = सुमनसां सङ्गः सुमनः सङ्गः, तस्मात् (ष० त०) सुप्रतिष्ठितः = सुष्ठु प्रतिष्ठितः सुप्रतिष्ठितः (गतिसमास)।

भाषार्थः—कीड़ा भी फूलों के सम्बन्ध से महापुरुषों के मस्तक पर चढ़ जाता है और महापुरुषों द्वारा (वैदिक मन्त्रों से) प्रतिष्ठापित पाषाण भी देवता बन जाता है॥ ४३॥

यथोदयगिरेर्द्रव्यं सन्निकर्षेण दीप्यते।
तथा तत्सन्निधानेन हीनवर्णोऽपि दीप्यते॥ ४४॥

अन्वयः—यथा द्रव्यम् उदयगिरेः सन्निकर्षेण दीप्यते तथा हीनोऽपि तत्सन्निधानेन दीप्यते॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, द्रव्यम् = वस्तुजातम्, उदयगिरेः = उदयाचलस्य, सन्निकर्षेण = संपर्केण, दीप्यते=प्रकाशते, तथा=तेनैव प्रकारेण, हीनोऽपि= मूर्खजनोऽपि, तत्सन्निधानेन = सज्जनसंसर्गेण, दीप्यते = प्रकाशते॥

टिप्पणी—उदयगिरेः = उदयश्चासौ गिरिः उदयगिरिस्तस्य, (क० धा०), 'उदयः पूर्वपर्वतः' इत्यमरः। दीप्यते = दीपी + लट् + त। हीनवर्णः = हीनाः वर्णाः यस्य सः तथोक्तः (बहु०), तत्सन्निधानेन = तेषां, सन्निधानम्, तत्सन्निधानम्, तेन (ष० त०)।

भाषार्थः—जैसे वस्तुमात्र का प्रकाश उदयाचल के सम्पर्क से होता है उसी तरह मूर्ख जन भी विद्वानों की संगति से प्रकाशित होता है॥ ४४॥

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः॥ ४५॥

अन्वयः—गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति ते निर्गुणम् प्राप्य दोषा भवन्ति, नद्यः आस्वाद्यतोयाः (सत्यः) प्रवहन्ति, समुद्रम् आसाद्य, अपेयाः भवन्ति॥

व्याख्या—गुणाः = विद्यादाक्षिण्यादयः, गुणज्ञेषु = विद्यादाक्षिण्यादिज्ञातृषु, गुणाः = यथार्थनामानः, भवन्ति = वर्तन्ते । ते गुणा एव, निर्गुणम्=विद्यादाक्षिण्य-विरहितम्, प्राप्य = लब्ध्वा, दोषाः = अवगुणाः, भवन्ति = वर्तन्ते । नद्यः = सरितः, आस्वाद्यतोयाः = आस्वदनीयजलाः (सत्यः), प्रवहन्ति, 'ताः, नद्य एव' समुद्रम्= क्षारसागरम्, आसाद्य = प्राप्य, अपेयाः = पानानर्हाः, भवन्ति = वर्तन्ते ॥

टिप्पणी—गुणज्ञेषु = गुणान् जानन्ति, इति गुणज्ञास्तेषु, गुण + ज्ञा + कः (उपपदसमासः), भवन्ति = भू + लट् + झि । निर्गुणम् = निर्गताः गुणाः, यस्मात् स निर्गुणस्तम् (बहु०), आस्वाद्यतोयाः=आस्वाद्यानि, तोयानि यासां ताः (बहु०), 'अम्भोर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इत्यमरः । प्रवहन्ति = प्र + वह + लट् + झि । आसाद्य = आङ् + सद् + णिच् + क्त्वा + ल्यप् । अपेयाः = पातुं योग्याः, पा + यत् + ई + गुणः । न पेयाः, अपेयाः (नञ्) ।

भाषार्थः—गुण (विद्या, विनम्रता आदि गुण) गुणज्ञों में ही अपने गुण रूप में रहते हैं, वे ही गुण निर्गुण पुरुष को पाकर दोष बन जाते हैं। जैसे (गंगा आदि) नदियाँ पीने योग्य जल लेकर बहती हैं परन्तु वे ही नदियाँ, (खारजल वाले) समुद्र को पाकर अपेय हो जाती हैं, अर्थात् खारापन गुण उनमें भी आ जाने से वे पीने के काबिल नहीं रहतीं ॥ ४५ ॥

तदेतेषामस्मत्पुत्राणां नीतिशास्त्रोपदेशाय भवन्तः 'प्रमाणम्' इत्युक्त्वा तस्य विष्णुशर्मणः (करे) बहुमानपुरःसरं पुत्रान् समर्पितवान् ।

तत्=तस्मात् कारणात् , एतेषां = एषाम्, अस्मत्पुत्राणाम् = मम तनयानाम्, नीतिशास्त्रोपदेशाय = नयशास्त्राध्यापनाय, भवन्तः = यूयम्, प्रमाणम्=प्रमाणरूपाः, स्वतन्त्राः, इतरानपेक्षाः इत्यर्थः । इत्युक्त्वा = इत्थमभिधाय तस्य = पूर्वनिर्दिष्टस्य, विष्णुशर्मणः = तन्नामकस्य (करे), बहुमानपुरःसरम् = प्रचुरसत्कारपूर्वकम्, पुत्रान् = सुतान् , समर्पितवान् = समर्पणमकरोत् ॥

टिप्पणी—अस्मत्पुत्राणाम् = अस्माकं पुत्राः, अस्मत्पुत्राः, तेषाम् (ष० त०), नीतिशास्त्रोपदेशाय=नीतेः शास्त्रम्, तस्य उपदेशः नीतिशास्त्रोपदेशस्तस्मै (ष०त०), प्रमाणम् = प्र + माङ् + ल्युट् । विष्णुशर्मणः = 'कर्मादीनामपि संबन्धमात्रविवक्षायां षष्ठयेव' इस नियम के अनुसार चतुर्थी के स्थान में षष्ठी हुई है। बहुमानपुरस्सरम्= बहु च तत् मानम् बहुमानम् (क०धा०), तत् पुरः सरं यस्य तत् (बहु०), क्रि०वि०।

भाषार्थः—'इस कारण से हमारे इन पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश करने के लिये, आप प्रमाण (स्वतन्त्र रूप से अधिकारी) हैं।' ऐसा कह कर (राजा ने) अति सम्मान पूर्वक अपने पुत्रों को विष्णु शर्मा जी के हाथों में समर्पण कर दिया।

इति प्रस्ताविका, कथामुखम् ।

मित्रलाभः

अथ प्रासादपृष्ठे सुखोपविष्टानां राजपुत्राणां पुरस्तात् प्रस्तावक्रमेण सः पण्डितोऽब्रवीत् , भो राजपुत्राः ! शृणुत—

व्याख्या—अथ = राजपुत्राणां समर्पणानन्तरम्, प्रासादपृष्ठे=राजभवनोपरिभागे, सुखोपविष्टानाम् = आनन्देन समासीनानाम्, राजपुत्राणाम् = नृपकुमाराणाम्, पुरस्तात् = अग्रतः, सः = पूर्वोक्तः, पण्डितः = विद्वान् , अब्रवीत् = अवदत् , भो राजपुत्राः = हे राजकुमाराः ; शृणुत = आकर्णयत ।

टिप्पणी—प्रासादपृष्ठे=प्रासादस्य पृष्ठम्, तस्मिन् (ष० त०), सुखोपविष्टानाम्= सुखम् यथा स्यात् तथा, उपविष्टाः, तेषाम्, (सुप्सुपा) इति समासः । राजपुत्राणाम्=राज्ञः पुत्राः, राजपुत्रास्तेषाम् (ष० त०), प्रस्तावक्रमेण = अवसरपरिपाट्या, प्रस्तावस्य क्रमः, प्रस्तावक्रमः, तेन (ष० त०), पण्डितः=सदसद्विवेचिनी बुद्धिः पण्डा, सा संजाता, अस्य, सः पण्डित, इतच्प्रत्ययः । अब्रवीत् = ब्रूञ् + लङ् + तिप् + ईट् । राज्ञः पुत्राः राजपुत्रास्तत्सम्बुधौ भो राजपुत्राः ! शृणुत = सुनो । शृणुत = श्रु + लोट् + थस् ।

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥ १ ॥

अन्वयः—धीमताम् कालः काव्यशास्त्रविनोदेन गच्छति, मूर्खाणाम् व्यसनेन, निद्रया च, कलहेन वा (गच्छति) ।

व्याख्या—धीमताम् = प्रज्ञावताम्, कालः = समयः, काव्यशास्त्रविनोदेन = साहित्यविद्याप्रमोदेन, गच्छति = व्यत्येति, मूर्खाणाम् = बालिशानाम्, व्यसनेन = निद्रया = प्रस्वापेन, कलहेन = विग्रहेण, वा, गच्छति ।

टिप्पणी—धीमताम् = प्रशस्ता धीर्येषां ते, तेषाम्, धी + मतुप् । काव्यशास्त्र-विनोदेन = काव्यं च शास्त्रं च काव्यशास्त्रे (द्वन्द्वः), तयो = विनोदः, सः, तेन (ष० त०) । गच्छति=गम् + लट् + तिप् । मूर्खाणाम्=अज्ञेमूढयथाजातमूर्खवैधेय-बालिशाः, इत्यमरः । व्यसनेन + वि + अस् + ल्युट् । 'व्यसनंविपदिभ्रंशेदोषे कामज-कोपजे', इत्यमरः ।

भावार्थः—बुद्धिमानों का समय काव्य तथा शास्त्र के विनोद से व्यतीत होता है । मूर्खों का समय दुर्व्यसन से और निद्रा से अथवा कलह से व्यतीत होता है ॥ १ ॥

तद् भवतां विनोदाय काककूर्मादीनां विचित्रां कथां कथयिष्यामि । राजपुत्रैरुक्तम्, आर्य ! कथ्यताम् । विष्णुशर्मोवाच—शृणुत यूयम् , सम्प्रति मित्रलाभः प्रस्तूयते, यस्याऽयमाद्यः श्लोकः ।

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात् , भवताम् = युष्माकम्, विनोदाय = प्रमोदाय, काककूर्मादीनाम् = वायसकच्छपादीनाम्, विचित्राम् = अनेकप्रकाराम्, कथाम् = प्रबन्धकल्पनाम्, कथयिष्यामि = प्रतिपादयिष्यामि, । राजपुत्रैः = नृपकुमारैः, उक्तम् = कथितम् । आर्य !=पूजनीय ! कथ्यताम्=उच्यताम्, विष्णुशर्मा= तन्नामकः, उवाच = जगाद, शृणुत = आकर्णयत, सम्प्रति = इदानीम्, मित्रलाभः= एतन्नामकं प्रकरणम्, प्रस्तूयते = प्रारभ्यते, यस्य = मित्रलाभस्य, अयम् = एषः, आद्यः = प्रथमः, श्लोकः = पद्यम् 'वर्तते' ॥

टिप्पणी—विनोदाय = वि + नुद् + घञ् , काककूर्मादीनाम् = काकश्च, कूर्मश्च, काककूर्मौ, (द्वन्द्वः), तौ आदी येषां ते तेषाम्, (बहु०), कथाम् = कथनं कथा ताम्, कथ + अङ् + टाप् । 'प्रबन्धकल्पना कथा' इत्यमरः कथयिष्यामि = कथ + णिच् + लृट् + मिप् । आर्य ! ऋ + ण्यत् , 'महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः' इत्यमरः । कथ्यताम् = कथ + लोट् = यक् + त (कर्म में), उवाच = ब्रू + (वच) लिट् + तिप् । शृणुत + श्रु + लोट् + थ । मित्रलाभः = मित्राणां लाभः, मित्रलाभः (ष० त०), आद्यः = आदौ भवः, आदि + यत् ।

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः ।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत् ॥ २ ॥

अन्वयः—असाधनाः; वित्तहीनाः, बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः काककूर्ममृगाखुवत् कार्याणि, आशु साधयन्ति ॥

व्याख्या—असाधनाः = साधनरहिताः, वित्तहीनाः = निर्धनाः, बुद्धिमन्तः = सुधियः, सुहृत्तमाः=अत्युपकारिणः, काककूर्ममृगाखुवत् = वायसकच्छपहरिणमूषिकतुल्यम्, कार्याणि = कृत्यानि, आशु = सत्वरम्, साधयन्ति = सफलीकुर्वन्ति ॥

टिप्पणी—असाधनाः = अविद्यमानं साधनं येषां ते (बहु०), उत्तरपदलोपश्च । वित्तहीनाः = वित्तेन हीनाः वित्तहीनाः (तृ० त०), बुद्धिमन्तः = प्रशस्ता बुद्धिर्येषां विद्यते, ते, बुद्धि + मतुप् । सुहृत्तमाः = अतिशयेन सुहृदः सुहृत्तमाः सुहृद् + तमप् । काककूर्ममृगाखुवत्=काकश्च, कूर्मश्च, मृगश्च, आखुश्च, इति काककूर्ममृगाखवः, तैस्तुल्यम् तत् (द्वन्द्वगर्भकः वति प्रत्ययान्तः) । आशु=यह अव्यय है, साधयन्ति= साध + लट् + झि ॥

भाषार्थः—अच्छे मित्रवाले तथा बुद्धिमान् लोग साधन एवं धन न रहने पर भी कौआ, कछुआ, हिरन, मूषिक (चूहे) के समान अपने कार्यों को सफल कर लेते हैं ॥ २ ॥

राजपुत्रा, ऊचुः—कथमेतत् । सोऽब्रवीत् । अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति । अथ कदाचिद् असन्नायां रात्रौ अस्ताचलचूडावलम्बिनि कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि, लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयमायान्तं पाशहस्तं व्याधम् अपश्यत् । तम् आलोक्याऽचिन्तयत्—अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनं जातम्, न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति । इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः ।

व्याख्या—राजपुत्राः = नृपकुमाराः, ऊचुः = जगदुः—कथमेतत् = पूर्वपद्यप्रतिपादितम्, केन प्रकारेण संवृत्तम् । सः पूर्वोक्तः महापण्डितः, अब्रवीत् = अवदत् । गोदावरीतीरे = गोदावरीनदीतटे, विशालः = बृहत्कायः, शाल्मलीतरुः = तन्नामकवृक्षः, अस्ति = वर्तते । तत्र = वृक्षे नानादिग्देशात् = अनेककाष्ठाप्रदेशात् , आगत्य = एत्य, रात्रौ = निशायाम्, पक्षिणः = पतत्त्रिणः, निवसन्ति = निवासं कुर्वन्ति । अथ = अनन्तरम्, कदाचित् = जातुचित् , रात्रौ = निशायाम्, अवसन्नायाम् = व्यतीतायाम् (सत्याम्), भगवति = ऐश्वर्यसंपन्ने, कुमुदिनीनायके= कैरविणिनाथे, चन्द्रमसि = शशाङ्के, अस्ताचलचूडावलम्बिनि = अस्तंगते (सति), लघुपतनकनामा = लघुपतनकाभिधः, वायसः = काकः, प्रबुद्धः = जागरितः, द्वितीयम् = अपरम्, आयान्तम्=आगच्छन्तम्, कृतान्तम् = मृत्युम्, यमम्, इव=यथा, व्याधम् = मृगयुम्, अपश्यत् = अवलोकयत् । तम् = व्याधम्, आलोक्य=निरीक्ष्य, अचिन्तयद् = अध्यायत् । अद्य = अस्मिन् दिने, प्रातः एव = प्रभातसमय एव, अनिष्टदर्शनम् = अनभीष्टेक्षणम्, जातम् = संवृत्तम् । न जाने = न वेद्मि, किमनभिमतम्, कीदृशम्, अनभीष्टम्, दर्शयिष्यति = विलोकयिष्यति । इत्युक्त्वा = एवं वदित्वा, तदनुसरणक्रमेण = तदनुगमनपरिपाट्या, व्याकुलः = अत्याकुलः (सन्), चलितः = प्रस्थितः ।

टिप्पणी—गोदावरीतीरे=गोदावर्याः तीरम् गोदावरीतीरम् तस्मिन् (ष०त०), शाल्मलीतरुः = शाल्मली चासौ तरुः शाल्मलीतरुः (क० धा०), नानादिग्देशात्= दिशश्च देशाश्च एषां समाहारः दिग्देशम् (द्वन्द्वः), नाना च तत् दिग्देशम्, तत् तस्मात् (क० धा०), भगवति = भगमस्य अस्तीति भगवान् तस्मिन् ; भग+ मतुप् । 'ऐश्वर्य वीर्य, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य ये छ गुण अखण्डरूप से जिनमें रहते हैं उन्हे भगवान् कहते हैं । 'कुमुदिनीनायके=कुमुदिन्याः नायकस्तस्मिन् (ष०त०) । चन्द्रमसि = शशाङ्के । अस्ताचलचूडावलम्बिनि = अस्तश्चासौ अचलः अस्ताचलः

(क० धा०), तस्य चूडा (ष० त०), तामवलम्बते तच्छीलः, (उपपदसमासः णिनिः प्रत्ययश्च), अस्ताचलचूडावलम्बी, तस्मिन्। लघुपतनकनामा = लघुपतनकः नाम यस्य सः, तथोक्तः (बहु०), कृतान्तम् = कृत=अन्तो येन स कृतान्तः तम्, (बहु०), 'कृतान्तो यमुना भ्राता शमनोयमराड्यमः' इत्यमरः। अनिष्टदर्शनम्= न इष्टः अनिष्टः (नञ् त०), अनिष्टस्य दर्शनम्, अनिष्टदर्शनम् तत (ष० त०)। अनभिमतम् = न अभिमतम्, अनभिमतम्, (नञ् त०), तदनुसरणक्रमेण = तस्य अनुसरणम् (ष० त०), तस्य क्रमस्तेन (ष० त०)।

भाषार्थः—राज कुमारों ने कहा—यह कैसे ? तब विष्णु शर्मा बोले—गोदावरी नदी के तीर पर विशाल सेमल का वृक्ष है। उसपर अनेक दिशाओं और प्रदेश से आकर रात में पक्षी निवास करते हैं। बाद में किसी समय रात्रि समाप्त प्रायः हो रही थी और कुमुदिनियों के नायक भगवान् चन्द्रमा भी अस्त हो रहे थे तब लघुपतनक नामका कौआ जगा और दूसरे काल (यमराज) की तरह हाथ में जाल लिये हुए आ रहे बहेलिया को देखा। देखकर विचार किया—'आज प्रातः काल ही अशुभ दर्शन हुआ। न मालूम क्या अनिष्ट दिखलायेगा'। ऐसा कहकर (ज्यों ही बहेलिया नजदीक से होकर गुजरता है त्योंही) उसके पीछे-पीछे आतुर (व्याकुल) होकर (वह कौआ भी) चल दिया ॥ २ ॥

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च दिवसे दिवसे मूढम् आविशन्ति, पण्डितम् न (आविशन्ति)।

व्याख्या—शोकस्थानसहस्राणि = मन्युहेतुसहस्राणि, भयस्थानशतानि च = भीतिहेतुशतानि च, दिवसे-दिवसे = प्रतिदिनम्, मूढम् = मूर्खम्, आविशन्ति = प्रविशन्ति, न पण्डितम् = विद्वांसम्, न, प्रविशन्ति।

टिप्पणी—शोकस्थानसहस्राणि = शोकानां स्थानानि (ष० त०), तेषां सहस्राणि, तानि (ष० त०), भयस्थानशतानि च = भयानां स्थानानि (ष० त०), तेषां शतानि तानि तथोक्तानि (ष० त०), आविशन्ति + आ + विश् + लट् + झि। विद्वांसम्, शोकस्य भयस्य च हेतवो न पीडयन्तीतिभावः।

भाषार्थः—शोक के हजारों कारण तथा भय के सैंकड़ों कारण प्रति-दिन मूर्ख को आ घेरते हैं, न कि बुद्धिमान् को ॥ ३ ॥

'अन्यच्च'—विषयिणामिदमवश्यं कर्तव्यम्।

व्याख्या—अन्यच्च = अपरंच—विषायिणाम्=शब्दस्पर्शादिविषयवताम्, इदम्= एतत्, अवश्यम् = नूनं यथा तथा, कर्तव्यम् = करणीयम् ।

टिप्पणी—विषयिणाम् = विषयाः सन्ति येषां ते विषयिणः, तेषाम्; विषय + इनिः । कृ + तव्यत् = कर्तुं, योग्यम् = कर्तव्यम्, ।

भाषार्थः— और भी । शब्द, स्पर्श, आदि विषय-सेवियों को यह अवश्य करना चाहिये ।

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपस्थितम् ।
मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति ॥ ४ ॥

अन्वयः—उत्थाय, उत्थाय, बोद्धव्यम्, महत्, भयम्, उपस्थितम्, मरणव्याधिशोकानाम् (मध्ये), अद्य किम् निपतिष्यति ?

व्याख्या—उत्थाय, उत्थाय = पुनः पुनरुत्थानं कृत्वा, बोद्धव्यम् = परिचेतव्यम्, महत् = अनल्पम्, भयम् = त्रासः, उपस्थितम्=सम्प्राप्तम् । मरणव्याधिशोकानाम्= निधनरोगमन्यूनाम् (मध्ये), अद्य = अस्मिन् दिने, किम्=कतमत्, निपतिस्यति= आयास्यति ॥

टिप्पणी—मरणव्याधिशोकानाम् = मरणं च रोगश्च, शोकश्च, मरणव्याधिशोकास्तेषाम् (द्वन्द्वः), बोद्धुं योग्यम्, बोद्धव्यम्, बुध् + तव्यत् ॥

भाषार्थः—प्रतिदिन उठ-उठ कर विचारना चाहिए कि, भारी संकट उपस्थित हुआ है, (फिर) मृत्यु, रोग, या शोक में से आज कौन-सा आयेगा ॥ ४ ॥

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान् विकीर्य जालं विस्तीर्णम् । स च तत्र प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः । अस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पन् तान् तण्डुलकणान् अवलोकयामास । ततः कपोतराज-स्तण्डुलकणलुब्धान् कपोतान् प्राह—कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां संभवः ? तन्निरूप्यतां तावत्. भद्रमिदं न पश्यामि । प्रायेणानेन तण्डुलकणालोभेनाऽस्माभिरपि तथा भवितव्यम् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, तेन = पूर्वोक्तेन, व्याधेन = मृगयुना, तण्डुलकणान्=तण्डुलातिसूक्ष्मांशान्, विकीर्य = विक्षिप्य, जालम् = आनायः; विस्तीर्णम् = प्रसारितम् । अस्मिन्नेव काले = अत्रैव समये, चित्रग्रीवनामा = चित्रग्रीवाभिधः, कपोतराजः = पारावताधिपः, सपरिवारः = सकुटुम्बः, वियति = आकाशे, विसर्पन् = उड्डीयमानः, तान् = पूर्वोक्तान्, तण्डुलकणान्=तण्डुलातिसूक्ष्मांशान्, अवलोकयामास = ददर्श, ततः = तदनन्तरम्, अवलोकनान्तरम्, कपोतराजः =

पारावताधिपः, तण्डुलकणलुब्धान् = तण्डुलसूक्ष्मांशलोलुपान् , कपोतान् = पारावतान् , प्राह = वदति, अत्र = अस्मिन् , निर्जने = मानवरहिते, वने = अरण्ये, तण्डुलसूक्ष्मांशानाम्, संभवः = उत्पत्तिः, कुतः = कस्मात् कारणात् , 'अस्ति', तत् = तस्माद्धेतोः, तावत् = संप्रति, निरूप्यताम् = विचार्यताम्, भद्रम् = शोभनम्, इदम् = एतत् , न पश्यामि = नावलोकयामि । अनेन = एतेन, तण्डुलकणलोभेन = तण्डुलसूक्ष्मांशलोलुपत्वेन, अस्माभिः = अस्मदादिसर्वैः कपोतैः, अपि, तथा = तेन प्रकारेणैव, भवितव्यम् = भवनीयम् ॥

टिप्पणी—तण्डुलकणान् = तण्डुलानां कणास्तान् (ष० त०), कपोतराजः = कपोतानां राजा, इति कपोतराजः (ष० त०), समासान्तः टच् हुआ है । सपरिवारः = परिवारेण सह वर्तमानः सपरिवारः (बहु०), तण्डुलकणलुब्धान् = तण्डुलानां कणाः (ष० त०), तेषु लुब्धास्तान् (स० त०), प्राह = प्र + ब्रू + आह + लट् + तिप् + णल् । निर्जने = निर्गताः जना यस्मात् तत् , तस्मिन् (बहु०), कुतः = किम् + तसिल् + कु । यह अव्यय है । निरूप्यताम् = नि + रूप + लोट् (कर्म में हुआ है), पश्यामि = दृश् + लट् + मिप् + शप् + पश्य + दीर्घः । तण्डुलकणलोभेन = तण्डुलानां कणाः, (ष० त०), तेषु लोभस्तेन (स० त०), कणः = कणोऽतिसूक्ष्मेधान्यांशे' इत्यमरः । 'आनायः पुंसि जालम् स्यात्' इत्यमरः । भवितव्यम् + भू + तव्यत् ।

भावार्थः—इसके बाद उस बहेलिया ने चावल के कणों (किनकी, खुद्दी) को छींटकर जाल फैला दिया और स्वयं छिपकर बैठ गया। उसी समय अपने परिवार के साथ आकाश में उड़ते हुए कबूतरों के राजा चित्रग्रीव ने उन चावल के टुकड़ों को देखा । तब कपोतराज (चित्रग्रीव) ने चावल के टुकड़ों के लालची कबूतरों से बोला—इस निर्जन वन में ये चावल के कण कहाँ से आये ? पहले यह समझ लो । मैं इसे अच्छा नहीं देखता हूँ । प्रायः करके इस कण के लोभ से हमारी भी वैसी दशा होगी (जैसे कंगन के लोभ से उस पथिक की हुई) ।

कङ्कणस्य तु लोभेन मग्नः पङ्के सदुस्तरे ।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः सम्मृतो यथा ॥ ५ ॥

अन्वयः—कङ्कणस्य तु लोभेन सुदुस्तरे पङ्के मग्नः पथिकः वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः (सन्), यथा सम्मृतः (तथा, अस्माभिरपि भवितव्यम्, इति पूर्वेणैव सम्बन्धः)।

व्याख्या—कङ्कणस्य = सुवर्णकटकस्य, लोभेन = लोलुपतया, सुदुस्तरे = तरितुमशक्ये, पङ्के = कर्दमे, मग्नः = निपतितः, पथिकः = पान्थः, वृद्धव्याघ्रेण = जरठद्वीपिना, सम्प्राप्तः = संगतः (सन्), यथा = येन प्रकारेण. सम्मृतः = पञ्चत्वंगतः (तथा अस्माभिरपि भवितव्यम्), इति पूर्वप्रघट्टकेनैव समन्वयः ॥

टिप्पणी—सुदुस्तरे = अत्यन्तं दुस्तरः, तस्मिन् (गतिसमासः), पथिकः = पथिन् + ष्कन्, वृद्धव्याघ्रेण = वृद्धश्चासौ व्याघ्रस्तेन (क० धा०), 'शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे' इत्यमरः।

भावार्थः—कङ्कण के लोभ से बुड्ढे बाघ के समीप आया हुआ वह पथिक अति कठिन कीचड़ में फँस कर उसी बाघ के द्वारा जैसे मर गया॥

कपोता ऊचुः कथमेतत्? सोऽब्रवीत्—

व्याख्या—कपोताः = पारावताः, ऊचुः = जगदुः। कथम् = केन प्रकारेण, एतत् = पूर्वोक्तवृत्तम्, सः = कपोतराजः, अब्रवीत् = उवाच।

टीप्पणी—'पारावतः कलरवः, कपोतः' इत्यमरः।

भावार्थः—कबूतरों ने कहा—यह कैसे? कपोराज ने कहा—

१. वृद्धव्याघ्रपथिकयोः कथा।

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम्—एको वृद्धो व्याघ्रः स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते—भो भोः पान्थाः! इदं सुवर्णकङ्कणं गृह्यताम्। ततो लोभाकृष्टेन केनचित् पान्थेन आलोचितम्—भाग्येन एतत् सम्भवति। किन्तु अस्मिन् आत्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न विधेया।

व्याख्या—अहम् = चित्रग्रीवः, एकदा = एकस्मिन् समये, दक्षिणारण्ये = दक्षिणदिक्कानने, चरन् = गच्छन्, अपश्यम् = व्यालोकयम्। एकः = अद्वितीयः, वृद्धः = स्थविरः, व्याघ्रः = द्वीपी, स्नातः = कृतस्नानः, कुशहस्तः = दर्भपाणिः, सरस्तीरे = कासारतटे, ब्रूते = ब्रवीति, भोभोः पान्थाः = अहो पथिकाः, इदम् = एतत्, सुवर्णकङ्कणम् = पुरटवलयम्, गृह्यताम् = आदीयताम्, ततः = तद्वाक्यश्रवणानन्तरम्, लोभाकृष्टेन = लोभाभिभूतेन, केनचित् = अनिर्वचनीयेन, पान्थेन = पथिकेन, आलोचितम् = दृष्टम्। भाग्येन = भागधेयेन, एतत् = सुवर्णकङ्कणम्, सम्भवति = सम्भाव्यते। किन्तु = परन्तु, अस्मिन् = एतस्मिन्, आत्मसन्देहे = प्राणसंशये, प्रवृत्तिः = चेष्टा (आदातुम्), न विधेया = न कर्तव्याः।

टिप्पणी—एकदा = एक + दा। दक्षिणारण्ये = दक्षिणे, अरण्यम् तस्मिन् (स० त०), स्नातः = स्ना + क्तः। कुशहस्तः = कुशैर्युक्तः (तृ० त०), कुशयुक्तः हस्तः यस्य सः तथोक्तः (शाकपार्थिवादिवत् मध्यमपदलोपिसमासः), सरस्तीरे = सरसः तीरम्, तत्, तस्मिन् (ष० त०), 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः। पान्थाः = पन्थानम् गच्छन्तीति पान्थाः। पथिन् + णप्रत्ययः पान्थादेशश्च। सुवर्णकङ्कणम् = सुवर्णस्य कङ्कणम्, तत् तथोक्तम् (ष० त०), गृह्यताम् = ग्रह + लोट् + यक् + त, (यह कर्मवाच्य क्रिया है), लोभाकृष्टेन = लोभात् आकृष्टः लोभाकृष्टस्तेन (पं०त०),

आलोचितम्=आ+लोच्+क्तः। आत्मसन्देहे=आत्मनः सन्देहः, तस्मिन्, (ष०त०) विधातुं योग्या विधेया=वि+धा+यत्+ईत्वं गुणश्च।

भाषार्थः—मैं एक समय दक्षिण दिशा के वन में घूम रहा था तो देखा कि एक वृद्ध बाघ स्नान करके कुशों को हाथ में लिये हुए कह रहा है—हे हो मार्ग के चलने वाले पथिको! मेरे हाथ में रक्खे हुए इस सुवर्ण के कङ्कण (कड़ा) को लेलो, इसे सुनकर लालच के वशीभूत होकर किसी बटोही ने (मन में) विचारा—ऐसी वस्तु, (सुवर्ण कङ्कण) भाग्य से उपलब्ध होती है। परन्तु इसे लेने के लिये, बाघ के पास जाना उचित नहीं, क्योंकि इसमें प्राणों का सन्देह है।

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।
यत्राऽऽस्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे॥ ६॥

अन्वयः—अनिष्टात्, इष्टलाभे अपि शुभा गतिः न जायते, यत्र विषसंसर्गः, आस्ते तत् अमृतम् अपि मृत्यवे (भवति)।

व्याख्या—अनिष्टात्=अमङ्गलसूचकात्, इष्टलाभे=अभिलषितवस्तुप्राप्तौ, अपि, गतिः=फलम्, शुभा=वरिष्ठा, न जायते=नोत्पद्यते, यत्र=सुधायाम्, विष-संसर्गः=गरलसम्पर्कः, अस्ति=विद्यते, तत्=प्रसिद्धम्, अमृतम्=पीयूषमपि, मृत्यवे=निधनाय, भवतीति शेषः।

टिप्पणी—अनिष्टात्=न इष्टम्, अनिष्टम्, तस्मात् (नञ् त०), इष्टलाभेऽपि= इष्टस्य लाभः इष्टलाभः, तस्मिन् (ष० त०), विषसंसर्गः=विषस्य संसर्गः, विष-संसर्गः (ष० त०), 'पीयूषममृतं सुधे'त्यमरः।

भाषार्थः—अनिष्ट स्थान (बाघ इत्यादि) से सुवर्ण-कङ्कणसदृश अभीष्टवस्तु के लाभ की सम्भावना होते हुए भी कल्याण होना नजर नहीं आता। क्योंकि जिस अमृत में जहर का सम्पर्क है वह अमृत भी मौत का कारण है, न कि अमरता का॥ ६॥

किन्तु सर्वत्रार्थार्जनप्रवृत्तौ सन्देह एव। तथा चोक्तम्—

व्याख्या—किन्तु=परन्तु, सर्वत्र=सर्वस्याम्, अर्थार्जनप्रवृत्तौ=वित्तसंग्रहे-हायाम्; सन्देहः एव=संशय, एव=नूनम्; तथा=तेन प्रकारेण चोक्तम्=अभिहितम्।

टिप्पणी—सर्वत्र=सर्व+त्रल्, अर्थार्जनप्रवृत्तौ=अर्थस्य, अर्जनम्, तत्, (ष० त०), तस्य प्रवृत्तिः, तस्याम् (ष० त०)।

भाषार्थः—किन्तु धन पैदा करने की सभी क्रियाओं में सन्देह की सम्भावना रहती ही है। जैसा कि कहा गया है—

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति॥ ७॥

अन्वयः—नरः संशयम्, अनारुह्य भद्राणि न पश्यति। पुनः संशयम् आरुह्य यदि जीवति, (तर्हि) पश्यति।

व्याख्या—नरः = मानव, संशयम् = सन्देहम्, अनारुह्य=अनधिष्ठाय, भद्राणि= मङ्गलानि, न पश्यति = न विलोकयति, पुनः = भूयः, संशयम्=सन्देहम्, आरुह्य= अधिष्ठाय, 'अपि' जीवति, यदि = प्राणान् धारयति चेत् , 'तर्हि' पश्यति = प्रेक्षते, (मङ्गलानि, इति शेषः)। सन्देहास्पदं कार्यं कृत्वा मङ्गलानि न पश्यति, कृत्वा तु यदि जीवति तदा पश्यतीतिभावः॥

टिप्पणी—अनारुह्य = न आरुह्य इति, अनारुह्य (नञ्), पश्यति = दृश् + लट् + तिप्। पुनः = यह अव्यय है—आरुह्य=आङ् + रुह + क्त्वा + ल्यप्। जीवति= जीव + लट् + तिप॥

भावार्थः—कोई भी व्यक्ति सन्देहपूर्ण कार्य में बिना पग बढ़ाये कल्याण के दर्शन में असमर्थ ही रहता है। हाँ, फिर सन्देहपूर्ण कार्य करने पर यदि वह जीता रहता है तो कल्याण का दर्शन करता है॥ ७॥

'तन्निरूपयामि तावत्। प्रकाशं ब्रूते-'कुत्र तव कङ्कणम्'? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति। पान्थोऽवदत्—कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः।

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात् , तावत् = प्रथमम्, निरूपयामि = परीक्षणं करोमि (अस्य वचनस्येतिशेषः), प्रकाशम् = श्रवणार्हम्, उच्चस्वरेण यथा, तथा, ब्रूते = वदति, तव = भवतः, कङ्कणम् = कटकम्, कुत्र = क्व अस्तीति शेषः। व्याघ्रः= द्वीपी, हस्तम् = करम्, प्रसार्य = विस्तार्य्य, दर्शयति = दर्शनं कारयति, पान्थः = पथिकः, अवदत् = अब्रवीत् , कथम् = केन प्रकारेण, मारात्मके = हिंस्रस्वभावे, त्वयि = भवति, विश्वासः = विस्रंभः।

टिप्पणी—दर्शयति = दृश् + णिच + तिप् , प्रसार्य = प्र + सृ + णिच् + क्त्वा + ल्यप्। अवदत् = वद + लङ् + तिप्। मारात्मके = मारः (मारणं), आत्मा = स्वभावो यस्य तस्मिन् , (बहु०) समासान्तः कप्।

भावार्थः—इस कारण से सर्वप्रथम मैं इसके वाक्य के तथ्य (सत्य), अतथ्य (असत्य) का परीक्षण करता हूँ। (वह) उच्चस्वर से बोलता है—'कहाँ है तुम्हारा कंगन ?' बाघ हाथ फैला कर देखाता है। पथिक बोला मारने वाले तुम में कैसे विश्वास (हो) ?

व्याघ्र उवाच—शृणु रे पान्थ ! प्रागेव यौवनदशायामहमतीव दुर्वृत्त आसम्। अनेकगोमानुषाणां वधान्मे पुत्राः मृताः दाराश्च, वंशहीनाश्चाहम्। ततः केनचिद् धार्मिकेणाहमुपदिष्टः—'दानधर्मादिकं चरतु भवान्' इति। तदुपदेशादिदानीमहं स्नानशीलः दाता, वृद्धो गलितनखदन्तः, कथं न विश्वासभूमिः ?।

व्याख्या—व्याघ्रः = द्वीपी, उवाच = जगाद, रे पान्थ = अरे पथिक ! शृणु = श्रवणं कुरु, अहम् = व्याघ्रः, प्रागेव = पूर्वस्यामेव, यौवनदशायाम् = युवावस्थायाम्, अतिदुर्वृत्तः = अधिकदुराचारी, आसम् = अभवम् । अनेकगोमानुषाणाम् = बहुधेनुमानवानाम्, वधात् = मारणात्, मे = व्याघ्रस्य, पुत्राः = तनयाः, मृताः = निधनं, प्राप्ताः दाराश्च = भार्या च मृता । 'इदानीम्', अहम् = व्याघ्रः, वंशहीनः = सन्ततिरहितः, 'अस्मि' इति शेषः । ततः = तदनन्तरम्, केनचित् = अपरिचितेन, धार्मिकेण = पुण्यशीलेन, अहम् = व्याघ्रः, उपदिष्टः = कृतोपदेशः, भवान् = त्वम्, दानधर्मादिकम् = दानव्रतादिपुण्यकार्यम्, चरतु = कुरुताम्, तदुपदेशात् = धार्मिकाज्ञया, अहम् = पूर्वोक्तः, स्नानशीलः = प्रतिदिनस्नानस्वभावः, दाता = दानकर्ता, वृद्धः = स्थविरः, गलितनखदन्तः = नष्टकरजरदः, कथं = केन प्रकारेण, न विश्वासभूमिः = न विश्रम्भपात्रम्, (अस्मि) ।

टिप्पणी—शृणु = श्रु + लोट् + सिप् । यौवनदशायाम् = यौवनस्य दशा, तस्याम् (ष० त०), दुर्वृत्तः = दुष्टं वृत्तं यस्य स, तथोक्तः (बहु०), 'वृत्तं पद्ये चरित्रे च', इत्यमरः । आसम् = अस् + लङ् + मिप् । अनेकगोमानुषाणाम् = गावश्च मानुषाश्च, गोमानुषाः (द्वन्द्वः), अनेके च ते गोमानुषाः, तेषाम् (क० धा०), वधात् = हेतु में पंचमी । दाराः = 'भार्या जायाथ पुंभूम्नि दाराः' इत्यमरः । वंशहीनः = वंशेन हीनः वंशहीनः (तृ० त०), धार्मिकेण = धर्मेण चरति, इति धार्मिकः । धर्म + ठक् (इकः), उपदिष्टः । उप + दिश् + क्तः । (कर्म में), दानधर्मादिकम् = दानं च धर्मं च, दानधर्मौ (द्वन्द्वः), तौ आदी यस्मिन् तत् । (बहु), चरतु + चर + लोट् + तिप् । तदुपदेशात् = तस्य, उपदेशः तदुपदेशः, (ष० त०), स्नानशीलः = स्नानं शीलं यस्य सः तथोक्तः । (बहु०), गलितनखदन्तः = नखाश्च दन्ताश्च, एषां समाहारः नखदन्तम् (समाहार द्वन्द्व एकवद्भावश्च), गलितं नखदन्तम् यस्य सः तथोक्तः (बहु०), विश्वासभूमिः = विश्वासस्य भूमिः विश्वासभूमिः (ष० त०) ।

भाषार्थः—तब व्याघ्र ने कहा—अरे बटोही, सुनो । पहले मैं जब जवान था तब बड़ा भारी दुराचारी था । अनेक गौ तथा मनुष्यों को मारने से मेरे पुत्र तथा पत्नी सब मर गये और मैं सन्तान हीन हो गया । इसके बाद किसी धार्मिक पुरुष ने मुझे उपदेश दिया कि आप दान, व्रत, धर्मादि पुण्य कार्य कीजिये । उसके उपदेश से प्रतिदिन स्नान कर दान देता हूँ, वृद्ध हो गया हूँ, मेरे नख तथा दाँत गल चुके हैं । (ये ही तो मेरे आयुध थे-अब निरायुध हो चुका हूँ) तब मैं विश्वासपात्र क्यों नहीं ?

यतः—इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥ ८ ॥

अन्वयः—इज्याध्ययनदानानि, तपः, सत्यम्, धृतिः क्षमा, अलोभः, इति अयम्, धर्मस्य मार्गः अष्टविधः स्मृतः ।

व्याख्या—इज्याध्ययनदानानि = यागवेदपाठवितरणानि, तपः = तपस्या, कृच्छ्र-चान्द्रायणादि, सत्यम् = तथ्यभाषणम्, धृतिः = धैर्यम्, क्षमा = तितिक्षा, (सति-सामर्थ्ये परापराधसहनम्), अलोभः = अतिरिक्तलिप्साभावः, अयम् = एषः, धर्मस्य = पुण्याचरणस्य, मार्गः = पन्थाः, अष्टविधः = प्रकाराष्टकः, स्मृतः = (आख्यातः) ।

टिप्पणी—इज्याध्ययनदानानि = इज्या च, अध्ययनं च दानं च, इज्याध्ययन-दानानि (द्वन्द्वः), धृतिः धृ + क्तिन् । अलोभः = न लोभः = अलोभः (नञ् त०) अष्टविधः = अष्टौ विधा यस्य सः (बहु०) ।

भावार्थः—धर्म के ये आठ मार्ग बतलाये हैं—यज्ञ, वेदपाठ, दान, तप, सत्य बोलना, धैर्य (विपत्ति में भी न घबड़ाना), क्षमा (अन्य द्वारा अपने साथ किये हुए अपकार के बदला देने की सामर्थ्य होते हुए भी सहन करना) और अलोभ (निर्वाह से अधिक लेने की इच्छा न करना) ॥ ८ ॥

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ॥ ९ ॥

अन्वयः—तत्र पूर्वः चतुर्वर्गः दम्भार्थम् अपि सेव्यते, उत्तरस्तु चतुर्वर्गः महात्मनि एव तिष्ठति ॥

व्याख्या—तत्रः = अष्टविधधर्ममार्गे, पूर्वः = प्रथमः, चतुर्वर्गः = इज्याध्ययन-दानतपसां चतुष्टयम्, दम्भार्थम् = छद्मार्थम्, अपि, सेव्यते = आश्रीयते, उत्तरः = अन्यः, चतुर्वर्गः = सत्यधृतिक्षमाऽलोभानां चतुष्टयम्, महात्मनि = महानुभावे, एव निश्चितम्, तिष्ठति = विद्यते ॥

टिप्पणी—चतुर्वर्गः = चतुर्णां वर्गः चतुर्वर्गः (ष० त०), दम्भार्थम् = दम्भाय-इदम्, दम्भार्थम् (चतुर्थी तत्पुरु०), सेव्यते + सेव + लट् (कर्म में), यक् + त । महात्मनि = महान् आत्मा यस्य सस्तस्मिन् (बहु०), आत्मा यत्नो धृतिः बुधिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्मचेत्यमरः । तिष्ठति = स्था + लट् + तिप् (तिष्ठादेशः) ।

भावार्थः—उन आठो प्रकार के धर्ममार्गों में प्रथम निर्दिष्ट चार मार्ग (इज्यादि) दम्भ के लिए भी किये जाते हैं, अर्थात् छली-कपटी व्यक्ति में भी देखे जाते हैं। परन्तु पिछले चार मार्ग तो महापुरुषों में ही पाये जाते हैं ॥ ९ ॥

मम चैतावान्, लोभविरहः, येन स्वहस्तस्थमपि सुवर्णकङ्कणम्, यस्मै कस्मैश्चिद् दातुमिच्छामि । तथापि 'व्याघ्रः मानुषं खादती'-ति लोकप्रवादो दुर्निवारः ।

व्याख्या—मम = व्याघ्रस्य, एतावान् = इयान् , लोभविरहः = लोलुपत्वाभावः। येन = लोभाभावेन, स्वहस्तस्थम् अपि = निजकरविद्यमानम् अपि, सुवर्णकङ्कणम् = स्वर्णवलयम्, यस्मै कस्मैश्चित् = अपरिचिताय, सम्बन्धसामान्यशून्याय अपि जनाय, दातुम् = समर्पयितुम्, इच्छामि = वाञ्छामि। तथापि तादृशदानशीलत्वेऽपि, व्याघ्रः = शार्दूलः, मानुषम् = मानवम्, खादति = अत्ति, इति लोकप्रवादः = इयं जनश्रुतिः, दुर्निवारः = निवारयितुमशक्यः।

टिप्पणी—लोभविरहः = लोभस्य विरहः लोभविरहः (ष० त०), स्वहस्तस्थमपि = स्वस्य हस्तः स्वहस्तः (ष० त०), तस्मिन् तिष्ठतीति स्वहस्तस्थस्तम् (उपपदसमासः) सुवर्णकङ्कणम् = सुवर्णस्य कङ्कणम्, सुवर्णकङ्कणम् (ष० त०), दातुम् = दा + तुमुन् (यह अव्यय है), लोकप्रवादः = लोकानां प्रवादः लोकप्रवादः (ष० त०), दुर्निवारः=दुःखेन निवारयितुं शक्यः। दुर् + नि + वृ + णिच् + खल्।

भाषार्थः—मुझे इतना भी लोभ नहीं है, जिससे मैं अपने हाथ में रक्खे हुए सुवर्ण कङ्कण को जिस किसी रास्ता चलते अपरिचित व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ। परन्तु बाघ मनुष्य का भक्षक है, इस लोकापवाद को हटाया नहीं जा सकता।

यतः—गताऽनुगतिको लोकः कुट्टिनीमुपदेशिनीम्।
प्रमाणयति नो धर्मे यथा गोघ्नमपि द्विजम्॥ १०॥

अन्वयः—गतानुगतिकः लोकः धर्मे गोघ्नम् अपि द्विजम् यथा प्रमाणयति तथा उपदेशिनीम् कुट्टिनीम् न प्रमाणयति।

व्याख्या—गतानुगतिकः = परानुकरणकारी, लोकः = जनः, धर्मे = कर्तव्यशास्त्रविहिताचारक्रमे, यथा = येन प्रकारेण, गोघ्नम् = धेनुहिंसकम्, द्विजम् = विप्रम्, प्रमाणयति = प्रमाणीकरोति, 'तद्वत्' उपदेशिनीम् = उपदेशदात्रीम्, कुट्टिनीम् = शम्भलीम्; परनारीं पुंसा संयोजयित्रीम्, नो प्रमाणयति = प्रमाणत्वेन नाभ्युपैति।

टिप्पणी—गतानुगतिकः = अनुगतिर्यस्य स अनुगतिकः (बहु०), गते अनुगतिकः गतानुगतिकः=(स० त०), गोघ्नम्=गां हन्तीतिगोघ्नः, तम् गो + हन् + कः (उपपदसमासः)। प्रमाणयति = प्रमाण + णिच् + लट् + तिप्। उदेशिनीम् = उपदिशतीतितच्छीला, उप + दिश् + णिनि + ङीप्। कुट्टिनीम् = कुट्टिनीशम्भलीसमे इत्यमरः।

भाषार्थः—अन्धपरम्परा पर चलने वाला लोक धर्म के विषय में गोवध करने वाले ब्राह्मण को जैसे प्रमाण मानता है वैसे उपदेश देनेवाली कुट्टिनी (जो दूसरे की स्त्री को पर पुरुष से संयोग कराने के लिये दूत कर्म करती है) को प्रमाणता से स्वीकार नहीं करता। अर्थात् संसार कुट्टिनी के वाक्य को धर्म के विषय में प्रमाण नहीं मानता॥ १०॥

मया च धर्मशास्त्राणि अधीतानि । शृणु—

व्याख्या—मया = व्याघ्रेण, धर्मशास्त्राणि = स्मृतिग्रन्थाः, अधीतानि=पठितानि, शृणु = आकर्णय ।

भावार्थः—मैंने स्मृतिग्रन्थों का अध्ययन किया है—सुनो—

मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्त्ते भोजनं तथा ।
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ! ॥ ११ ॥

अन्वयः—पाण्डुनन्दन ! यथा मरुस्थल्याम् वृष्टिः (सफला), क्षुधार्त्ते भोजनं च यथा सफलम् तथा दरिद्रे दानम् सफलम् (अस्ति) ।

व्याख्या—हे पाण्डुनन्दन ! = हे राजन् युधिष्ठिर ! यथा=येन प्रकारेण, मरुस्थल्याम् = धन्वस्थले, वृष्टिः = वर्षाः, सफलाः = फलोत्पादिका, क्षुधार्ते = क्षुत्पीडिते, भोजनम् = अभ्यवहरणम्, सफलम् = फलवत् , तथा=तेन प्रकारेण, दरिद्रे = दीने, यत् दानम्=वितरणम्, दीयते=क्रियते, तदपि=दीनाय दत्तमपि, सफलम्=फलवत् , 'भवति' ।

टिप्पणी—महाभारते धर्मराजयुधिष्ठिरं प्रति भीष्मोक्तिरियम्—पाण्डुनन्दन !, पाण्डुषु नन्दनः, तत्सम्बुद्धौ हे पाण्डुनन्दन !, मरुस्थल्याम् = मरोः स्थली तस्याम् (ष० त०), 'समानौमरुधन्वानौ' इत्यमरः । वर्षणं वृष्टिः=वृष् + क्तिन् ; क्षुधार्ते=क्षुधया आर्तः क्षुधार्तः; तस्मिन् (तृ० त०), सफलम्=फलेन सहितम् (तुल्ययोग बहु०), हे युधिष्ठिर ! मरुप्रदेशे वृष्टिरिव क्षुत्पीड़िते भोजनमिव दरिद्राय दीयमानं दानं सफलं भवति इति भावः ।

भाषार्थः—हे युधिष्ठिर ! जिस प्रकार मरुप्रदेश में वृष्टि सफल होती है, जिस प्रकार भूख से पीड़ित को भोजन देना सफल होता है उसी तरह दरिद्र को दिया गया दान सफल होता है ॥ ११ ॥

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधवः ॥ १२ ॥

अन्वयः—प्राणाः, यथा आत्मनः अभीष्टा तथा ते भूतानाम् अपि अभीष्टाः (सन्ति) अतः साधवः आत्मौपम्येन भूतानाम् (उपरि) दयाम् कुर्वन्ति ॥

व्याख्या—प्राणाः = असवः, यथा = यद्वत् , आत्मनः = स्वस्य, अभीष्टाः = प्रियतमाः, तथा = तद्वत् , ते = प्राणाः, भूतानाम् अपि = अन्यजीवानामपि (अभीष्टा= प्रियतमाः), 'अतः' अस्मात् कारणात् , साधवः = सज्जनाः, भूतानाम् = स्वेतरजीवानाम् (उपरि), दयाम् = कृपाम्, कुर्वन्ति = विदधति ।

टिप्पणी—अभीष्टाः = अभिष्टेऽभीप्सितं हृद्यं दयितं वल्लभं प्रियम् इत्यमरः । साधवः=साध्नुवन्ति परकार्याणि साध् + उण् । आत्मौपम्येन=उपमा एव औपम्यम्,

स्वार्थेष्यञ्, आत्मनः औपम्यम् आत्मौपम्यम्, तेन (ष० त०), दयाम् = 'कृपा-दयाऽनुकम्पास्यादनुक्रोशोऽपि० इत्यमरः। कुर्वन्ति = कृ + लट् + झि। 'प्राणानां प्रियत्वस्याऽऽत्मदृष्टान्तेन विज्ञाय स्वेतरभूतमात्रे दयालवो भवन्ति सज्जनाः ॥ इति तात्पर्यं० ॥

भाषार्थः—प्राण जैसे अपने लिये प्रिय हैं उसी तरह अन्य प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय होंगे। इस कारण से सज्जन जीवमात्र पर दया करते हैं ॥ १२ ॥

अपरञ्च—प्रत्याख्याने च दाने च सुख-दुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥ १३ ॥

अन्वयः—पुरुषः प्रत्याख्याने दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये च आत्मौपम्येन प्रमाणम् अधिगच्छति ॥

व्याख्या—पुरुषः = पुमान्, सज्जनपुरुषः, प्रत्याख्याने=प्रतिषेधे, दाने=वितरणे, सुखदुःखे=सुखदुःखजनकविषये, प्रियाप्रिये = अभीष्टानभीष्टे, विषये, आत्मौपम्येन = स्वोपमया, प्रमाणम् = अनुभूतिम्, अधिगच्छति = प्राप्नोति ॥

टिप्पणी—सुखदुःखे = सुखं च दुखं च अनयोः समाहारः सुखदुःखम्, तस्मिन् (समाहारद्वन्द्वः), प्रियाप्रिये = प्रियं च अप्रियं च प्रियाप्रियम्, तस्मिन् (समा० द्वन्द्वः), उपमा एव औपम्यम्, स्वार्थेष्यञ्, आत्मन=औपम्यम्, तेन (ष० त०), अधिगच्छति = अधि + गम् + लट् + तिप् + पुरुषः=स्वीकारास्वीकारसुखदुःखप्रिया-प्रियविषयेषु अनुभवं स्वसादृश्येन करोति इति भावः ॥ १३ ॥

भाषार्थः—निषेध में तथा दान में, सुख अथवा दुःख में, प्रिय एवं अप्रिय में सज्जन पुरुष अपनी तुलना से अनुभव करता है। अर्थात् मुझे किसी ने कुछ दिया तो हर्ष होता है यदि अनादर किया तो दुःख होता है। इस तरह मैं भी किसी को कुछ दूँगा तो हर्ष होगा, निषेध करूँगा तो दुःख होगा ॥ १३ ॥

अन्यच्च—मातृवत्परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥ १४ ॥

अन्वयः—परदारेषु मातृवत् परद्रव्येषु लोष्टवत् सर्वभूतेषु आत्मवत् यः पश्यति सः पण्डितः।

व्याख्या—परदारेषु=अन्यभार्यासु, मातृवत् = जननीव, परद्रव्येषु=अन्यवित्तेषु, लोष्टवत्=मृत्तिकावत्, सर्वभूतेषु = समस्तप्राणिषु आत्मवत् = निजवत्, यः=जनः, पश्यति = विलोकयति, सः = जनः, पण्डितः = विद्वान्, अस्तीति शेषः।

टिप्पणी—मातृवत् = मात्रा तुल्यं मातृवत्, मातृ + वतिः। परदारेषु = परेषां दाराः परदारा = तेषु (ष० त०)। परद्रव्येषु = परेषां द्रव्याणि परद्रव्याणि तेषु (ष० त०), लोष्टवत् = लोष्टेन तुल्यं, लोष्ट + वतिः। सर्वभूतेषु = सर्वाणि च

तानि भूतानि, तानि, तेषु (क० धा०), आत्मवत् = आत्मना तुल्यम् आत्मन्+वतिः ।

भावार्थः—जो पुरुष दूसरे की स्त्रियों को अपनी माता की तरह एवं अन्य के धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा प्राणिमात्र को अपने समान देखता है वह पंडित है, अर्थात् सत् असत् के विकवेक करने वाली बुद्धि वाला है ॥ १४ ॥

त्वञ्चातीव दुर्गतः, तेन तत् तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम् । तथा चोक्तम्—

व्याख्या—त्वम् = भवान् , अतीव दुर्गतः=अत्यन्तं दरिद्रः । तेन=कारणेन, तत्= सुवर्णकङ्कणम् तुभ्यम्=भवते, दातुम्=रातुम्, सप्रयत्नः=प्रयत्नयुक्तः 'अस्मीति शेष' ।

भावार्थः—तुम अत्यन्त दरिद्री हो अतः उस सुवर्णकङ्कण को मैं तुम्हें देने के लिये प्रयत्नशील हूँ ॥

दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे कौन्तेय ! दरिद्रान् भर ईश्वरे धनम् मा प्रयच्छ । व्याधितस्य औषधम् पथ्यम् नीरुजस्य औषधैः किम् ।

व्याख्या—हे कौन्तेय! = कुन्तीनन्दन, दरिद्रान् = दुर्गतान् , भर = पोषणेन रक्ष, ईश्वरे = सर्वसमर्थे, धनम् = वित्तम् , मा = न, प्रयच्छ = देहि, व्याधितस्य = रुग्णस्य, औषधम् = भेषजम्, पथ्यम् = हितकारकम्, नीरुजस्य = रोगरहितस्य, औषधैः = भेषजैः; किम् = किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः ।

टिप्पणी—हे कौन्तेय = कुन्त्या अपत्यं पुमान् कौन्तेयः तस्सम्बुद्धौ । कुन्ती+ ढक्+एयादेशः, आदिवृद्धिः । भर = भृ+लोट्+सिप् । ईश्वरे = ईष्टे, असौ, ईश्वरः । ईश्धातोः, वरच् प्रत्ययः । प्रयच्छ = प्र+दाण्+(यच्छ) लोट्+सिप् । पथ्यम् = पथः, अनपेतम्–पथिन्+यत् । नीरुजस्य = निर्गता रुजा यस्मात् स नीरुजः, तस्य, (बहु०), दरिद्राः पोषणीयाः धनिने धनदानं मोघम्, औषधं रोगिणः हितकरं भवति, रोगरहितस्य औषधैः किं प्रयोजनम् भवति ।

भावार्थः—हे राजन् (युधिष्ठिर), दरिद्रजनों का पोषण करो । सर्वथा समर्थ जन को धन का दान मत करो, क्योंकि औषधि रोगी को हितकर होती है । स्वस्थ जन को औषधियों से क्या मतलब ॥ १५ ॥

अन्यच्च—दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ॥ १६ ॥

अन्वयः—दातव्यम् इति यद्दानम् देशे काले च अनुपकारिणि पात्रे दीयते तद् दानम् सात्त्विकम् विदुः ॥

व्याख्या—दातव्यम् = दानीयम्—इति हेतोः, देशे = पुण्यक्षेत्रे; तीर्थादौ, काले=

ग्रहणादौ, अनुपकारिणि = उपकारशून्ये, पात्रे=सदाचारसम्पन्ने; यद्दानं=वितरणम्, दीयते = वितीर्यते, तद्दानं=वितरणम्, सात्त्विकम् सत्वगुणयुक्तम्, विदुः=जानन्ति॥ सुधियः, इति शेषः।

टिप्पणी—दातव्यम् = दातुं योग्यम्, दा+तव्य। उपकारिणि = न उपकारी अनुपकारी, तस्मिन् (नञ्)। दीयते = दा + लट् + (कर्म में) यक् + त। सात्त्विकम् = सत्वेन निर्वृत्तम्, सत्व + ठक् (इकः), विदुः = विद् + लट् + झिः। तीर्थादिपुण्यक्षेत्रे सूर्योपरागसमये देयबुद्ध्या अनुपकारिणे सदाचारनिष्ठाय यद् दीयते तद् दानं सात्त्विकम्, मनीषिणः प्रवदन्ति, इति भावः। देशकालादिसाहचर्यात् पात्र शब्द से सप्तमी दिखलायी है। वस्तुतः चतुर्थी ही उचित है; यद्वा पात्रे यह सप्तम्यन्तपद नहीं है किन्तु चतुर्थ्यन्त है, पा + तृच्, पातृ, तस्मै पात्रे। य = सर्वप्रकारेण दातारं रक्षति स पाता, तस्मै पात्रे।

भावार्थः—जो दान दिया जाता है वह अनुपकारी व्यक्ति को दिया जाना चाहिए, क्योंकि उचित देश अथवा (सूर्य ग्रहणादि उचित) काल में तथा सत्पात्र में दिए हुए दान ही सात्त्विक माने गए हैं॥ १६॥

तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकङ्कणमिदं गृहाण। ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतः लोभात् सरः स्नातुं प्रविष्टः, तावन्महापङ्के निमग्नः पलायितुमक्षमः। तं पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत्—'अहह! महापङ्के पतितोऽसि। अतस्त्वामहमुत्थापयामि' इत्युक्त्वा शनैः शनैरुपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः स पान्थोऽचिन्तयत्—

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात्, अत्र=अस्मिन्, सरसि = कासारे, स्नात्वा= स्नानं कृत्वा, इदम् = मम करस्थितम्, सुवर्णकङ्कणम् = स्वर्णवलयम्, गृहाण = स्वीकुरु। ततः=व्याघ्रवचः श्रवणानन्तरम्, यावत् = यस्मिन् समये, तद्वचः प्रतीतः= व्याघ्रवचने कृतविश्वासः, लोभात् = लोलुपत्वात्, असौ = पान्थः, सरः = कासारम्, स्नातुम् = स्नानं कर्तुम्, प्रविष्टः=प्रवेशं कृतवान्, तावत् = तस्मिन् समये, महापङ्के निमग्नः = दुस्तरकर्दमे, निमग्नः = निपतितः (सन्), पलायितुम् = पलायनं कर्तुम्, अक्षमः = असमर्थः, जातः, इति शेषः। तम् = ब्राह्मणम्, पङ्के = कर्दमे, पतितम् = निमग्नम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, व्याघ्रः = द्वीपी, अवदत् = अब्रवीत्। अहह = अहो महाकष्टम्, महापङ्के = दुस्तरकर्दमे, पतितोऽसि = निमग्नोऽसि। अतः = अस्मात् कारणात्, अहम् = व्याघ्रः, त्वाम् = भवन्तम्, उत्थापयामि = उद्धरामि। इति = इत्थम्, उक्त्वा = कथयित्वा, शनैः शनैः = मन्दंमन्दम्, उपगम्य = समीपं गत्वा, तेन पूर्वोक्तेन व्याघ्रेण, धृतः = गृहीतः, सः = पूर्वोक्तः, पान्थः = पथिकः अचिन्तयत् = विचारितवान्॥

टिप्पणी—सरसि = कासारः सरसी सरः इत्यमरः। सुवर्णकङ्कणम् = सुवर्णस्य कङ्कणम्, सुवर्णकङ्कणम् (ष० त०), गृहाण=ग्रह + लोट् + सिप् + श्ना + शानच्। तद्वचः प्रतीतः = तस्य वचः (ष० त०), तेन प्रतीतः, सः तथोक्तः (तृ० त०), लोभात् = हेतु में पंचमी। महापङ्के = महाँश्चासौ पङ्कः महापङ्कस्तस्मिन् (क० धा०), निमग्नः = नि + मस्जो क्तः। अक्षमः = न क्षमः, अक्षमः (नञ् त०)।

भावार्थः—"इस कारण से इस तालाव में स्नान कर यह सुवर्ण के कंकण को ले लो।" इसके बाद जब वह पथिक व्याघ्र के वचन से विश्वास कर लोभ से तालाब में स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुआ तो महापङ्क (दलदल कीचड़) में फँस गया (जब फँस गया) तब भाग भी नहीं सका। व्याघ्र ने उसे भारी कीच में फँसा हुआ देखकर कहा—'हाय हाय !! बड़ा भारी कीचड़ में जा फँसा। अब मैं तुमको उठाकर इस दलदल से बाहर निकालता हूँ' ऐसा कहकर धीरे-धीरे उसके समीप जाकर उस व्याघ्र ने पकड़ा, तब वह पथिक विचारने लगा।

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥ १७ ॥

अन्वयः—दुरात्मनः धर्मशास्त्रं पठति इति कारणं न, वेदाध्ययनम् अपि कारणं न, अत्र स्वभाव एव तथा अतिरिच्यते, यथा गवां पयः प्रकृत्या मधुरम् (भवति)।

व्याख्या—दुरात्मनः = दुष्टस्वभावस्य, धर्मशास्त्रम् = स्मृतिग्रन्थम्, पठति = अधीते, इति = इत्थम्, कारणं न = हेतुर्न, वेदाध्ययनम् अपि = वेदपाठः, अपि हेतुर्न। अत्र = अस्मिन् धर्मानुष्ठाने, स्वभाव एव = प्रकृति एव तथा = तेन प्रकारेण, अतिरिच्यते = विशिष्यते, यथा = येन प्रकारेण, गवाम् = धेनूनाम्, पयः = दुग्धम्, प्रकृत्या = स्वभावतः, मधुरम् = मिष्टम् (भवति) ॥

टिप्पणी—दुरात्मनः = दुष्टः, आत्मा (स्वभावः) यस्य सः (बहु०), धर्मशास्त्रम् = धर्मस्य शास्त्रम् (ष० त०); पठति=पठ् + लट् + तिप्। वेदाध्ययनम् = वेदानाम् अध्ययनम् (ष० त०), स्वभावः=स्वस्य भावः, स्वभावः, (ष० त०); संसिद्धिप्रकृती त्विमे, स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्च इत्यमरः। वेद-धर्मशास्त्र-पाठकः विश्वासभूमिः, इति न सम्यक् स्वाभाविकसदाचारसम्पन्नव्यक्तेरेवविश्वासभूमित्वात्। इति भावः। वंशस्थः छन्द।

भावार्थः—कोई दुर्जन धर्मशास्त्र पढ़ता है या वेदों का पाठ करता है इसलिये वह विश्वास योग्य है ऐसा नहीं मानना चाहिये। जैसे गाय का दूध स्वतः मीठा होता है इसी तरह विश्वास योग्यता के विषय में स्वभाव ही कारण है। अर्थात् स्वाभाविक अहिंसकादि गुणवान् ही विश्वास योग्य है, न कि धूर्त व्यक्ति ॥ १७ ॥

किञ्च—अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया
दुर्भगाभरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रियां विना ॥ १८ ॥

अन्वयः—अवशेन्द्रियचित्तानाम् क्रिया हस्तिस्नानम् इव (निष्फला) क्रियाम् विना ज्ञानम् दुर्भगाभरणप्रायः भारः (भवति)।

व्याख्या—अवशेन्द्रियचित्तानाम् = अजितकरणमनसाम्, क्रिया = कर्मदानधर्मादि (निष्फला), क्रियाम् = कर्म, सदाचारादि विना = ऋते, ज्ञानम् = बोधः, दुर्भगाभरणप्रायः = विधवालङ्कारतुल्यः, भारः = भारभूतः।

टिप्पणी—अवशेन्द्रियचित्तानाम् = अविद्यमानो वशो येषां तानि (नञ् बहु० उत्तरपदलोपः), इन्द्रियाणि च चित्तानि च इन्द्रियचित्तानि (द्वन्द्वः), अवशानि इन्द्रियचित्तानि, येषां ते तेषाम् (बहु०), हस्तिस्नानम् = हस्तिनः स्नानम् हस्तिस्नानम् (ष० त०), दुर्भगाभगाभरणप्रायः = दुःखदो भगो 'भाग्यम् यस्याः सा दुर्भगाः, (बहु०), तस्याः आभरणम् अलङ्करणम् (ष० त०), तेन प्रायः सः तथोक्तः। येषामिन्द्रियाणि, चित्तानि च वशे न भवन्ति तेषां क्रिया विफला। यथा विधवास्त्रियः अलङ्करम्। शास्त्रीयविहिताचाररहितस्य शास्त्रज्ञानम् भारभूतमेव। अतः सदाचारसम्पन्नत्वेन भाव्यम्। इति भावः॥

भाषार्थः—जिस पुरुष के इन्द्रिय तथा मन वश में नहीं होते उनकी सभी क्रियाएँ हस्तिस्नान की तरह व्यर्थ होती हैं। (महावत हाथी को स्नान करा देता है परन्तु हाथी फिर भी सूंड से धूलि उठा-उठाकर मस्तक पर डाल लेता है।) वैसे ही सदाचार के बिना शास्त्र का ज्ञान भी भार के ही समान है, जैसे विधवा स्त्री के अलंकार भारस्वरूप हैं ॥ १८ ॥

तदत्र मया भद्रं न कृतम्। यदत्र मारात्मके विश्वासः कृतः। तथा चोक्तम्—

व्याख्या—तत् = तस्माद्धेतोः, मया = पथिकेन, भद्रम् = शोभनम् न कृतम्, नो विहितम्, यत् = यस्माद्धेतो, अत्र = अस्मिन् मारात्मके, हिंसकस्वभावे, विश्वासः = विस्रम्भः, कृतः = स्थापितः, तथा चोक्तम् = तेनप्रकारेण अभिहितम्।

भाषार्थः—इस कारण से मैंने अच्छा नहीं किया जो कि इस हत्यारे का विश्वास कर लिया (ऐसे का विश्वास कभी न करना था)। क्योंकि ऐसा कहा है ॥ १८ ॥

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ १९ ॥

अन्वयः—नदीनाम् शस्त्रपाणीनाम् नखिनाम् शृङ्गिणाम् तथा स्त्रीषु राजकुलेषु च विश्वासः न कर्तव्यः।

व्याख्या—नदीनाम्=सरिताम्, शस्त्रपाणीनाम् = आयुधहस्तानाम्, नखिनाम्= तीक्ष्णकरजानाम्, शृङ्गिणाम्=विषाणवताम्, तथा=तेन प्रकारेण, स्त्रीषु=नारीषु, राजकुलेषु=राजवंश्येषु, च=अपि, विश्वासः = विश्रम्भः, नैव=नूनं न, कर्तव्यः=करणीयः।

टिप्पणी—शस्त्रपाणीनाम् = शस्त्रं पाणौ येषां ते शस्त्रपाणिनस्तेषां तथोक्तानाम्, (बहु० व्यधिकरण में), पाणिशब्दसप्तम्यन्त होते हुए भी पूर्वनिपात नहीं हुआ, क्योंकि शस्त्रवाचक शब्दों से परे सप्तम्यन्त के पूर्वनिपात निषेध है। नखिनाम् = नखानि येषां सन्ति ते नखिनस्तेषां नखिनाम्, नख+इनिः। शृङ्गाणि येषां सन्ति ते शृङ्गिणस्तेषाम्, शृङ्ग+इनिः। राजकुलेषु च = राज्ञां कुलानि राजकुलानि तेषु (ष० त०), नदिशस्त्रपाणिनखिनादीनां विश्वासो न कर्तव्यः। मया तु नखिनः व्याघ्रस्य विश्वासः कृतः एतदेव न वरमिति भावः।

भावार्थः—नदियों का, शस्त्रधारी तथा सींग वालों का, नख वालों का, एवं स्त्री और राजकुलों में विश्वास नहीं करना चाहिये॥ १९॥

अपरञ्च—सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वाभावाः नेतरे गुणाः।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते॥ २०॥

अन्वयः—हि सर्वस्य स्वभावाः परीक्ष्यन्ते, इतरे गुणाः न (परीक्ष्यन्ते), स्वभावः सर्वान् गुणान् अतीत्य मूर्ध्नि वर्तते।

व्याख्या—हि = यतः, सर्वस्य = अखिलस्य, स्वभावाः = प्रकृतयः, परीक्ष्यन्ते = परीक्षाविषयाः क्रियन्ते, इतरे = अन्ये, गुणाः, विद्यादयः, न परीक्ष्यन्ते। स्वभावः= प्रकृतिः, हि = यतः, सर्वान् = अखिलान्, गुणान् = विद्यादीन्, अतीत्य = अतिक्रम्य, मूर्ध्नि = शिरसि, वर्तते = तिष्ठति॥

टिप्पणी—परीक्ष्यन्ते = परि+ईक्ष+लट्+झः। कर्म में प्रयोग है। वर्तते= वृत+लट्+त। सर्वेषां जनानां स्वभावः एव परीक्षिताः, भवन्ति। सर्वगुणानतिक्रम्य स्वभावस्य मूर्ध्नि वर्तमानत्वादिति भावः।

भावार्थः—समस्त जनों के स्वभाव ही परखे जाते हैं, अन्य गुण नहीं। क्योंकि समस्त गुणों को अतिक्रमण करके स्वभाव शिर पर रहता है॥ २०॥

अन्यच्च—स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणाऽसौ
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः॥ २१॥

अन्वयः—गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी स असौ विधुः अपि कर्मयोगात् राहुणा ग्रस्यते; हि ललाटे लिखितम् प्रोज्झितुं कः अपि समर्थः।

व्याख्या—गगनविहारी = नभः पान्थः, कल्मषध्वंसकारी = पापविनाशकः, ज्योतिषाम् = ग्रहनक्षत्रादीनाम्, मध्यचारी = अन्तरचरणशीलः, दशशतकरधारी = सहस्रकिरणधारकः, सः = लोकोपकारकत्वेन प्रसिद्धः, असौ = अयम्, विधुरपि = चन्द्रोऽपि, कर्मयोगात् = अदृष्टवशात्, राहुणा = सैंहिकेयेन, उपग्रहेण, ग्रस्यते = ग्लसितुमिष्यते, हि = यतः, ललाटे=भाले, लिखितम्=विहितम्, लिपिविषयीकृतम्, प्रोज्झितुम् = विनिमयितुम्, कः = को नाम समर्थः (स्यात्) = शक्नुयात्, अपि तु न कोऽपीत्यर्थः ॥

टिप्पणी—गगनविहारी = विहरणशीलः = विहारी = वि + हृ + णिनिः, गगनस्य विहारी गगनविहारी (ष० त०), कल्मषध्वंसकारी = ध्वंसं करोतीति तच्छीलः ध्वंस + कृ + णिनिः (उपपदसमासः), कल्मषस्य ध्वंसकारी सः तथोक्तः (ष० त०), दशशतकरधारी = दशानां शताम् समाहारः दशशतम् (द्विगुः समासः), दशशतं च ते कराः (क० धा०), दशशतकरान् धारयतीति तच्छीलः (उपपद-समासः), मध्यचारी = मध्ये चरतीति तच्छीलः (उपपदसमासः), विधियोगात्= विधेर्योगः विधियोगस्तस्मात् (ष० त०)। यः, चन्द्रः; आकाश एव तिष्ठति न तु भूमौ किरणरूपसहस्रशोभुजान् धरति, ग्रहनक्षत्रादयः, तस्य सहायकाः तिमिर-विनाशकत्वेन लोकोपकारी अपि राहुणा प्रतिपर्वणि आक्रम्यते, अन्यस्य तु कथा का, विधिना यस्य ललाटे यल्लिखितं तदेव भवति नूनम् । इति भावः ।

भावार्थः—आकाशमार्ग में ही चलने वाला, पापविध्वंसक या अन्धकार-विनाशक, हजारों भुजा वाला एवं ग्रहनक्षत्रादिकों से हर समय परिवेष्टित वह चन्द्रमा भी (प्रारब्धवश प्रत्येक पर्व में) राहु से ग्रसित होता है (अर्थात् राहु ग्रह की छाया से आंशिक रूप में या सर्वांश रूप में आच्छादित होता ही है)। अतः विधाता ने कपाल में जो लिखा है उसे भला कौन मिटा सकता है ? वह अमिट है ॥ २१ ॥

इति चिन्तयन्नेवाऽसौ व्याघ्रेण धृत्वा व्यापादितः खादितश्च । अतोऽहं ब्रवीमि—'कङ्कणस्य तु लोभेन' इत्यादि। अतएव सर्वथाऽविचारितं न कर्तव्यम्।

व्याख्या—इति = एवम्, उक्त प्रकारेण, चिन्तयन् = विचारयन्, असौ = अयम् पान्थः, व्याघ्रेण = शार्दूलेन, धृत्वा = गृहीत्वा, व्यापादितः = नखैर्विदारितः, खादि-तश्च = जग्धः। अतः = अविचार्य कर्मकर्ता मरणमाप्नोति इति हेतोः परिणामे-शुभाशुभविचारमकृत्वा किमपि कर्म न कर्तव्यम्, एतदेवाह—अहम् = चित्रग्रीवः, कपोतराजः, ब्रवीमि = वच्मि—कङ्कणस्यतु० इत्यादि । अतएव सर्वथा=येन केनापि प्रकारेण, अविचारितम् = प्राक् सम्यग नालोचितम्, कर्म = किमपि कार्यम्, न कर्त-व्यम् = नाचरणीयम् ॥

भाषार्थः—ऐसा विचार करते हुए उस पथिक (राहगीर) को व्याघ्र (बाघ) ने पकड़ा और नाखूनों से चीर डाला तत्पश्चात् खा गया। इसी से मैं कहता हूँ—'कंगन के लोभ से' इत्यादि। इसलिये विना विचारे (कार्य के शुभाशुभ फल पर विचार न करके) कोई भी कार्य कदापि न करना चाहिये।

यतः—सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः
सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः।
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—सुजीर्णम् अन्नम् सुविचक्षणः सुतः सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः सुचिन्त्य यत् उक्तम् सुविचार्य यच्च कृतम्, सुदीर्घकाले अपि विक्रियाम् न याति।

व्याख्या—सुजीर्णम् = सम्पन्नपरिपक्वावस्थम्, अन्नम् = भुक्तान्नम्, सुविचक्षणः= अतिविद्वान्, सुतः = तनयः, सुशासिता = वशं नीता, स्त्री = जाया, सुसेवितः = सम्यक्कृतशुश्रूषः, नृपतिः = भूपः, सुविचिन्त्य = सुविज्ञाय, उक्तम् = कथितम्, सुविचार्य = सम्यक्विमृश्य, यत् कृतम् = यत् कार्यं विहितम्, तत् 'पूर्वोक्तम् सर्वम्, सुदीर्घकालेऽपि = प्रचुरसमये, व्यतीतेऽपि, विक्रियाम् = विकृतिम्, न याति = लभते ॥

टिप्पणी—सुजीर्णम् = सुष्ठुजीर्णम् (गतिसमासः), शोभनः विचक्षणः सुविचक्षणः (गतिसमासः), सुशासिता = सुष्ठु यथा तथा शासिता सा तथोक्ता (सह-सुपा समासः), सुसेवितः = शोभनं यथा तथा सेवितः सः, तथोक्तः (सहसुपा समासः), नृपतिः = नृणां पतिः नृपतिः (ष० त०), सुदीर्घकाले = शोभनः दीर्घः सुदीर्घः (गतिसमासः), सुदीर्घश्चासौ काल = सुदीर्घकालस्तस्मिन् (क० धा०), वंशस्थवृत्तम्।

भाषार्थः—जैसे पचे हुए भोजन से कभी विकार नहीं होता, सुशिक्षित पुत्र से दुःख नहीं होता, पतिव्रता स्त्री कभी अधर्म नहीं करती, सेवा से प्रसन्न हुआ राजा हानिकारक नहीं होता, अच्छी तरह सोच-विचार कर बोलने से क्लेश नहीं होता है। वैसे ही विचार करके किया हुआ काम भविष्य में कभी दुःखदायी नहीं होता। (इसलिये विचार करके चावल खाने के लिये जाना चाहिये) ॥ २२ ॥

एतद् वचनं श्रुत्वा कश्चित् कपोतः सदर्पमाह—आः ! किमेवमुच्यते ?

व्याख्या—एतत् वचनम्, चित्रग्रीवकथनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, कश्चित् = कोऽपि कपोतः = पारावतः सदर्पम् = सगर्वम्, आह = वदति, आः = अनादरे, एवम् निरुत्साहम्, किम् उच्यते = कथं कथ्यते ॥

टिप्पणी—सदर्पम् = दर्पेण सह वर्तमानम् सदर्पम् (तुल्ययोगबहु०), क्रि० वि० ।

भाषार्थः—चित्रग्रीव के कथन को सुनकर कोई कबूतर घमण्ड से बोला—आह ! ऐसा क्यों कहते हो ?

वृद्धस्य वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते ।
सर्वत्रैवं विचारे तु भोजनेऽप्यप्रवर्तनम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हि वृद्धस्य वचनम् आपत्काले उपस्थिते ग्राह्यम् सर्वत्र एवम् विचारे तु भोजने अपि अप्रवर्तनम् (स्यात्) ।

व्याख्या—हि = यतः, वृद्धस्य = स्थविरस्य, वचनम् = कथनम्, आपत्काले = विपत्समये, उपस्थिते = प्राप्ते (सति), ग्राह्यम् = अभ्युपेयम्, स्वीकार्यमित्यर्थः । सर्वत्र = अनपेक्षितवृद्धोपदेशसमये, एवम् = इत्थम्, विचारे = विमर्शे तु, भोजने = आहारे, अपि, अप्रवर्तनम् = अप्रवृत्तिः (स्यादिति शेषः) ।

टिप्पणी—वृद्धस्य = प्रवयाः स्थविरो वृद्धो०, इत्यमरः । आपत्काले = आपदः कालस्तस्मिन् (ष० त०), अप्रवर्तनम् = न प्रवर्तनम् अप्रवर्तनम् (नञ् त०) । महतीषु विपत्सु वृद्धवचनम् ग्राह्यम् भवति । अल्पकार्येऽपि वृद्धवचनस्वीकारे तु भोजनसदृशं साधारणकार्यं भवितुं न शक्नोति (अतः तण्डुलकणान् भोक्तुं गन्तव्यम् इति भावः) ।

भाषार्थः—वृद्धों के वचन बड़ी-बड़ी विपत्तियों में मानने की आवश्यकता होती है । सब जगह वृद्धों के वचन मानने पर तो भोजन में भी प्रवृत्ति (चेष्टा) न होगी । (भोजन बिना जीवन कठिन हो जायेगा अतः तण्डुलकणों को खाने के लिए चलना चाहिये) ॥ २३ ॥

यतः—शङ्काभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले ।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा ॥ २४ ॥

अन्वयः—भूतले अन्नम् पानम् च सर्वम् शङ्काभिः; आक्रान्तम् कुत्र प्रवृत्तिः कर्तव्या कथम् नु वा जीवितव्यम् ।

व्याख्या—भूतले = भूमण्डले, अन्नम् = भोज्यम्, पानम् नीरक्षीरादिकम्, सर्वम् = सकलम् = शङ्काभिः इदम् इष्टमनिष्टं वा, इत्याकारकैः सन्देहैः, आक्रान्तम् = व्याप्तम् । 'एवं सति' कुत्र = कस्मिन् विषये, प्रवृत्तिः = चेष्टा, कर्तव्या = विधेया (जनेनेति शेषः), नु (प्रश्ने), तर्हि पृच्छामि (हे चित्रग्रीव !) कथं वा = केन प्रकारेण, जीवितव्यम् = प्राणितव्यम् । अतः संशयमात्रेण तण्डुलकणाः, न त्यक्तव्याः ।

टिप्पणी—भूतले = भुवस्तलम् तस्मिन् (ष० त०), 'संसारे भोज्यपेयादि-पदार्थाः सन्देहव्याप्ताः सन्ति । सन्देहमात्रेण प्रवृत्तिनिरोधात् जीवननिर्वाहो दुर्लभो भवेदिति भावः ॥

भाषार्थः—संसार के भोज्य (खाने योग्य), पेय (पीने योग्य) सभी पदार्थ सन्देह से व्याप्त हैं । सन्देहमात्र से यदि प्रवृत्ति रोकी गई तो जीवन निर्वाह दुर्लभ हो जायगा ॥ २४ ॥

तथा चोक्तम्—ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ॥ २५ ॥

अन्वयः—ईर्ष्यी घृणी असन्तुष्टः क्रोधनः नित्यशङ्कितः परभाग्योपजीवी च एते षट् दुःखभागिनः (सन्ति) ।

व्याख्या—ईर्ष्यी = परोत्कर्षासहनः, घृणी = घृणावान्, असन्तुष्टः = सतृष्णः, नित्यशङ्कितः = प्रतिदिनसन्देहव्याप्तः, परभाग्योपजीवी = परतन्त्रजीवनः, क्रोधनः= सकोपः, एते = इमे, षट् = षट्संख्यकाः, दुःखभागिनः = क्लेशभाजः (भवन्ति) ।

टिप्पणी—ईर्ष्या विद्यतेऽस्येति ईर्ष्यी, ईर्ष्या + इनिः । घृणा विद्यतेऽस्येतिघृणी, घृणा + इनिः । असन्तुष्टः=न सन्तुष्टः असन्तुष्टः (नञ् त०), शङ्का सञ्जाता अस्येति शङ्कितः, शङ्का + इतच् , नित्यं यथा तथा शङ्किता (सुप्सुपा) समासः । परभाग्योपजीवी = परस्य भाग्यं परभाग्यम् (ष० त०), तेन उपजीवतीति सः, तथोक्तः (उपपदसमासः), दुःखभागिनः = दुःखं भजन्तीति तच्छीलाः, भज + णिनिः, उपधावृद्धिः कुत्वं च (उपपदसमासः), एते पद्योक्ताः षट् , लोके क्लेशभाजो भवन्तीति भावः ।

भाषार्थः—अन्य की उन्नति को सहन न करने वाला, घृणावाला, असन्तोषी, क्रोधी, नित्यप्रति सन्देहयुक्त, दूसरे के भाग्य से जीवन व्यतीत करने वाला ये छः प्रकार के मनुष्य क्लेश भोगनेवाले होते हैं ॥ २५ ॥

एतच्छ्रुत्वा तण्डुलकणलोभेन नभोमण्डलादवतीर्य सर्वे कपोतास्तत्रोपविष्टाः।

व्याख्या—एतत् = पूर्वोक्तवचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, तण्डुलानां कणास्तेषां लोभस्तेन (ष० त०), नभसः, मण्डलम् तत् तस्मात् (ष० त०), गगनपरिधेः, अवतीर्य = अवरुह्य; सर्वे = समस्ताः कपोताः पारावताः, तत्र=प्रसारितजाले, भूतले, उपविष्टाः = निषण्णाः ।

भाषार्थः—इस वचन को सुनकर चावल के कणों के लोभ से आकाशमण्डल से उतर कर समस्त कबूतर जहां जाल फैलाया गया था, उस भूमि पर बैठ गये ॥

यतः—सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहुश्रुताः ।
छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्ते लोभमोहिताः ॥ २६ ॥

अन्वयः—सुमहान्ति शास्त्राणि धारयन्तः बहुश्रुताः संशयानाम् छेत्तारः च लोभमोहिता (सन्तः) क्लिश्यन्ते ॥

व्याख्या—सुमहान्ति=बहुसंख्यकानि, शास्त्राणि = ग्रन्थान् , धारयन्तः=पठन्तः, बहुश्रुताः = अनेकशास्त्रश्रवणयुक्ताः, संशयानाम् = सन्देहानाम्, छेत्तारः = निवारकाः, लोभमोहिताः = लोलुपत्वजन्यमोहयुक्ताः, (सन्तः), क्लिश्यन्ते = क्लेशमधिगच्छन्ति ॥

टिप्पणी—शोभनानि महान्ति सुमहान्ति (गतिसमासः), बहुश्रुतं येषां ते (बहु०), लोभेन मोहिताः लोभमोहिताः (तृ० त०), शास्त्राणि = शास्त्र + शस् + शि + नुम् + उपधादीर्घ + णत्वं च । धारयन्तः = धृ + णिच् , लट् , शत्रादेशः विभक्तिकार्यम् । वेदादिशास्त्राध्येतारः विविधशास्त्रश्रवणयुक्ताः, अनेकसन्देहनिवारकाः जनाः लोभवशेन दुःखमनुभवन्तीति भावः ।

भाषार्थः—वेदादि शास्त्रों के पढ़नेवाले, अनेक शास्त्रों के विषय को सुननेवाले एवं बहुत सन्देहों का समाधान करने वाले मनुष्य भी लोभ के वशीभूत होकर अनेक कष्टों का अनुभव करते हैं ॥ २६ ॥

अन्यच्च—लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—क्रोधः लोभात् प्रभवति कामः लोभात् जायते मोहः नाशश्च लोभात् (भवति) अतः लोभः पापस्य कारणम, 'अस्ति' ।

व्याख्या—क्रोधः = कोपः, लोभात् = लोलुपत्वात् , प्रभवति = उत्पद्यते, कामः= विषयेच्छा, जायते = प्रादुर्भवति, मोहः = मौढ्यम, नाशः = मरणम् च भवतीति शेषः । अस्मात् कारणात लोभः = लोलुपता, पापस्य = कल्मषस्य कारणम् हेतुः । अस्ति ।

टिप्पणी—क्रोधकाममोहनाशाः सर्वे लोभादेव जायन्ते अतः लोभः पापस्य कारणमस्ति इति हेतोः लोलुपता नानुष्टेया ॥

भाषार्थः—काम, क्रोध, मोह, मृत्यु ये सब लोभ से उत्पन्न होते हैं इसलिये लोभ ही पाप का कारण है (अतः लोभ का त्याग श्रेष्ठ है) ॥ २७ ॥

अन्यच्च—असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो ललुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ॥ २८ ॥

अन्वयः—'यद्यपि' हेममृगस्य जन्म असम्भवम् तथापि रामः मृगाय लुलुभे । समापन्नविपत्तिकाले पुंसाम् अपि धियः प्रायः मलिनाः भवन्ति ॥

व्याख्या—हेममृगस्य = स्वर्णहरिणस्य, जन्म=उत्पत्तिः, असम्भवम् = संभावनारहितम्, तथापि = सुवर्णमृगा न भवन्तीति ज्ञाने सत्यपि, रामः=दाशरथिः, मृगाय

सुवर्णहरिणाय, लुलुभे = स्पृहालुर्बभूव। समापन्नविपत्तिकाले = सम्प्राप्तापत्समये, पुंसाम्, विदुषाम् अपि धियः = बुद्धयः, मलिनाः = कर्तव्याकर्तव्यविचारशून्याः, प्रायः = बाहुल्येन, भवन्ति = जायन्ते ॥

टिप्पणी—असम्भवम् = अविद्यमानः संभवो यस्य तत् तथोक्तम् (नञ् बहु० उत्तरपदलोपश्च), हेममृगस्य=हेम्नः मृगस्तस्य (ष० त०), समापन्नविपत्तिकाले= विपत्तेः कालः विपत्तिकालः (ष० त०), समापन्नश्चासौ विपत्तिकालः, सः, तस्मिन् तथोक्ते (क० धा०)। सुवर्णमृगो भवितुं न शक्नोति तथापि रामः सुवर्णमृगे-स्पृहालुरभवत्। अतः ज्ञायते, आपत्काले महापुरुषाणामपि बुद्धयः विचारशून्याः भवन्ति, इति भावः ॥

भाषार्थः—सुवर्ण मृग का होना यद्यपि असम्भव है यह जानते हुए भी श्री रामचन्द्र सोने के मृग के लालची हो गये। इससे यही समझ में आता है कि विपत्काल में विचारवान् पुरुषों की भी बुद्धि विचारशून्य हो जाती हैं ॥ २८ ॥

अनन्तरं ते सर्वे जालनिबद्धाः बभूवुः। ततो यस्य वचनात् तत्रावलम्बितास्तं सर्वे तिरस्कुर्वन्ति स्म।

व्याख्या—अनन्तरम् = उपवेशनानन्तरम्, सर्वे = सकलाः (कपोताः), जालनिबद्धा, बभूवुः = पाशसंयताऽसञ्जाताः, ततः = बन्धनानन्तरम्, यस्य = कपोतस्य, वचनात् = कथनात्, तत्र = जालाच्छादितभूमौ, अवलम्बिताः = उपविष्टाः, तम् = कपोतम्, सर्वे = समस्ताः, तिरस्कुर्वन्ति स्म = परिभवं चक्रुः ॥

टिप्पणी—जालनिबद्धाः = जालेन निबद्धाः जालनिबद्धाः (तृ० त०), यदोपविष्टा जालाच्छादितभूमौ तदैव जालबन्धनं प्राप्ताः कपोताः यस्य वचनेन तत्र प्रवृत्ताः, तं कपोतं, सर्वे कपोताः परिबभूवुः ॥

भाषार्थः—बैठने के बाद ही वे सब कबूतर जाल के बन्धन में पड़ गए; फिर जिसके कहने से वहाँ बैठे थे, उसको सब तिरस्कार करने लगे।

यतः—न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समं फलम्।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते ॥ २९ ॥

अन्वयः—गणस्य अग्रतः न गच्छेत् कार्ये सिद्धे फलम् समम् (भवति) यदि कार्यविपत्तिः स्यात् मुखरः तत्र हन्यते ॥

व्याख्या—गणस्य=सङ्घस्य, अग्रतः=पुरस्तात् न गच्छेत् = नो यायात्, कार्ये= कृत्ये, सिद्धे = सफले (सति), फलम् = विपाकः, समम् = तुल्यम् (भवति), यदि=चेत्, कार्यविपत्तिः = कृत्यविघ्नोपस्थितौ, तत्र=जनसमुदाये, मुखरः = नेता, हन्यते = व्यापाद्यते, आक्षिप्यते वा ॥

टिप्पणी—कार्यविपत्तिः = कार्ये विपत्तिः कार्यविपत्तिः (स० त०), मुखरः

मुखमस्याऽस्ति इति मुखरः। कस्मिँश्चिदपि कार्ये नेत्रा (नायकेन) न भावतव्यम्। कुतः ? सत्यां कार्यसिद्धौ सर्वे समानफलभागिनो भवन्ति। यदि कार्ये वैफल्यं समापन्नम् तदा नायक एव आक्षिप्यते, परिभूयते वा।

भाषार्थः—किसी जनसमुदाय के कार्य में मुखिया नहीं बनना चाहिये। कार्य की सफलता में सभी समान फलभागी होते हैं। यदि कार्य में विफलता आ गई अर्थात् अभीष्ट सिद्ध नहीं होता, तो सर्वविध अनादर का पात्र मुखिया ही बनता है ॥ २९ ॥

तस्य तिरस्कारं श्रुत्वा चित्रग्रीव-उवाच—नायमस्य दोषः। यतः—

व्याख्या—तस्य=पूर्वनिर्दिष्टकपोतस्य, तिरस्कारम्=अनादरम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच = जगाद, अयम् = एषः, अस्य=कपोतस्य, दोषः = अवगुणः, न = नास्ति।

भाषार्थः—उस (प्रेरक कपोत कबूतर) के तिरस्कार को सुनकर चित्रग्रीव ने कहा—इसका यह दोष नहीं है। क्योंकि—

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने ॥ ३० ॥

अन्वयः—हितः अपि आपतन्तीनाम् आपदाम् हेतुताम् आयाति। हि मातृजङ्घा वत्सस्य बन्धने स्तम्भी भवति ॥

व्याख्या—हितः = हितकरः अपि, आपतन्तीनाम्=आगन्तुकानाम्, आपदाम्= आपत्तीनाम्, हेतुताम् कारणताम्, आयाति=समागच्छति, हि = यतः, मातृजङ्घा = जननीप्रसृता, वत्सस्य = तर्णकस्य, बन्धने = संयमने, स्तम्भी भवति = यूपायते ॥

टिप्पणी—हेतुताम् = हेतोर्भावः हेतुता ताम्, हेतु + तल् स्त्रीत्वम्। मातृजङ्घा = मातुः जङ्घा मातृजङ्घा, स्तम्भीभवति = नस्तम्भः अस्तम्भः (नञ् त०), अस्तम्भः स्तम्भो यथा संपद्यमानः, तथाभवति स्तम्भीभवति ॥ आपदागमनसमये हितकरोऽपि जनः आपन्निमित्तभूतोभवति। यथा गोजङ्घा गोसुतस्य बन्धनाय दोहनसमये बन्धनयूपो भवतीति भावः।

भाषार्थः—सदा हित करनेवाले भी आनेवाली आपत्तियों के निमित्त (कारण) हो जाते हैं। जैसे दोहन समय में गौ की जङ्घा अपने बछड़े के लिये बन्धन स्तम्भ (खूँटा) बन जाती है। तब फिर इस कबूतर का क्या दोष है ॥ ३० ॥

अन्यच्च—स बन्धुर्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः।
न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यः विपन्नानाम् आपदुद्धरणक्षमः (भवति) सः बन्धुः (भवति) भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः तु न (बन्धुः भवति)।

व्याख्या—यः=जनः, विपन्नानाम्=विपद्ग्रस्तानाम्, आपदुद्धरणक्षमः=आपत्तिकाले रक्षको भवति सः प्रसिद्धः, बन्धुः = स्वजनः (भवति), भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितस्तु = त्रस्तरक्षणकार्यतिरस्कारकुशलस्तु, बान्धवो न भवति ॥

टिप्पणी—आपदुद्धरणक्षमः = आपद्भ्यः, उद्धरणम् तत् (पं० त०) तस्मिन् क्षमः सः (स० त०), भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः=भीतानां परित्राणम् तत् (ष० त०), तदेव वस्तु तत् (रूपक समासः), तस्मिन् उपालम्भः सः (स० त०), तस्मिन् पण्डितः सः तथोक्तः (स० त०), यः पुरुषः आपद्भ्यः रक्षति स बान्धवोऽस्ति, आगतासु विपत्तिषु रक्षणमकृत्वा तिरस्करणमात्रकुशलस्तु बान्धवो न भवतीति भावः ॥

भाषार्थः—जो पुरुष आपत्तियों से बचाता है वही बन्धु है और जो विपत्तियों के आने पर रक्षा न करके केवल उलाहना (डाँट-फटकार) में निपुण है वह बान्धव नहीं है ॥ २१ ॥

विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम् , तदत्र धैर्यमवलम्ब्य प्रतीकारश्चिन्त्यताम् । यतः—

व्याख्या—विपत्काले = आपत्समये, विस्मय एव = कथमेतावत् कष्टमापतितमित्याश्चर्यमेव, कापुरुषलक्षणम् = अधीरनरचिह्नम्, तत् = तस्मात् कारणात्, अत्र = एतादृशेऽस्मिन्नापत्तिसमये, धैर्यम्=धृतिम्, अवलम्ब्य=अवष्टभ्य, प्रतीकारः= जालबन्धनविमुक्तेरुपायः, चिन्त्यताम् = विचार्यताम् ॥

टिप्पणी—विपत्काले = विपदः कालस्तस्मिन् (ष० त०), कापुरुषलक्षणम् = कुत्सितः पुरुषः कापुरुषः (गतिसमासः), कुशब्दस्य कादेशः । तस्य लक्षणम् तत् तथोक्तम् (ष० त०), आपत्समये, अधैर्यमेवाधीरनरचिह्नम् । अतः पाशबन्धनाद् विमुक्तेरुपायो विचारणीयः, इति भावः ।

भाषार्थः—आपत्ति के समय में धैर्य न रखना ही कायर पुरुष का लक्षण है। अतः धीरज रखकर जालबन्धन से छूटने का उपाय विचार कीजिये ॥

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—विपदि धैर्यम् अथ अभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः यशसि अभिरुचिः श्रुतौ व्यसनम् महात्मनाम् इदम् हि प्रकृतिसिद्धम् ॥

व्याख्या—विपदि=आपदि, धैर्यम् = चित्तावैयग्र्यम्, अथ = अनन्तरम्, अभ्युदये = उन्नतौ, क्षमा = सहनशीलता; सदसि = सभायाम्, वाक्पटुता = वचनचातुर्यम्, युधि = संग्रामे, विक्रमः = विजयशीलपराक्रमयुक्तशूरत्वम्, यशसि = कीर्त्तौ, अभिरुचिः = अभिलाषः । श्रुतौ = शास्त्रश्रवणे, व्यसनम् = आसक्तिः । इदं

हि=एतत् सर्वम्, महात्मनाम्=महानुभावानाम्, प्रकृतिसिद्धम्=साहजिकम् 'वर्तते'।

टिप्पणी—धीरस्य भावः धैर्यम्; धीर+ष्यञ्। वाक्पटुता=पटोर्भावः पटुता, पटु+तल् टाप्। वाचः पटुता वाक्पटुता (ष० त०)। महात्मनाम्=महान् आत्मा येषां ते महात्मानस्तेषाम् (बहु०), प्रकृतिसिद्धम्=प्रकृत्या सिद्धम् तत् (तृ० त०)। विपदि धीरता उन्नतौ सहनशीलता विद्वज्जनगोष्ठ्यां वचनचातुर्यम् समरे शूरता कीर्तौ अभिलाषः शास्त्रश्रवणे आसक्तिः। इमे महापुरुषाणां साहाजिकाः (स्वाभाविकाः) गुणाः सन्ति। इति भावः।

भाषार्थः—आपत्ति में धीरता, उन्नति में सहनशीलता, विद्वानों की गोष्ठी में वाक्-चतुरता, संग्राम में शूरता, कीर्ति में अभिलाषा, शास्त्र-श्रवण में चित्त की लगन, ये सब महापुरुषों के स्वाभाविक गुण होते हैं॥ ३२॥

संपदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्॥ ३३॥

अन्वयः—यस्य संपदि हर्षः न विपदि विषादः (न) रणे च भीरुत्वम् (न) 'भवति', जननीभुवनत्रयतिलकम्, तम् विरलम्, सुतम् जनयति॥

व्याख्या—यस्य=पुरुषस्य, संपदि=सम्पत्तौ, हर्षः=आनन्दः, न=न भवति। विपदि=विपत्तौ, विषादः=खेदः, न=न भवति, रणे=युद्धे, भीरुत्वम्=भयशीलत्वम्, न=न भवति, जननी=माता, भुवनत्रयतिलकम्=लोकत्रयविशेषकसदृशम्, तम्=तादृशम्, विरलम्=अल्पसंख्यकम्, सुतम्=पुत्रम्, जनयति=उत्पादयति॥

टिप्पणी—भीरुत्वम्=भीरोर्भावः, भीरु+त्व, नपुं०,। भुवनत्रयम् तिलकम्=त्रयोऽवयवाः, यस्य तत् त्रयम्, त्रि+अयच्, भुवनानां त्रयम्, तत् (ष० त०), तस्य तिलकस्तम् (ष० त०), आर्या छन्दः। यस्य पुरुषस्य सम्पत्तिलाभे हर्षो न, विपत्तौ सत्याम् शोको न भवति, संग्रामे भयं नास्ति। एवंविधगुणसम्पन्नं लोकत्रये तिलकसदृशं पुत्रं काचित् माता जनयति, इतिभावः॥

भाषार्थः—जिसको सम्पत्ति में हर्ष नहीं, विपत्ति में शोक नहीं, युद्ध में भीरुता नहीं है, ऐसे त्रिलोकी में माननीय किसी विरले पुत्र को कभी कोई माता जन्म देती है॥ ३३॥

अन्यच्च—षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्याः भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥ ३४॥

अन्वयः—इह भूतिम् इच्छता पुरुषेण, निद्रा, तन्द्रा, भयम्, क्रोधः अलस्यम् दीर्घसूत्रता इमे षड् दोषाः हातव्याः॥

व्याख्या—इह = अस्मिल्लोके, भूतिम = श्रेयसम्, इच्छता = अभिलषत, पुरुषेण = नरेण, निद्रा = अतिप्रस्वापः, तन्द्रा = जाड्यम्, भयम् = भीतिः, क्रोधः = रोषः, आलस्यम् = अलसता, दीर्घसूत्रता, चिरकालेनेप्सिततकार्यकारित्वम्, इमे, षट् = युगलत्रयपरिमिताः, दोषाः = अवगुणाः, हातव्याः = त्याज्याः।

भावार्थः—इस संसार में कल्याण की इच्छा वाले व्यक्ति को, इन छ दोषों का परित्याग करना चाहिए—निद्रा, तन्द्रा (ऊँघाई), डर, कोप, आलस्य और दीर्घसूत्रता (अल्पलाक साध्य कार्य को देरी से करना) ॥ ३४ ॥

इदानीमपि, एवं क्रियताम्, सर्वैरेकचित्तीभूय जालमादाय उड्डीयताम् ॥

भावार्थः—अब भी ऐसा करो, सभी एक चित्त होकर जाल को लेकर उड़ जाओ ॥

यतः—अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—अल्पानाम् अपि वस्तूनाम् संहतिः कार्यसाधिका (भवति), गुणत्वम्. आपन्नै, तृणैः मत्तदन्तिन बध्यन्ते ।

व्याख्या—अल्पानाम् = दुर्बलानाम्, अपि संहतिः = समुदायः, कार्यसाधिका = कृत्यसम्पादिका, गुणत्वम् = रज्जुभावम्, आपन्नैः, तृणैः = कुशादिभिः मत्तदन्तिनः = स्रवन्मदजलाः करिणः, बध्यन्ते = नह्यन्ते ।

टिप्पणी—संहतिः = स्त्रियां तु संहति वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम् इत्यमरः। कार्यस्य साधिका कार्यसाधिका (ष० त०), गुणस्य भावः गुणत्वम्, मत्तदन्तिनः = मत्ताश्च ते, दन्तिनः मत्तदन्तिन (क० धा०), रज्जुस्वरूपं प्राप्तैः मुञ्जादि तृणैः मदयुक्तगजराजबन्धनमिव, एकचित्तै दुर्बलै रपि संघीभूय कार्यं साध्यते। इतिभावः ।

भावार्थः—छोटी भी वस्तुओं की संहति (मेल) कार्य को सिद्ध करने वाली होती है। जैसे तुच्छ तृणों से निर्मित रस्सी से मतवाले हाथी बाँधे जाते हैं।

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपिः ।
तुषेणापि परित्यक्ताः न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—पुंसाम् अल्पकैः अपि स्वकुलैः संहतिः श्रेयसी, तुषेण अपि परित्यक्ताः ताण्डुलाः न प्ररोहन्ति ।

व्याख्या—पुंसाम् = जनानाम्, अल्पकैः = दुर्बलैः, अपि स्वकुलैः = निजबान्धवैः, संहतिः = सम्मेलनम्, श्रेयसी = भद्रङ्करी, तुषेणं = धान्यत्वचा, परित्यक्ताः = मुक्ताः, तन्डुलाः = तण्डुलकाजविशेषाः, न प्ररोहन्ति = नोत्पद्यन्ते ।

टिप्पणी—स्वकुलैः = स्वस्य कुलानि, तानि, तैः (ष० त०), पुरुषाणामिदमावश्यकम्, यत् लघुभिरपि स्ववंशजैः सह सम्मेलनम् हितकरम् भवति इति बुद्ध्या तान् प्रति व्यवहरेत्, तुच्छेनापि तुषेण त्यक्ताः तण्डुला प्ररोढुं नार्हन्ति । इतिभावः ।

भाषार्थः—पुरुषों की थोड़े-से भी अपने बान्धवों के साथ संगति (मेल) कल्याणकारी मानी गई है । वैधर्म्यमें दृष्टान्त, जैसे, अतितुच्छ तुष (भूसी—धान्य के ऊपर वाला छिलका) से अलग हुए चावल, अंकुर पैदा नहीं कर सकते ॥ ३६ ॥

इति विचिन्त्य पक्षिणः सर्वे जालमादाय, उत्पतिताः, अनन्तरं स व्याधः सुदूराज्जालापहारकाँस्तानवलोक्य पश्चाद्धावितोऽचिन्तयत्—

व्याख्या—इति = इत्थम्, विचिन्त्यः = निश्चित्य, सर्वे = सकलाः, पक्षिणः = कपोताः, जालम्, व्याधपाशम्, आदाय = गृहीत्वा, उत्पतिताः = उड्डियिरे, उड्डीताः अनन्तरम्=कपोतोत्पनानन्तरम्, सः=पूर्वोक्तः व्याधः=मृगयुः, सुदूरात्=अतिदूरात्, जालापहारकान् = पाशापहारकान् , तान् = कपोतान् , अवलोक्य = दृष्ट्वा, पश्चात् = पृष्ठतः, धावितः = शीघ्रतया प्रचलितः सन् , अचिन्तयत् = विचारितवान् ।

टिप्पणी—जालापहारकान् = अपहरन्तीत्यपहारकाः, जालस्य अपहारकाः जालापहारकास्तान् तथोक्तान् (ष० त०) ।

भाषार्थः—इस प्रकार विचार कर समस्त पक्षी (कबूतर) जाल को लेकर उड़ गये । तब व्याध (बहेलिया) ने बहुत दूर से जाल ले जाने वाले उन कबूतरों को देखकर उनके पीछे-पीछे दौड़ते हुए विचार किया ॥ ३६ ॥

संहतास्तु हरन्त्येते मम जालं विहङ्गमाः ।
यदा तु विवदिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा ॥ ३७ ॥

अन्वयः—एते विहङ्गमाः संहताः (सन्तः) मम जालम् हरन्ति यदा तु विवादिष्यन्ति तदा मे वशम् एष्यन्ति ।

व्याख्या—एते = इमे, विहङ्गमाः = पतत्रिणः, संहताः = संघीभूताः, (सन्तः) मम = मे, जालम् = बन्धनपाशम्, हरन्ति = गृहीत्वा गच्छन्ति । यदा तु = यस्मिन् समये, विवदिष्यन्ति = विवादं करिष्यन्ति, शक्तिहीना भविष्यन्ति 'विवादिना'; 'निपतिष्यन्ति' इति पाठे भूतले निपतिष्यन्ति, तदा, मे=मम, वशम्=आधीनताम्, एष्यन्ति = आयास्यन्ति । सम्मिलिता इमे इदानीं मे जालयादाय नभसि उड्डीयन्ते व्यासश्रमाभूत्वा यदा भूतले निपतिष्यन्ति तदाहं सजालानिमान् ग्रहीष्यामि ॥ इत्याशयः ।

भाषार्थः—ये पक्षी मिले हुए हैं (इसलिए) मेरे जाल को हर ले जा रहे हैं । जब ये (आपस में) विवाद करेंगे (तो विवाद से थक कर भूमि पर गिरेंगे), तब मेरे वश में होंगे ॥ ३७ ॥

ततस्तेषु चक्षुर्विषयमतिक्रान्तेषु पक्षिषु स व्याधो निवृत्तः। अथ लुब्धकं निवृत्तं दृष्ट्वा कपोताः ऊचुः,—'स्वामिन् किमिदानीं कर्तुमुचितम् ?' चित्रग्रीव उवाच—

व्याख्या—ततः=अनन्तरम्, तेषु पक्षिषु=कपोतेषु, चक्षुषोर्विषयः चक्षुर्विषयस्तम् (ष०त०), नेत्रग्राह्यताम्, अतिक्रान्तेषु = अतीत्य गतेषु (सत्सु), सः = पश्चाद्धावन्, व्याधः=लुब्धकः, निवृत्तः=जालाशामपि विहाय स्वस्थानं परावृत्तः। अथ=अनन्तरम्, लुब्धकम् = व्याधम्, निवृत्तम् = परावृत्तम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, कपोताः = पारावताः, ऊचुः = जगदुः। भो स्वामिन् = हे प्रभो! इदानीम् = अस्मिन् समये, किं कर्तुम् = किं विधातुम्, उचितम् = योग्यम्। चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच = जगाद।

भाषार्थः—इसके बाद उन समस्त कबूतरों के आँख से ओझल हो जाने पर वह बहेलिया (जाल की आशा त्याग कर) अपने स्थान को लौट चला। इसके बाद कबूतर व्याध को लौटा हुआ देखकर बोले—स्वामिन्! अब क्या करना उचित है? तब चित्रग्रीव ने कहा—

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चाऽन्ये भवन्ति हितबुद्धयः॥ ३८॥

अन्वयः—माता, मित्रम्, पिता च, इति त्रितयम् स्वभावात् हितम् (भवति) अन्ये कार्यकारणतः हितबुद्धयः (भवन्ति)।

व्याख्या—माता = जननी, मित्रम् = सहजसुहृत्, पिता = जनकः, इति = एतत्, त्रितयम् = त्रिसंख्यकम्, स्वभावात् = निसर्गतः, हितम् = हितकरम्, (भवतीतिशेषः), अन्ये = इतरे, कार्यकारणतः = केचित् कार्यवशात्, केचित् कारणवशात्, हितबुद्धयः = हितकारकाः, भवन्ति = जायन्ते।

टिप्पणी—त्रितयम् = त्रयः, अवयवा यस्य तत् त्रितयम्, त्रि+तयप्। कार्यकारणतः = कार्यं च कारणं च कार्यकारणे (द्वन्द्वः), कार्यकारणाभ्याम्, कार्यकारणतः, कार्यकारण+पंचम्यन्त से तसिल्। हिता बुद्धिः येषां ते हितबुद्धयः (बहु०), स्वाभाविकम् हितकारकत्वं तु मातामित्रपितृष्वेव दृश्यते, एतद्धितरे, केचित् कार्यवशात्, केचित् कारणवशात्, हितकारकाः भवन्ति।

भाषार्थः—माता, पिता, मित्र, ये तीन व्यक्ति स्वाभाविक हितैषी होते हैं। इनसे अतिरिक्त,जो लोग हैं वे कार्य-कारणभाव से हितैषी होते हैं।

'तन्मे मित्रं हिरण्यको नाम मूषिकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति। सोऽस्माकं पाशाँश्छेत्स्यति,' इत्यालोच्य सर्वे हिरण्यकविवरसमीपं गताः, हिरण्यकश्च सर्वदा, अपायशङ्कया शतद्वारं विवरं कृत्वा निवसति।

व्याख्या—तत् = तस्मात्, मे = मम, (क० रा०), मित्रम् = सुहृत्, हिरण्यको नाम = एतन्नाम्ना प्रसिद्धः, मूषिकराजः = आखुनायकः, गण्डकीतीरे = गण्डकीनदीतटे, चित्रवने = तन्नामकारण्ये, निवसति = निवासं करोति, सः, हिरण्यकः, अस्माकम् = कपोतानाम्, पाशान् = दामबन्धान्, छेत्स्यति = दन्तैर्विदारयिष्यति। करिष्यति, इत्यालोच्य = एवं विमृश्य, हिरण्यकविवरसमीपम्, मूषिकराजोपबिलं गताः = प्राप्ताः। हिरण्यकश्च = मूषिकराजश्च, सर्वदा = निरन्तरम्, शतद्वारम् = शतशः, प्रवेशमार्गयुक्तम्, विवरम् = बिलम्, कृत्वा = विधाय निवसति।

टिप्पणी—मूषिकाणां राजा मूषिकराजः (ष० त०), गण्डक्याः तीरम्, गण्डकीतीरम् तस्मिन् (ष० त०), हिरण्यकविवरसमीपम् = हिरण्यकस्य विवरम्, तस्य समीपः तम् (ष० त०), अपायशङ्कया=मरणचिन्तया, अपायस्य शङ्का, तया (ष० त०), शतद्वारम् = शतम्, द्वाराणि यस्य तत्, तादृशम्। (बहु०)।

भावार्थः—इसलिये, मेरा घनिष्ट मित्र हिरण्यकनाम वाला, चूहों का नायक, गण्डकी नदी के तट पर चित्र वन में रहता है। वह हमारे जाल बन्धन को काट देगा। ऐसा विचार कर सब कबूतर हिरण्यक के बिल के निकट पहुँच गये। हिरण्यक सदा विघ्नों की शङ्का से सौ दरवाजे वाला बिल बना कर रहता है।

ततो हिरण्यकः कपोताऽवपातभयाच्चकितः तूष्णीं स्थितः। चित्रग्रीव उवाच—सखे 'हिरण्यक! कथमस्मान् न संभाषसे', ततो हिरण्यकस्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय ससंभ्रमं बहिर्निःसृत्य, अब्रवीत्—'आः पुण्यवानस्मि, प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः'।

व्याख्या—ततः = विवरं प्रति गमनान्तरम्, हिरण्यकनामा मूषिकराजः, कपोतावपातभयात् = पारावतावरोहणभीतेः, चकितः = त्रस्तः (सन्), तूष्णींस्थितः = जोषमास्य तस्थौ। चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच = जगाद, सखे हिरण्यक! = मित्र हिरण्यक! कथम् = केन हेतुना, अस्मान् = सखीन्, न संभाषसे=न वदसि। ततः = चित्रग्रीववाक्यश्रवणानन्तरम्, हिरण्यकः = मूषिकराजः, तद्वचनम् = चित्रग्रीववाक्यम्, प्रत्यभिज्ञाय = अवगम्य, ससम्भ्रमम् = ससाध्वसम्, बहिर्निःसृत्य = विवराद्बहिः प्रदेशे निर्गत्य, अब्रवीत् = अवदत, आः (आश्चर्यार्थेऽव्ययम्), पुण्यवानस्मि = पुण्यात्मा भवामि। प्रियसुहृत् = अतिप्रेमास्पदीभूतः, मे = मम, मित्रम् चित्रग्रीवः = एतन्नामकः कपोतराजः, समायातः = समागतः।

टिप्पणी—हिरण्यकः नाम यस्य सः हिरण्यकनामा (बहु०), मूषिकाणां राजा, मूषिकराजः (ष० त०), कपोतावपातभयात् = कपोतानाम्, अवपातः कपोतावपातः (ष० त०) तस्माद्भयम्, भय, तस्मात् (पं० त०), तद्वचनम् = तस्य

वचनम्, तत् (ष० त०), ससम्भ्रमम्=सम्भ्रमेण सह वर्तमानम्, तत् (तुल्ययोग बहु०), पुण्यमस्यास्तीति पुण्यवान्। पुण्य+मतुप्। प्रियश्चासौ सुहृत्, प्रियसुहृत्, (क० धा०)।

भावार्थः—इस के बाद हिरण्यक कबूतरों के उतरने की आवाज से भयभीत होकर चुप्पी साध लिया। तब चित्रग्रीव ने कहा—अहो मित्र हिरण्यक ! हम लोगों से क्यों नहीं बोलते हो ? तब हिरण्यक चित्रग्रीव का वचन जानकर बड़े आनन्द और उत्साह के साथ बाहर आकर बोला—ओहो, मैं पुण्यवान् हूं जो कि मेरा प्रियमित्र चित्रग्रीव आया है ॥

यस्य मित्रेण संभाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः ।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यस्य, मित्रेण संभाषः, यस्य मित्रेण संस्थितिः यस्य मित्रेण, संलापः, इह. ततः पुण्यवान्, न अस्ति ।

व्याख्या—यस्य=जनस्य, मित्रेण=सुहृदा, संभाषः=सम्यक्, वार्तालापो (भवति) यस्य=जनस्य, मित्रेण=सुहृदा, संस्थितिः=एकत्र सहवासो भवति, यस्य=जनस्य, मित्रेण=सुहृदा, संलापः=मिथः रहस्यविचारादिकम्, भवति । ततः=तस्माज्जनात्, इह=संसारे, पुण्यवान्=कृतीजनः, नास्ति=कश्चिन्न वर्तते ।

टिप्पणी—पुण्यमस्यास्तीति पुण्यवान् ।

भाषार्थः—जिसका मित्र के साथ बातचीत होती है, जिसका मित्र के साथ निवास होता है, तथा जिसका मित्र के साथ गोपनीय विचार-विमर्श होता है उस पुरुष से बढ़कर संसार में अन्य कोई पुण्यशाली नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ पाशबद्धाँश्चैतान् दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वा, उवाच – सखे ! किमेतत्, ? चित्रग्रीव उवाच—'सखे ! अस्माकं प्राक्तनजन्मकर्मणः फलमेतत्' ।

व्याख्या—अथ=बहिर्निःसरणानन्तरम्, पाशबद्धान्=जालसंयतान्, एतान्=कपोतान्, दृष्ट्वा=समीक्ष्य, सविस्मयः=आश्चर्यसहितः, क्षणं स्थित्वा=क्षणमात्रं स्तब्धत्वेनाऽवस्थाय, उवाच=जगाद । सखे !=मित्र ! एतत्=पाशबन्धनम्, किम्=किं निमित्तं संजातम् । चित्रग्रीवः=कपोतराजः, उवाच=जगाद, सखे !=मित्र ! अस्माकम्=कपोतानाम्, प्राक्तनजन्मकर्मणः=पूर्वभवकृतानिष्टस्य, फलम्=परिणामः, एतत्=पाशबन्धनम् ॥

टिप्पणी—पाशबद्धान्=पाशे बद्धाः तान् (स० त०), सविस्मयः=विस्मयेन सह वर्तमानः (तुल्ययोगे बहु०), प्राक्तनजन्मकर्मणः=प्राक्तनं च तत् जन्म तत्, (क० धा०), प्राक्तनजन्मनः कर्म (ष० त०), प्राक्तनजन्मकर्म, तस्य ।

भाषार्थः—तब (हिरण्यक ने) इन कबूतरों को जाल में बँधे हुए देखकर आश्चर्य के साथ कुछ देर ठहर कर कहा—मित्र ! यह क्या है ? चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! हमारे पहले जन्म में किये हुए कर्मों का यह फल है ॥

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च यावच्च यत्र च शुभाऽशुभमात्मकर्म ।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ॥४०॥

अन्वयः—यस्मात् च, येन च, यथा च, यदा च, यच्च, यावच्च, यत्र च शुभाशुभम्, आत्मकर्म । विधातृवशात्, तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तावच्च, तत्र च तच्च (शुभाशुभमात्कर्म) उपैति ॥

व्याख्या—यस्मात् = कारणात्, येन च = कारणेन च, यथा च = येन प्रकारेण च, यदा च = यस्मिन् काले च, यत्र च = यस्मिन् स्थाने, यच्च = यादृशम्, यावच्च = यत्परिमाणम, शुभाशुभम् = पुण्यपापात्मकम्, आत्मकर्म = स्वकर्तव्यम् (भवति) । विधातृवशात् = दिष्टाधीनतः, तस्माच्च = कारणात्, तेन च = कारणेन च, तथा च = तेन च प्रकारेण, तदा च = तस्मिन् काले, तावत् = तत्परिमाणं च. तत्र च = तस्मिन् स्थाने तत् = तादृशम् (शुभा शुभं कर्म), उपैति = प्राप्नोति ।

टिप्पणी—शुभाशुभम् = शुभं च, अशुभं च, अनयोः समाहारः शुभाशुभम् (समाहारे द्वन्द्वः); विधातृवशात् = विधातुः वशः, तस्मात् (पं०त०), यस्मात् कारणात्, येन साधनेन, येन प्रकारेण, यस्मिन् काले, यादृशं, यत्परिमाणं, यस्मिन् स्थाने, यत्, यत्, शुभम्, अशुभम् वा, आत्मनः कर्म भवति । भाग्यवशात्, तस्मात् कारणात्, तेन साधनेन, तेनैव प्रकारेण, तस्मिन्नेव समये, तादृशमेव तत्परिमाणम् तस्मिन्नेव स्थले, तत् शुभाशुभम्, कर्म, फलस्वरूपेण परिणतीभूयोपतिष्ठति, इति भावः ।

भाषार्थः—जिस कारण से, जिस साधन से, जिस प्रकार से, जिस काल में, जैसा, जितना, छोटा-बड़ा, जो-जो शुभ या अशुभ (अपना) कर्म है । विधाता के विधान से, उस कारण से, उस साधन से, उसी प्रकार से, उसी समय में, वैसा ही, छोटा या बड़ा, उसी स्थल में, वह शुभाशुभ कर्म फल रूप में प्राप्त हो जाता है ॥ ४० ॥

रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च ।
आत्माऽपराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—रोग, शोक, परीताप, बन्धन, व्यसनानि च एतानि देहिनाम् आत्मापराधवृक्षाणाम् फलानि 'सन्तीतिशेषः ।

व्याख्या—रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि = आमयशोकसन्तापसंयमनदुःखानि, एतानि = इमानि, देहिनाम् = शरीरिणाम्, आत्मापराधवृक्षाणाम् = निजापराधतरूणाम्, फलानि = परिणामाः, सन्तीतिशेषः ।

टिप्पणी—रोग-शोक-परितापबन्धन-व्यसनानि = रोगश्च, शोकश्च परीतापश्च बन्धनं च व्यसनं चेति रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि (इतरेतरयोगे द्वन्द्वः) आत्मापराधवृक्षाणाम् = आत्मनः, अपराधाः, आत्मपराधाः (ष० त०), आत्मापराधा एव वृक्षाः, आत्मापराधवृक्षाः, तेषाम् (रूपकसमासः), शरीरव्याधिमानसिकचिन्तानानाविधवेदनापाशादि नियन्त्रणविपत्तयः, इमानि सर्वाणि शरीरिणां निजापराधरूपवृक्षाणां फलानि सन्तीति भावः ॥

भावार्थः—रोग, शोक, संताप, बन्धन, विपत्ति, ये सब देहधारियों के अपने अपराध रूप वृक्षों के फल हैं ॥ ४१ ॥

एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकः (सः मूषिकराजः) चित्रग्रीवस्य बन्धनं छेत्तुं सत्वरमुपसर्पति, तत्र चित्रग्रीव उवाच—'मित्र मा मैवं कुरु ! किन्तु प्रथममस्मदाश्रितानामेतेषां तावत् पाशांश्छिन्धि, मम पाशं पश्चाच्छेत्स्यसि ।' हिरण्यकोऽप्याह—'अहमल्पशक्तिः, दन्ताश्च मे कोमलाः, तदेतेषां पाशांश्छेत्तुं कथं समर्थो भवामि ? तत् यावन्मे दन्ता न त्रुटयन्ति तावत् तव पाशं छिनद्मि । तदनन्तरमप्येतेषां बन्धनं यावत् शक्यं छेत्स्यामि ।' चित्रग्रीव उवाच—'अस्त्वेवं तथाऽपि यथाशक्ति बन्धनमेतेषां खण्डय ।' हिरण्यकेन उक्तम्—'आत्मपरित्यागेन यदाश्रितानां परिरक्षणं तन्न नीतिवेदिनां सम्मतम् ।'

व्याख्या – एतत् = पूर्वोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, हिरण्यकः = मूषिकराजः, चित्रग्रीवस्य = कपोतराजस्य, बन्धनम् = पाशनियन्त्रणम्, छेत्तुम् = कर्तितुम्, सत्वरम् = तूर्णम्, उपसर्पति = चित्रग्रीवस्य समीपं गच्छति । तत्र = तदा, चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच = जगाद । मामैवं कुरु = मित्र ! सखे ! एवम् इत्थम् (पुरैव मम बन्धनच्छेदनम) मा मा कुरु = नो नो विधेहि, प्रथमम् = पूर्वम्, अस्मदाश्रितानाम् = मदेकशरणानाम्, एतेषाम् = एषां कपोतानाम्, तावत् = वाक्यालङ्कारे, साकल्येन वा, पाशान् = बन्धनानि, छिन्धि = कर्तय, मम = तव सुहृदः, पाशम् = बन्धनम्, पश्चात् = अनन्तरम्, छेत्स्यसि = करर्स्यति । हिरण्यकोऽपि = मूषिकराजोऽपि, आह = ब्रवीति, अहम् = हिरण्यकः, अल्पशक्तिः = स्वल्पबलवान् , दन्ताश्च = रदाश्च, मे = मम, (मू० रा० ६य) कोमलाः = मृदवः, 'सन्ति' तत् = तस्माद्धेतोः, एतेषाम् = अखिलकपोतानाम्, पाशान् = बन्धनानि, छेत्तुम् = कर्तितुम्, कथम् = केन प्रकारेण, भवामि = शक्नोमि । (किञ्च) तत् = तस्मात् , यावत् = यदापर्यन्तम्, मे = मम, दन्ताः = रदाः, न त्रुट्यन्ति = न भज्यन्ति, तावत् = प्रथमम् तव = भवतः, पाशम् = बन्धनम्, छिनद्मि = कृन्तामि, चित्रग्रीवः = कपोतराज, उवाच = जगाद—अस्त्वेवम् = एवम् = तव कथनानुसारम्, अस्तु = भवतु । तथा[illegible]

तदनन्तरम् = तव बन्धनछेदनात् परम्, एतेषामपि, बन्धनम् = नहनम्, यावच्छक्यम् = यावत् यत्नेन च्छेत्तुं शक्यते, तावत् = तदवधिकालम्, छेत्स्यामि = कर्तिष्यामि। चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच = जगाद, एवम् = तव कथनानुसारम् एव, अस्तु = भवतु। तथापि = पूर्वम्, एतेषाम् = एषाम्, बन्धनम् = नहनम्, यथाशक्ति = यावच्छक्यम्, खण्डय = छिन्धि। हिरण्यकेन = मूषिकराजेन, उक्तम् = कथितम्, आत्मपरित्यागेन = स्वत्यागेन, आश्रितानाम् = निजैकशरणानाम्, यत् = परिरक्षणम् = परित्राणम्, तत्, नीतिविदाम्, नीतिज्ञानम्, न सम्मतम् = नाभिमतम् ॥

टिप्पणी—सस्वरम = स्वरया सह वर्तमानम् तत् (तुल्ययोग बहु०), अस्मदाश्रितानाम् = अहम् आश्रितो यैः ते अस्मदाश्रितास्तेषाम् (बहु०), अल्पशक्तिर्यस्य सः तथोक्तः (बहु०), कोमलाः, 'कोमलं मृदुलं मृदु' इत्यमरः। तदनन्तरम् = तस्मात् अनन्तरम्, तत , (पं० त०) यावच्छक्यम् = यावान् शक्यः तत्, (अव्ययीभावः), यथाशक्ति = शक्तिम्, अनतिक्रम्य, यथाशक्ति, (अव्ययीभावः) आत्मपरित्यागेन = आत्मनः परित्यागः आत्मपरित्यागः तेन (ष० त०), नीतिवेदिनाम् = नीतिम् विदन्तीति तच्छीलाः नीतिवेदिनः तेषाम् नीति + विद् + णिनिः।

भावार्थः—यह सुनकर हिरण्यक नाम का चूहा चित्रग्रीव के बन्धन काटने के लिये उसके नजदीक जाता है। इसी बीच चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! ऐसा मत करो। किन्तु पहले हमारे आश्रितों के बन्धनों को काटो। उसके बाद मेरा काटना। तब हिरण्यक ने भी कहा—मित्र! मैं अल्पबल वाला हूँ और दाँत भी कोमल हैं, अर्थात् उनमें कड़ापन नहीं है। तब फिर इन सबों के बन्धन को काटने के लिए कैसे समर्थ होऊँगा। तो भी जब तक मेरे दाँत नहीं टूटते तब तक तेरे बन्धन को काटूँगा। उसके बाद सब के बन्धनों को यथाशक्ति काटूँगा। तब चित्रग्रीव ने कहा—ऐसा ही हो। तो भी जहाँ तक हो सके इन सबके बन्धनों को पहले काटो। तब हिरण्यक ने कहा—अपने को छोड़ कर आश्रितों का रक्षण करना यह नीति कोविदों के सम्मत नहीं है॥

यतः—आपदर्थे धनं रक्षेत् दारान् रक्षेत् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि ॥ ४२ ॥

अन्वयः—आपदर्थं धनम् रक्षेत्, धनैः अपि दारान् रक्षेत्, धनैः अपि, दारैः अपि आत्मानम् सततम् रक्षेत् ॥

व्याख्या—आपदर्थे = विपन्निवारणार्थम्, (अत्र अर्थ शब्दः निवृत्तिपरः मशकार्थोधूम इति वत्) धनम् = सम्पत्तिम्, रक्षेत = सूक्ष्मव्ययेन संग्रहं कुर्यात्। धनै·

रपिः = द्रव्यादिभिः दारान् = भार्याम्, रक्षेत् = त्रायेत, दारैः अपि, भार्यया अपि, धनैः अपि = द्रव्यैरपि, आत्मानम् = स्वम्, सततम् = सन्ततम्, निरन्तरम्, रक्षेत् = गोपायेत् ॥

टिप्पणी—आपदे इदम् आपदर्थम् तस्मिन् (च० त०) ।

भावार्थः—आपत्तियों को हटाने के लिये धनसंग्रह आवश्यक है और धन से स्त्री की रक्षा आवश्यक है। इसी प्रकार स्त्री तथा धन दोनों से नित्य आत्मरक्षा आवश्यक है ॥ ४२ ॥

अन्यच्च—धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः ।
तान् निघ्नता किन्न हतं ? रक्षता किं न रक्षितम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—प्राणाः धर्मार्थकाममोक्षाणाम् संस्थितिहेतवः 'सन्ति' तान् निघ्नता किम् न हतम्, रक्षता किम् न रक्षितम् ।

व्याख्या—प्राणाः = असवः धर्मार्थकाममोक्षाणाम्=पुरुषार्थचतुष्टयस्य, संस्थितिहेतवः = आधारशिलाभूताः (सन्तीतिशेषः), तान् = प्राणान् , निघ्नता = विनाशयिता, किम् = किं वस्तु, न हतम् = न विनाशितम्, तान् = प्राणान् , रक्षता = पोषयता 'जनेन', किं न रक्षितम् = किं न पोषितम्, अपितु सर्वमेव रक्षितम् ।

टिप्पणी—धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च ते धर्मार्थकाममोक्षास्तेषाम्, तथोक्तानाम् (द्वन्द्व) संस्थितिहेतवः = संस्थितेः हेतवः संस्थितिहेतवः, तेषाम् (ष० त०), धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयस्य कारणी भूताः जीवानां प्राणाः संति । तान् विनाशयता सर्व विनाशितम्, तान् रक्षता सर्वं रक्षितम्, अतः सर्वतो वरीयसी, आत्मरक्षेति भावः ।

भावार्थः—प्राण ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय के अस्तित्व के कारण हैं। अतः प्राणों का हनन करने वाले ने क्या नहीं नष्ट कर लिया, इसी तरह प्राण की रक्षा करने वाले ने क्या नहीं सुरक्षित कर लिया, इसलिये आत्मरक्षा सर्वोपरि है ॥ ४३ ॥

चित्रग्रीव उवाच—सखे ! नीतिस्तावदीदृश्येव. किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथाऽसमर्थस्तेनेदं ब्रवीमि ।

व्याख्या—चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच = जगाद । सखे ! मित्र ! नीतिः = नयः, तु ईदृशी, एव = एवंविधैव, किन्तु=परन्तु, अहम्, चित्रग्रीवः, अस्मदाश्रितानाम्=मदेकाश्रयाणाम्, दुःखम् = पीडाम्, सोढुम्=मर्षितुम्, सर्वथा = सर्वप्रकारेणः असमर्थः=अशक्तः, 'अस्मि' इति शेषः । तेन=आश्रितकष्टासहनरूपकारणेन, इदम्= इत्थम् , ब्रवीमि = कथयामि ।

भाषार्थः—चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! नीति तो यही है जो तुम कहते हो, परन्तु मैं अपने आश्रितों का कष्ट सहन करने में असमर्थ हूँ। इसलिये ऐसा कहता हूं॥

यतः—धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति॥ ४४॥

अन्वयः—प्राज्ञः धनानि जीवितम् च परार्थे एव उत्सृजेत्, विनाशे नियते सति सन्निमित्ते त्यागः वरम्॥

व्याख्या—प्राज्ञः = बुद्धिमान्, धनानि = द्रव्याणि, जीवितम् = जीवनं च परार्थे, एव = अन्यार्थे एव, उत्सृजेत = त्यजेत्, विनाशे = मरणे, नियते = निश्चिते सति, सन्निमित्ते = उत्तमकारणे, परोपकाररूपे, त्यागः = धनजीवनोरुत्सर्गः, वरम् = ईषत्प्रियम् (भवतीति) शेषः।

टिप्पणी—प्राज्ञः = प्रज्ञ एव प्राज्ञः = स्वार्थे अण्। परार्थे = परस्य अर्थः, तस्मिन् (ष० त०), सन्निमित्ते = सच्च तन्निमित्तम् तस्मिन् (क० धा०), वरम् = देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे, त्रिषुक्लीबेमनाक् प्रिये, इत्यमरः। सुधीः जनः परोपकार एव, आत्मनो धनजीवनयोरुपयोगं कुर्यात्। यतः धनजीवनयोर्विनाशः कदापि नूनं भविष्यति, अतः सत्कार्ये तयोरुपयोगे वरः। इति भावः॥

भाषार्थः—बुद्धिमान् मनुष्य परोपकार में ही अपने धन तथा जीवन का परित्यग करे, क्योंकि धन तथा जीवन का विनाश निश्चित है अतः परोपकार रूप सत्कार्य में त्याग अच्छा है॥ ४४॥

अयमपरश्चाऽसाधारणो हेतुः—

व्याख्या—अयम् = एषः, अपरः = अन्यः, असाधारणः = विशिष्टः, हेतुः = कारणम् 'अस्ति'।

भावार्थः—यह दूसरा असाधारण कारण है।

जातिद्रव्यबलानाञ्च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि कदा किं तद् भविष्यति॥ ४५॥

अन्वयः—मया सह एषाम् जातिद्रव्यबलानाम् च साम्यम् 'वर्तते' मत्प्रभुत्वफलं कदा किम् भविष्यति तद् ब्रूहि।

व्याख्या—मया = चित्रग्रीवेण, सह = साकम्, एषाम् = कपोतानाम्, जातिद्रव्यबलानाम् = जातिः = कपोतत्वम्, द्रव्यम् = पक्षचञ्च्वादिरूपम्, बलम् = गगनेऽत्पतनरूपा शक्तिश्च, एषाम्, साम्यम् = समानता, 'अस्तीति' शेषः। मत्प्रभुत्वफलम् = मत्स्वामित्वपरिणामः, कदा = कस्मिन् काले, किम् = किंस्वरूपम्, भविष्यति = भावि, तद् = उत्तरम्, ब्रूहि = कथय॥

टिप्पणी—जातिद्रव्यबलानाम्=जातिश्च, द्रव्यं च, बलं चेति; जातिद्रव्यबलानि, तेषाम् (द्वन्द्वः), साम्यम् = समस्य भावः तत्। मत् प्रभुत्वफलम् = प्रभोर्भावः प्रभुत्वम्, मम, प्रभुत्वम्, मत् प्रभुत्वम् (ष० त०), तस्य फलं तत्। (ष० त०), मया सहैतेषां जातिद्रव्यबलानि, समानान्येव सन्ति, परन्तु मयि, एषामाधिपत्यमधिकतया प्रतीयते, तस्य फलम्, कदा, किं भविष्यति, इति कथय, इति भावः।

भाषार्थः—मेरे साथ इन कबूतरों की जाति (कपोतत्व जाति), द्रव्य (पंख इत्यादि), बल, (आकाश में उड़ने की शक्ति), ये सब तो समान हैं। परन्तु मेरी प्रभुता का फल इन्हें कब क्या होगा ? इसका तो उत्तर दो ॥ ४५ ॥

अन्यच्च—विना वर्त्तनमेवैते न त्यजन्ति ममान्तिकम्।
तन्मे प्राणव्ययेनाऽपि जीवयैतान् ममाश्रितान् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—एते वर्तनम् विना, एव, मम, अन्तिकम् न त्यजन्ति, तत् मे प्राणव्ययेन अपि मम आश्रितान्, एतान्-जीवय ॥

व्याख्या—एते = इमे, वर्तनम् = वृत्तिम्, विनैव = अन्तरा, मम = मे, अन्तिकम् = सान्निध्यम्, न त्यजन्ति = न हिन्वन्ति, तत् = तस्माद्धेतोः मे = कपोतराजस्य, प्राणव्ययेनापि = असूनामपगमेनापि, मम = मे, आश्रितान् = सेवकान्, एतान् = इमान्, जीवय = जीवनं देहि ॥

टिप्पणी—प्राणव्ययेन = प्राणानां व्ययस्तेन (ष० त०)। इमे कपोताः जीविकाम् ऋतेऽपि मम सन्निधिं न त्यजन्ति, अतः मम प्राणहान्यापि, एतेषां जीवनम्, रक्ष। इतिभावः ॥

भाषार्थः—ये कबूतर जीविका के विना भी मेरा साथ नहीं छोड़ते, अतः मेरे प्राणों की बाजी लगाकर भी इन मेरे आश्रितों के जीवन की रक्षा करो ॥ ४६ ॥

किञ्च—मांसमूत्रपुरीषाऽस्थिपूरितेऽत्र कलेवरे।
विनश्वरे विहायाऽऽस्थां यशः पालय मित्र मे ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे मित्र ! मांसमूत्रपुरीषास्तिथपूरिते, विनश्वरे अत्र कलेवरे आस्थाम् विहाय, मे यशः पालय।

व्याख्या—हे मित्र ! भो सखे, मांसमूत्रपुरीषास्थिपुरिते = आमिषप्रस्रावविष्टाकीकससंपादिते, विनश्वरे = अवश्यंभाविविनाशे, अत्र = अस्मिन्, कलेवरे = देहे, आस्थाम् = आस्तिक्यबुद्धिम्, विहाय = परित्यज्य, मे = मम, यश = कीर्तिम्, पालय = रक्ष ॥

टिप्पणी—मांसमूत्रपुरीषास्थिपूरिते = मांसञ्च, मूत्रं च पुरीषञ्च, अस्थि च, इति मांसमूत्रपुरीषास्थीनि (द्वन्द्वः), तेनपूरितस्तस्मिन् (तृ० त०), क्वचित् पूरिते, इत्यस्य स्थाने, निर्मिते इति पाठः, तत्र निर्मिते, इत्यर्थः। कीकसं कुल्य-मस्थि चेत्यमरः। हे मित्र ! मम शरीरद्वयं वर्तते, मांसमूत्रमलास्थिनिर्मितमेकम्, इदम्, कस्मिंश्चिद्दिने नूनं नङ्क्ष्यति। अतः, एतत्रक्षणापेक्षया, अपरं यत् कीर्तिरूपं वर्तते· तस्य रक्षणमावश्यकम्, तदेव विधेहि। मृतेऽपि जन्तौ कीर्तिर्नामतोऽव-शेषयति, इतिभावः।

भावार्थः—हे मित्र ! मांस, मूत्र, विष्ठा और हड्डी से परिपूर्ण विनश्वर (मेरे) इस शरीर में आस्था छोड़ कर मेरे यश की रक्षा करो। अर्थात् कीर्ति रूपी शरीर की रक्षा करना आवश्यक है॥ ४७ ॥

अपरञ्च पश्य—यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना।
यशः कायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन्नु किम् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—यदि अनित्येन मलवाहिना कायेन निर्मलम्, नित्यम्, यशः लभ्येत, नु तत् किम् न लब्धम्, भवेत् ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, अनित्येन = अध्रुवेण, मलवाहिना = करणछिद्रस्रवक्लि-ष्टेन, पुरीषादिमलवहनशीलेन, इति वा। कायेन = शरीरेण, निर्मलम् = विशुद्धम्, निरञ्जनमिति वा, नित्यम् = अविनाशि, यशः = कीर्तिः, लभ्येत = प्राप्येत। नु = भो हिरण्यक ! त्वां पृच्छामि, तत् = तर्हि, किम् = किं वस्तु, लब्धम् = प्राप्तम्, न भवेत् = न स्यात् ॥

टिप्पणी—अनित्येन = न नित्यम्, अनित्यम् तेन, (नञ्० त०), मलवाहिना= मलानि वहन्ति तच्छीलम् तेन। मल + वह + णिनिः (उपपदसमासः)। यदि मलवाहिना विनश्वरेण शरीरेण विशुद्धं नित्यम् च (अविनाशि), यशः प्राप्नोति, तर्हि किम प्राप्तम् अर्थात् निखिलं प्राप्तम् ॥ इति भावः ॥

भावार्थः—यदि अनित्य (एक क्षण में नष्ट होनेवाले), मलवाही (मल-मूत्र ढोने वाले), इस शरीर से विशुद्ध तथा अविनाशिनी कीर्ति का लाभ होता है, तो किस वस्तु का लाभ नहीं हुआ ? अर्थात् सब कुछ मिल गया ॥ ४८ ॥

यतः—शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥ ४९ ॥

अन्वय—शरीरस्य गुणानाम् च अन्तरम् अत्यन्तम् दूरम् (अस्ति), शरीरम्, क्षणविध्वंसि (भवति), गुणाः कल्पान्तस्थायिनः (भवन्ति)।

व्याख्या—शरीरस्य = कायस्य, गुणानाम् = दयादाक्षिण्योपकारादीनाम्, अन्त-रम् = भेदः। अत्यन्तम् = अनल्पम्, दूरम् = विप्रकृष्टम् (अस्ति), शरीरम् =

कायः, क्षणविध्वंसि=आशुविनाशि, गुणाः=पूर्वोक्ताः, कल्पान्तस्थायिनः= ब्रह्मदिनपर्यन्तावधिकाः, कल्पः शास्त्रे विधौ न्याये संवर्ते ब्रह्मणो दिने, इति कोषः। 'भवन्ति', इति शेषः ॥

टिप्पणी—क्षणविध्वंसि=क्षणेन विध्वंसते तच्छीलम्, क्षण+वि+ध्वंस+णिनिः (उपपदसमासः), कल्पान्तस्थायिनः=कल्प+स्थ, अन्तः कल्पान्तः (ष० त०), कल्पान्तम् तिष्ठन्ति तच्छीलाः (उपपदसमासः), शरीरम् क्षणमात्रेण नश्यति, गुणाः ब्रह्मणोदिनपर्यन्तम् तिष्ठन्ति, अतः शरीरस्य गुणानां च महान् भेदः ।

भाषार्थः—शरीर तथा गुणों में बहुत भेद है, शरीर तो क्षण भर में नष्ट होने वाला है और गुण ब्रह्मा के दिन पर्यन्त रहते हैं (कल्प ब्रह्मा के दिन को कहते हैं, एक-एक हजार दफे, सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारो युगों के व्यतीत होने पर ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है) ॥ ४९ ॥

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन् अब्रवीत्—'साधु मित्र ! साधु, अनेनाऽऽश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्याऽपि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते ।' एवमुक्त्वा तेन सर्वेषां कपोतानां बन्धनानि छिन्नानि । ततो हिरण्यकः सर्वान् सादरं सम्पूज्य आह—सखे चित्रग्रीव ! सर्वथाऽत्र जालबन्धनविधौ सति दोषमाशङ्क्य आत्मनि अवज्ञा न कर्तव्या ।

व्याख्या—इति=पूर्वोक्तम्, चित्रग्रीववचनम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, प्रहृष्टमनाः= प्रसन्नचित्तः, पुलकितः=रोमाञ्चितः सन्, अब्रवीत्=उवाच। भो मित्र !=अहो सखे ! साधु-साधु=त्वया शोभनम्, उच्यते। अनेन=एतेन, आश्रितवात्सल्येन= अनुजीविस्निग्धत्वेन, त्रैलोक्यस्यापि=भुवनत्रयस्यापि, प्रभुत्वम्=स्वामित्वम्, त्वयि=भवति, युज्यते=युक्तं भवति, एवम्=उक्तरीत्या, प्रशंसावाक्यमभिधाय, तेन=हिरण्यकेन, सर्वेषाम्=सकलानाम्, कपोतानाम्=पारावतानाम्, बन्धनानि=नियन्त्रणानि, छिन्नानि=खण्डितानि, ततः=तदनन्तरम्, हिरण्यकः= मूषिकराजः, सर्वान्=समस्तान्, कपोतान्, सादरम्=आदरेण सहितम्, सम्पूज्य= सत्कृत्य, आह=वदति। सखे चित्रग्रीव ! सर्वथा=सर्वप्रकारेण, अत्र=अस्मिन्, जालबन्धनविधौ=पाशनियन्त्रभवने सति, आत्मनि=स्वस्मिन्, अवज्ञा=अविमृश्यकारितारूपमपराधम्, न कर्तव्या=नानुष्ठेया, त्वया इति शेषः ॥

टिप्पणी—प्रहृष्टमनाः=प्रहृष्टं मनो यस्य सः (बहु०), पुलकितः=पुलकानि, रोमाणि संजातानि अस्येति पुलकितः पुलक+इतच्। आश्रितवात्सल्येन=आश्रितेषु वात्सल्यम्, आश्रितवात्सल्यम्, तेन (स०त०), सादरम्=आदरेण सहितम्, सादरम्, (तुल्ययोगे बहु), जालबन्धनविधौ=जालस्य बन्धनम्, (ष० त०) तस्य विधिः, तस्मिन् (ष० त०), कर्तुंयोग्या कर्तव्या। कृ+तव्य+टाप्।

भाषार्थः—यह सुनकर हिरण्यक बहुत प्रसन्न हुआ और रोमाञ्चित होकर बोला—हे मित्र ! तुम ठीक कहते हो। अपने आश्रितों के इस वात्सल्य (लाड़प्यार) से तो आप में त्रिलोकी का स्वामित्व संयुक्त हो रहा है। ऐसा कह कर उसने सभी कबूतरों के बन्धन काट डाला। इसके बाद सबों का आदरपूर्वक सन्मान कर के हिरण्यक ने कहा—मित्र, चित्रग्रीव ! इस जाल के बन्धन विधि में दोष समझकर अपने मन में ग्लानि हरगिज नहीं करनी चाहिये। क्योंकि—

यतः—योऽधिकाद् योजनाशतात् पश्यतीहामिषं खगः।
स एव प्राप्तकालस्तु पाशबन्धं न पश्यति ॥ ५० ॥

अन्वयः—यः खगः इह योजनशतात्, अधिकात्, आमिषम् पश्यति, प्राप्तकालः स एव तु पाशबन्धनम् न पश्यति।

व्याख्या—यः, खगः (पक्षी), इह=अस्मिन् लोके, योजनशतात्=कोशचतुष्टयशतात्, अधिकात्=बहुदूरतः, आमिषम्=मांसम्, पश्यति=समीक्षते, प्राप्तकालः=समाप्तजीवनावधिः, स एव=खगः, पाशबन्धम्=व्याधप्रसारितजालम्, न पश्यति=नालोचयति।

टिप्पणी—योजनशतात्=योजनानां शतम्, तस्मात् (ष० त०), प्राप्तः कालो यस्य सः प्राप्तकालः (बहु०), पाशबन्धनम्=पाशस्य बन्धः, तम् (ष०त०), यः पक्षी नभस्युड्डीयमानः भूमौ पतितं मांसखण्डन्तु, पश्यति, आसन्नमृत्युः स एव खगः व्याधेन प्रसारितम् जालम् न पश्यति, इति भावः।

भाषार्थः—जो पक्षी (गीध या बाज) आकाश में सौ योजन या उससे भी अधिक दूर से जमीन पर पड़े हुए मांस के टुकड़े को तो देख लेता है, परन्तु काल के वशीभूत वही पक्षी, (व्याध द्वारा पसारे गये) जाल के बंधन को नहीं देखता है ॥ ५० ॥

अपरञ्च—शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥५१॥

अन्वयः—शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनम्, गजभुजङ्गमयोः अपि बन्धनम्, मतिमतां च दरिद्रताम् विलोक्य विधिः बलवान् इति मे मतिः अहो।

व्याख्या—शशिदिवाकरयोः=चन्द्रसूर्ययोः, ग्रहपीडनम्, राहुग्रसनम्, गजभुजङ्गमयोः अपि, हस्तिसर्पयोः, बन्धनम्=नियन्त्रणम्, (श्रृङ्खलया, मन्त्रादिना च संयमनम्), मतिमताम्=बुद्धिमताम्, दरिद्रताम्=दुर्गतत्वम्, विलोक्य=दृष्ट्वा, विधिः=भाग्यम, बलवान्=प्रबलः, इति=इत्थम्, मे=मम, मतिः=बुद्धिः, 'अस्ति' अहो=आश्चर्यम्।

टिप्पणी—शशिदिवाकरयोः = शशिश्च दिवाकरश्च, शशिदिवाकरौ तयोः (द्वन्द्वः), ग्रहपीडनम् = ग्रहेण पीडनम्, तत् (तृ० त०), गजश्चभुजङ्गमश्च, गज-भुजङ्गमौ तयोः (द्वन्द्वः), मतिः विद्यते येषां ते मतिमन्तस्तेषाम्, मति + मतुप्, दरिद्रस्य भावः दरिद्रता, ताम्, दरिद्र + तल्, स्त्रीत्वे, टाप्, बलम् अस्य, अस्तीति बलवान्। बल + मतुप्, सूर्यचन्द्रमसो राहुग्रासम्, हस्तिसर्पयोः शृङ्खलेन, मन्त्रा-दिना संयमनम्, बुद्धिमतां दुर्गतत्वं च विलोक्य, इति मया निर्णीतम्, सर्वत्र भाग्यस्यैव बलवत्ताऽस्तीति भावः।

भावार्थः—सूर्य तथा चन्द्रमा का राहु द्वारा ग्रसित होना, हाथी तथा सर्प का शृङ्खला (साँकर), अथवा मन्त्रादि के द्वारा बन्धन में पड़ जाना, इसी प्रकार प्रकृष्ट बुद्धिवालों की दरिद्रता को देखकर विधि ही बलवान है, ऐसी मेरी बुद्धि हो रही है, आश्चर्य है! अर्थात् सबोंके (इसभोग में) भाग्य की प्रबलता है ॥५१॥

अन्यच्च—व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि।
दुर्नीतं किमिहाऽस्ति किं सुचरितं? कः स्थानलाभे गुणः?
कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ॥ ५२ ॥

अन्वयः—व्योमैकान्तविहारिणः अपि विहगाः आपदम्, सम्प्राप्नुवन्ति, निपुणैः अगाधसलिलात्, समुद्रात् अपि, मत्स्याः बध्यन्ते, इह किं दुर्नीतम् अस्ति, किम् सुचरितम्, स्थानलाभे कः गुणः, हि व्यसनप्रसारितकरः कालः दूरात् अपि गृह्णाति ॥

व्याख्याः—व्योमैकान्तविहारिणः = आकाशैकान्तविहरणशीलाः, विहगाः = विहङ्गमाः अपि, आपदम् = आपत्तिम्, सम्प्राप्नुवन्ति = अधिगच्छन्ति, निपुणैः = मत्स्यवधनिष्णातैः 'धीवरैः', अगाधसलिलात् = अतलस्पर्शजलात् मत्स्याः अपि, बध्यन्ते = नह्यन्ते, इह = संसारे, दुर्नीतम्, दुश्चरितम्, किम्, 'अस्ति = वर्तते'। सुचरितम् = सच्चरित्रं च, किम्, अस्ति। स्थानलाभे = पाशरहितप्रदेशप्राप्तौ, कः गुणः = किंफलम्, हि = यतः, व्यसनप्रसारितकरः, विपदिविस्तारितहस्तः, कालः = मृत्युः, दूरादपि = विप्रकृष्टादपि, गृह्णाति = आदत्ते।

टिप्पणी—व्योमैकान्तविहारिणः = व्योम्नः एकान्तः (ष० त०), तस्मिन् विह-रन्तीति,तच्छीलाः। व्योमैकान्त + वि + हृ + णिनिः (उपपदसमासः), अगाधस-लिलात्: अगाधं सलिलं यस्मिन्, सः तस्मात् (बहु०), स्थानलाभेः स्थानस्य लाभः, तस्मिन् (ष० त०), व्यसनप्रसारितकारः = व्यसने प्रसारितौ, व्यसनप्रसारितौ, तौ, करौ यस्य सः। (स० त० गर्भक बहु०), दुर्नीतम् = दुष्टं नीतम्, शोभनं चरितम्, (उभयत्र गतिसमयासः), आकाशस्यकान्तस्थले विहरणशीलाः पक्षिणः,

आपद्ग्रस्ताः भवन्ति, प्रवीणधीवरैः, अतलस्पर्शिजलयुक्तात् सागरात्, मीनाः ध्रियन्ते, इह संसारे, दुश्चरित्रं किमपि नास्ति, सुचरितमपि नास्ति, सर्वोत्तमस्थान-प्राप्तावपि किं फलमस्ति, विपत्तौ, विस्तारितहस्तः मृत्युः विप्रकृष्टप्रदेशादपि सर्वजनान् आदत्ते, इति भावः।

भाषार्थः—आकाश के एकान्त भाग में घूमने वाले पक्षी भी विपद्ग्रस्त होते हैं। कुशल मछुए लोग अगाध जल वाले समुद्र से मछलियों को पकड़ लेते हैं। इस जगत् में क्या बुरा है और क्या अच्छा है? उत्तम स्थान की प्राप्ति में भी क्या फल है? क्योंकि विपत्ति में काल अपने हाथों को लम्बा फैला कर दूर से भी प्राणि-मात्र को खींच लेता है॥ ५२॥

इति प्रबोध्य आतिथ्यं कृत्वा आलिङ्गय च तेन संप्रेषितश्चित्रग्रीवोऽपि सपरिवारो यथेष्टदेशान् ययौ; हिरण्यकोऽपि स्वविवरं प्रविष्टः।

व्याख्या—इति = इत्थम्, प्रबोध्य = आश्वासनं विधाय, आतिथ्यम् = आगन्तुक-सत्कारम्, कृत्वा = विधाय, आलिङ्गय = आश्लिष्य, च, तेन = हिरण्यकेन, संप्रेषितः = विसृष्टः, चित्रग्रीवः = कपोतराजः, अपि, सपरिवारः = परिवारसहितः, यथेष्टदेशान् = स्वाभिमतप्रदेशान्, ययौ = जगाम, हिरण्यकोऽपि = मूषिकोऽपि, स्वविवरम्, आत्मबिलं प्रविष्टः = प्रविवेश।

टिप्पणी—परिवारेण सह वर्तमानः सपरिवारः (तुल्ययोग बहु०), इष्टदेशान् = इष्टाश्च ते देशाः, तान् (क० धा०), स्वस्य विवरस्तम्, (ष० त०)।

भाषार्थः—इस प्रकार हिरण्यक ने चित्रग्रीव को सान्त्वना देकर, तथा अतिथि सत्कार कर और गाढ़ आलिङ्गन (परस्पर मिलन) करके विदाई कर दी। चित्रग्रीव भी परिवार के साथ अपने मनोनीत देशों को चला गया, हिरण्यक अपने बिल में प्रविष्ट हो गया॥

यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च।
पश्य मूषिकमित्रेण कपोता मुक्तबन्धनाः॥ ५३॥

अन्वयः—यानि कानि च शतानि मित्राणि कर्तव्यानि, मूषिकमित्रेण कपोताः मुक्तबन्धनाः (कृताः) पश्य।

व्याख्या—यानि कानि च = स्वजातीयानि, विजातीयानि, वा, लघूनि, महान्ति च, शतानि = शतशः मित्राणि = सुहृदः, कर्तव्यानि = विधेयानि, मूषिक-मित्रेण = सुहृदाखुना, कपोताः = पारावताः, मुक्तबन्धनाः = उत्सारितप्रसितिकाः (कृताः), बन्धनं प्रसितिरित्यमरः। पश्य = विलोकय।

टिप्पणी—मूषिकमित्रेण = मूषिक एव मित्रं तेन (रूपकसमासः), मुक्त-बन्धनाः = मुक्तम् बन्धनं येषां ते (बहु०), जनेन, लघूनि, महान्ति, स्वजातीयानि

वा शतशः मित्राणि कर्तव्यानि, क्षुद्रेणापि, मित्रेण मूषिकेन, सर्वे कपोताः पाशबन्ध-नान्मोचिताः, इति पश्य । इति भावः ।

भावार्थः—जैसे कैसे (छोटे-बड़े जातिवाले, या विजातीय) सैंकड़ों मित्र बनाना चाहिए। देखो, एक ही मूषिक मित्र ने समस्त कबूतरों को जाल के बन्धन से मुक्त करा दिया ॥ ५३ ॥

अथ लघुपतनकनामा काकः सर्ववृत्तान्तदर्शी साश्चर्यम् इदमाह—'अहो हिरण्यक ! श्लाघ्योऽसि, अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीं कर्त्तुमिच्छामि, अतस्त्वं मां मैत्र्येणाऽनुग्रहीतुमर्हसि' एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकोऽपि विवराऽभ्यन्तरादाह—'कस्त्वम् ?' स ब्रूते–लघुपतनकनामा वायसोऽहम् । हिरण्यको विहस्याऽऽह—का त्वया सह मैत्री ?

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, सर्ववृत्तान्तदर्शी = चित्रग्रीवहिरण्यकयोर्जाल-मोचनरूपसर्ववृत्तान्तदर्शकः, लघुपतनकनामा = लघुपतनकाख्यः, वायसः = काकः, साश्चर्यम्, आश्चर्येण । सहितं यथा स्यात् तथा, इदम्, वक्ष्यमाणवचनम्, आह = उक्तवान् । अहो = आश्चर्यद्योतकमव्ययम्, हिरण्यक ! श्लाघ्यः = प्रशंनीयः, असि = भवसि, अतः = अस्मात् कारणात् , अहम् = लघुपतनकवायसः, त्वया = मूषिकेन, सह = साकम्, मैत्रीम् = सौहार्दम्, कर्तुम् = विधातुम्, इच्छामि = वाञ्छामि, अतः = अस्मात् हेतोः, त्वम् = भवान् , माम् = वायसमपि मैत्र्येण = मित्रभावेन, अनुग्रहीतुम् = अनुग्रहं कर्तुम्, अर्हसि = योग्योऽसि । मां मित्रं कृत्वा कृतकृत्यं कुरु इति भावः । एतत् = काकोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, हिरण्यकः=आखुः अपि, विवराऽभ्यन्तरात्=बिलमध्यतः, एव, आह=ब्रवीति । कस्त्वम्=को भवान् , सः = काकः, ब्रूते = गदति, लघपतनकनामा = पतन्नामकः, वायसोऽहम् = काक-जातीयः नाम्ना लघुपतनकः जात्या काकः इत्यर्थः । हिरण्यकः = आखुः, विहस्य = हास्यं कृत्वा, आह = ब्रूते, त्वया (काकेन), सह मैत्री = मित्रता, का = किंरूपा । त्वया वायसेन सह मैत्री न युक्तेत्यर्थः ॥

टिप्पणी—लघुपतनकनामा = लघुपतनकः नाम यस्य सः तथोक्तः (बहु०), सर्ववृत्तान्तदर्शी = सर्वश्चासौ वृत्तान्तः = दृश् + णिनिः (उपपदसमासः), साश्चर्यम् = आश्चर्येण सहितम् , तत् , (तुल्ययोग बहु०), विवराभ्यन्तरात् = विवरस्य अभ्यन्तरम् , तस्मात् , (ष० त०)।

भावार्थः—इसके बाद सब वृत्तान्त को देखने वाला लघुपतनक नाम का कौवा आश्चर्य पूर्वक इस तरह बोला–अहो हिरण्यक ! प्रशंसा करने लायक हो । इसलिये मैं (कौवा) भी तुम्हारे साथ मैत्री करना चाहता हूँ। इसलिए तुम मुझे मित्र भाव से

अनुग्रहीत करने योग्य हो। ऐसा सुन कर चूहा भी बिल के अन्दर से ही बोला-तुम कौन हो? कौवा कहता है-मैं लघुपतनक नाम का कौवा हूँ। हिरण्यक ने हँस कर कहा—तेरे साथ मित्रता कैसी? ॥ ५३ ॥

यतः—यद् येन युज्यते लोके बुधस्तत् तेन योजयेत्।
अहमन्नं भवान् भोक्ता कथं प्रीतिर्भविष्यति ॥ ५४ ॥

अन्वयः—लोके यद् येन युज्यते बुधः तत् तेन योजयेत्, अहम् अन्नम्, भवान् भोक्ता, प्रीतिः कथम् भविष्यति।

व्याख्या—लोके = भुवने, यत् = यः व्यक्तिविशेषः, येन = व्यक्तिविशेषेण, युज्यते = योक्तुमुचितो भवति। बुधः = प्राज्ञः, तत् = तं व्यक्तिविशेषम्, तेन = पूर्वोक्तेन, योजयेत् = संयोगं कारयेत्, अहम् = आखुः, अन्नम् = खाद्यवस्तु, भवान् = त्वम्, भोक्ता = भोजनकर्ता, तथा च आवयोः, भक्ष्यभक्षकयोः, प्रीतिः=सौहार्दम्, कथम् केन प्रकारेण, भविष्यति = संपत्स्यते। न कथमपीत्यर्थः।

टिप्पणी—लोके येन यस्य संसर्ग उचितो भवति बुद्धिमान् जनः तं तेन संयोजयेत्, न हि संसारे भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्दृष्टचरी, यतः अहम्, भक्ष्यः, भवान् भक्षकः। इति भावः।

भावार्थः—लोक में जो जिसके साथ जोड़ने लायक होता है, बुद्धिमान् जन उसी से उसको जोड़ता है। मैं (चूहा), अन्न हूँ (आपका भोजन हूँ), और आप (कौवा), खाने वाले हैं। तब कैसे प्रीति हो सकती है? अर्थात् कभी नहीं ॥५४॥

अपरञ्च—भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तेः कारणं मतम्।
शृगालात् पाशबद्धोऽसौ मृगः काकेन रक्षितः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः विपत्तेः कारणम्, मतम्, पाशबद्धः असौ मृगः काकेन शृगालात् रक्षितः।

व्याख्या—भक्ष्यभक्षकयोः = खाद्यखादकयोः प्रीतिः मैत्री, विपत्तेः = आपदः एव, कारणम् = हेतुः, मतम् = सम्मतम्, असौ=अयम्, पाशबद्धः=दामयन्त्रितः, मृगः= हरिणः, काकेन = वायसेन, रक्षितः = गोपितः।

टिप्पणी—भक्ष्यभक्षकयोः = भक्ष्यश्च भक्षकश्च, भक्ष्यभक्षकौ, तयोः (द्वन्द्वः), पाशबद्धः = पाशेन बद्धः पाशबद्धः (तृ० त०), हिंस्यहिंसकयोः प्रीति विपत्तेरेव कारणं भवति, रज्जुजालनद्धः असौ मृगः काकेन शृगालात् रक्षितः इति भावः।

भावार्थः—भक्ष्य और भक्षक की प्रीति विपत्ति मूलक है (विपत्ति का घर) है। जैसे शृगाल द्वारा जाल में फसाये गये मृग को कौवा ने बचा लिया ॥ ५५ ॥

वायसोऽब्रवीत्—कथमेतत्? हिरण्यकः—कथयति—

व्याख्या—वायसोऽब्रवीत् = काकोऽवदत्, कथमेतत् = केन प्रकारेण इदम्, हिरण्यकः = मूषिकः, कथयति = वदति ।

भाषार्थः—कौवा ने कहा—यह कैसे ? चूहा कहता है—

२. मृगजम्बुकयोः कथा ।

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानि । तस्यां चिरात् महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः । स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेनाऽवलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत्—'आः ! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि ? भवतु, विश्वासं तावदुत्पादयामि' इत्यालोच्य उपसृत्याऽब्रवीत्—'मित्र ! कुशलं ते ?' मृगेणोक्तम्—'कस्त्वम् ?' स ब्रूते—'क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम् । अत्राऽरण्ये बन्धुहीनो मृतवत् एकाकी निवसामि, इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुनः सबन्धुर्जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि, अधुना तवाऽनुचरेण मया सर्वथा भवितव्यमिति' । मृगेणोक्तम्—'एवमस्तु' ।

व्याख्या—मगधदेशे = तन्नामकजनपदे, चम्पकवती नाम = नाम्ना चम्पकवती, अरण्यानी = महत् अरण्यम्, अस्ति = वर्तते । तस्याम् = अरण्यान्याम्, चिरात् = बहुकालात्, महता = विपुलेन, स्नेहेन = प्रेम्णा, मृगकाकौ = हरिणवायसौ, निवसतः = निवासं कुरुतः । स च मृगः = पूर्वोक्तः हरिणः, स्वेच्छया = निजवाञ्छया, हृष्टपुष्टाङ्गः = पुलकितमांसपूर्णशरीरः, भ्राम्यन् = भ्रमणं कुर्वन्, केनचित् = येन केनापि, अपरिचितेन, शृगालेन = जम्बुकेन, अवलोकितः दृष्टः । तम् = मृगम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, शृगालः = जम्बुकः, अचिन्तयत् = विचारितवान् । आः = आश्चर्यम्, सुललितम् = अतिसुन्दरम्, एतन्मांसम् = हरिणामिषम्, कथम् = केन प्रकारेण, भक्षयामि = खादामि । भवतु = अस्तु, तावत् = प्राक्, विश्वासम् = विस्रम्भम्, उत्पादयामि = जनयामि, इति = इत्थम्, आलोच्य = विमृश्य, उपसृत्य = समीपं गत्वा, अब्रवीत् = अवदत् । मित्र ! = सखे ! ते = तव, मृगस्य, कुशलम् = अनामयम्—'वर्तते ?' । मृगेण = हरिणेन, उक्तम् = कथितम्, त्वम् = प्रश्नकर्ता, कः = किन्नामकः जातिश्च का । सः = शृगालः, ब्रूते = ब्रवीति, नाम्ना क्षुद्रबुद्धिः, जात्या जम्बुकः अहम् । अत्रारण्ये = अस्मिन् महारण्ये, निविडवने, बन्धुहीनः = बान्धवरहितः, मृतवत् = पञ्चत्वं प्राप्त इव, एकाकी = असहायः, निवसामि = निवासं करोमि, इदानीम् = सम्प्रति, त्वाम् = शृगालम्, मित्रम् = सुहृदम्, आसाद्य = प्राप्य, पुनः = भूयः, सबन्धुः = बान्धवसहितः, जीवलोकम् = मित्रलाभप्रयुक्तसुखस्थितिम्; संसारम्, प्रविष्टः = कृतप्रवेशः, अस्मि = भवामि; अधुना = इदानीम्, तव = मृगस्य, अनुचरेण = सेवकेन,

सहचरेण वा, मया = शृङ्गालेन, भवितव्यम् = भवनीयम्, इति । मृगेण = हरिणेन, उक्तम् = अभिहितम् , एवम् = इत्थमेव, अस्तु = भवतु ॥

टिप्पणी—अरण्यानी=महदरण्यमरण्यानी, अरण्यशब्दात् , महत्वेऽर्थे, आनुक्, ङीष् च, मृगकाकौ = मृगश्च काकश्च मृगकाकौ (द्वन्द्वः), स्वेच्छया = स्वस्य, इच्छा, तया, (ष० त०), हृष्टपुष्टाङ्गः=हृष्टानि, पुष्टानि अङ्गानि यस्य सः (बहु०), क्षुद्रबुद्धिः नाम यस्य, सः क्षुद्रबुद्धिनामा (बहु०), बन्धुहीनः = बन्धुना हीनः, बन्धुहीनः (तृ० त०), मृतेन तुल्यं मृतवत् , सबन्धुः = बन्धुना सहितः, (तुल्ययोगे बहु०), जीवलोकम् = जीवानां लोकः = जीवलोकस्तम् , (ष० त०) ।

भाषार्थः—मगध देश में चम्पकवती नाम का एक बहुत बड़ा जंगल है। उसमें बहुत दिनों से, मृग और कौवा, अतिस्नेह पूर्वक निवास करते थे। एक दिन स्वेच्छा से घूमते हुए, हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले उस मृग को किसी श्रृगाल (गीदड़) ने देखा। उसे देखकर श्रृगाल ने विचार किया कि इसका अतिसुन्दर (सुस्वादु) माँस मैं कैसे खाँऊ। अच्छा, तो पहले विश्वास पैदा करूं। यह विचार करके उसके समीप जाकर बोला—हे मित्र, आपका कुशल तो है ? मृग ने कहा—आप कौन हैं ? वह (श्रृगाल) कहता है—'मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का श्रृगाल हूँ। इस वन में बन्धुहीन होकर मृतक के समान अकेला रहता हूँ। आज आप जैसे मित्र को पाकर (मैं) पुनः बन्धुओं के साथ इस संसार में प्रविष्ट हुआ हूँ। आज से आपका दास बन कर सदा आपके साथ रहूं'। मृग ने कहा—अच्छा, ऐसा ही हो।

ततः पश्चादस्तङ्गते सवितरि भगवति मरीचिमालिनि तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ ! तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्र निवसति, तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत्—'सखे चित्राङ्ग ! कोऽयं द्वितीयः ?' मृगो ब्रूते—'जम्बुकोऽयमस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः' । काको ब्रूते—'मित्र ! अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता, तन्न भद्रमाचरितम्' ।

व्याख्या—ततः = मृगवासभूमिगमनानन्तरम्, मरीचिमालिनि = किरणपङ्क्तियुक्ते, भगवति, ऐश्वर्यादिषड्गुणान्विते, सवितरि = सूर्ये, अस्तङ्गते = अस्ताचलं प्राप्ते (सति), तौ = मृगकाकौ, मृगस्य = हरिणस्य, वासभूमिम् = निवासस्थानम्, गतौ = प्राप्तौ, तत्र = तस्यां वासभूमौ, चम्पकवृक्षशाखायाम् = चम्पकद्रुमविटपे, मृगस्य = हरिणस्य, चिरमित्रम् = प्राचीनसखा, सुबुद्धिनामा = तन्नामधेयः, काकः = वायसः, निवसति = निवासं करोति । तौ = मृगशृगालौ, दृष्ट्वा = निरीक्ष्य, काकः = वायसः, अवदत् = अब्रवीत् । सखे चित्राङ्ग ! अयम् = एषः, द्वितीयः = स्वङ्गिनः; कः = किन्नामधेयः, किंजातीयः । मृगः = हरिणः, ब्रूते = कथयति । अयम् =

एषः, जम्बुकः = शृगालः, अस्मत् सख्यम् = अस्माकं मित्रभावम्, इच्छन्=वाञ्छन्, आगतः = समायातः। काकः = वायसः, ब्रूते = वदति, मित्र ! अकस्मात् = सहसा, आगन्तुकेन = अपरिचितेन, 'सह', मैत्री = मित्रभावः, नयुक्ता = नोचिता, तत् = तस्माद्धेतोः, भद्रम् = शोभनम्, नाचरितम् = नानुष्ठितम् ॥

टिप्पणी—मरीचिमालिनि = मरीचीनां माला सा, विद्यते यस्य सः, मरीचिमाली, तस्मिन् (ष० त०), पश्चात्, इनिः। वासभूमिम् = वासस्य भूमिः, वासभूमिः, ताम् (ष० त०), चम्पकवृक्षशाखायाम्=चम्पकस्य वृक्षः (ष० त०), तस्य शाखा (ष० त०), तस्याम्, सुबुद्धिः नाम यस्य सः सुबुद्धिनामा (बहु०), अस्मत्सख्यम् = अस्माकं सख्यम्, तत्, (ष० त०)।

भाषार्थ—इसके बाद वे दोनों सूर्य अस्त होने पर मृग के निवास स्थान पर गए। वहाँ चम्पक-वृक्ष की शाखा पर, मृग का पुराना मित्र सुबुद्धि नाम का कौवा रहता था। उन दोनों को देख कर कौवा ने कहा—हे मित्र ! चित्राङ्ग ! यह दूसरा कौन है ? मृग कहता है—यह क्षुद्रबुद्धि नाम का शृगाल है, हम लोगों से मित्रता करने की इच्छा से आया है। तब कौवा ने कहा—अकस्मात् आये हुए के साथ मित्रता कर लेना ठीक नहीं है। यह तुमने उचित नहीं किया। क्योंकि कहा भी है—

तथा चोक्तम्—अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—अज्ञातकुलशीलस्य, कस्यचित् वासः न देयः—हि, मार्जारस्य दोषेण जरद्गवः गृध्रः हतः।

व्याख्या—अज्ञातकुलशीलस्य = अविदितवंशस्वभावस्य, कस्यचित् = यस्य कस्यापि, अपरिचितस्य, वासः = स्वगृहे, आश्रयः, न देयः = दातुमनर्हः। हि=यतः, मार्जारस्य = बिडालस्य, दोषेण = अवगुणेन, अपराधेन, जरद्गवः = एतन्नामकः दृष्टिहीनः वृद्धः, गृध्रः = दाक्षाय्यः, हतः = व्यापादितः।

टिप्पणी—अज्ञातकुलशीलस्य = कुलञ्च शीलञ्च, कुलशीले (द्वन्द्वः), न ज्ञाते, अज्ञाते, (नञ् त०), अज्ञाते कुलशीले यस्य सः—तस्य (बहु०), जरद्गवः = जरत्यौ, गावौ दृशौ, यस्य सः (बहु०)।

भाषार्थः—अपरिचित कुल तथा स्वभाव वाले व्यक्ति को आश्रय नहीं देना चाहिये। क्योंकि बिलाव के अपराध से जरद्गव नाम का गिद्ध मारा गया ॥ ५६ ॥

तौ आहतुः—'कथमेतत् ?' काकः—कथयति।

व्याख्या—तौ = मृगशृगालौ, आहतुः = कथयतः, काकः = वायसः = काकः, कथयति = वदति ॥

भाषार्थः—वे दोनों बोले—यह कैसे ? कौवा कहता है—

३. गृध्रबिडालयोः कथा ।

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटीवृक्षः। तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकात् गलितनखनयनो जरद्गवनामा गृध्रः प्रतिवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाऽऽहारात् किञ्चित् किञ्चिदुद्धृत्य तस्मै ददति, तेनाऽसौ जीवति, तेषां शावकरक्षां च करोति। अथ कदाचित् दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्राऽऽगतः। ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षिशावकैर्भयार्त्तैः कोलाहलः कृतः। तच्छ्रुत्वा जरद्गवेन उक्तम्—कोऽयमायाति ? दीर्घकर्णो गृध्रमवलोक्य सभयमाह—'हा ! हतोऽस्मि' यतोऽयं मां व्यापादयिष्यति ।

व्याख्या—भागीरथीतीरे = गङ्गातटे, गृध्रकूटनाम्नि = उक्तनामके, पर्वते = गिरौ, महापर्कटीवृक्षः = विशालप्लक्षतरुः, अस्ति = वर्तते । तस्य = पूर्वोक्तद्रुमस्य, कोटरे= निष्कुहे, दैवदुर्विपाकात् = भाग्यप्रतिकूलत्वात्, गलितनखनयनः=विनष्टकरजनेत्रः, जरद्गवनामा = उक्ताख्यः, गृध्रः = दाक्षाय्यः, प्रतिवसति = निवासं करोति । अथ= अनन्तरम्, तज्जीवनाय = गृध्रप्राणधारणाय, तद्वृक्षवासिनः=पर्कटीतरुनिवासिनः, पक्षिणः = विहगाः, दयया = करुणया, स्वाहारात् = आत्मखाद्यपदार्थात्, किञ्चित् २= ईषदीषत्, उद्धृत्य = निष्कास्य, ददति = वितरन्ति, तेन = पक्षिदत्तपदार्थेन, जीवति = प्राणान् धारयति, असौ = जरद्गवः। अथ = अनन्तरम्, कदाचित्= जातु, दीर्घकर्णनामा = उक्ताभिधः, मार्जारः = बिडालः, पक्षिशावकान् = विहङ्गम-शिशून्, भक्षितुम् = खादितुम्, तत्र = तस्मिन् स्थाने, आगतः = समायातः। ततः= तदनन्तरम्, आयान्तम् = आगच्छन्तम्, तम् = बिडालम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, भयार्तैः = भीतिपीडितैः, पक्षिशावकैः = विहगशिशुभिः, कोलाहलः = कलकलः, कृतः = विहितः । तत् = कोलाहलम्, श्रुत्वा = निशम्य, जरद्गवेन = गृध्रेण, उक्तम् = कथितम्, अयम् = एषः, कः = किन्नामकः-आयाति = आगच्छति, दीर्घ-कर्णः = तदाख्यो बिडालः, गृध्रम् = जरद्गवम्, अवलोक्य = समीक्ष्य, सभयम्= त्राससहितम्, आह = उक्तवान् । हा हतोऽस्मि = अहह, हतः = व्यापादितः अस्मि= भवामि, यतः = यस्माद्धेतोः, अयम् = एषः गृध्रः, माम् = बिडालम्, व्यापाद-यिष्यति = मारयिष्यति ॥

व्याख्या—भागीरथीतीरे = भगीरथात् आगता, भागीरथी-भगीरथ + अण् + ङीप्, तस्याः तीरम्, तस्मिन् (ष० त०), गृध्रकूटनाम्नि = गृध्रकूटः नाम यस्य, सस्तस्मिन् (बहु०), पर्कट्याः वृक्षः, पर्कटीवृक्षः (ष० त०), महाँश्चासौ पर्कटी-

वृक्षः, महापर्कटीवृक्षस्तस्मिन् (क० धा०), दैवदुर्विपाकात् = दैवस्य दुर्विपाकस्तस्मात्, (ष० त०) गलितनखनयनः = नखाश्च, नयनानि च, एषां समाहारः नखनयनम् (समाहारद्वन्द्वः), गलितं नखनयनं यस्य सः (बहु०)। जरद्गवः नाम यस्य सः (बहु०), तज्जीवनाय = तस्य जीवनम्, तज्जीवनम्, तस्मै (ष० त०), तद्वृक्षवासिनः = सश्चासौ वृक्षः तद्वृक्षः (क० धा०), तस्मिन् वसन्ति तच्छीलाः तद्वृक्ष + वस् + णिनिः (उपपदसमासः), स्वाहारात् = स्वस्य, आहारस्तस्मात् (ष० त०), तेषाम् = पक्षिणाम्, शावकरक्षाम् = शावकानां रक्षा, ताम्, (ष० त०), करोति = विदधाति। दीर्घकर्णनामा = दीर्घौ कर्णौ यस्य स दीर्घकर्णः, सः नाम यस्य सः दीर्घकर्णनामा (बहु०), पक्षिशावकान् = पक्षिणां शावकास्तान् (ष० त०), पक्षिणां शावकास्तैः (ष० त०), भयार्तैः = भयेन आर्ताः, तैः (तृ० त०), सभयम् = भयेन सह वर्तमानम् (तुल्ययोगबहु०)।

भावार्थः—गङ्गाजी के तट पर गृध्रकूट नाम के पर्वत के ऊपर एक विशाल पाकर का वृक्ष है। उसके खोंडर में पूर्व जन्म के किये हुए कर्मों के खोटे परिणाम से नेत्र तथा नाखून जिसके गल चुके थे ऐसा जरद्गवनामक गिद्ध रहता था। उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षी अपने आहार से थोड़ा-थोड़ा निकाल कर उसको जीने के लिये देते थे। उसी से यह जीता था और उनके बच्चों की रक्षा करता था। इसके बाद कभी वहाँ दीर्घकर्ण नाम का बिलाव आया, उसे आता हुआ देखकर पक्षियों के बच्चे डर गये तथा जोर जोर से बोलकर शोर करने लगे, उस कोलाहल को सुनकर, जरद्गव ने कहा—यह कौन आ रहा है? दीर्घकर्ण ने गिद्ध को देखकर भयभीत होकर (मन में) कहा—हाय! मैं मारा गया। क्योंकि यह मुझे मार डालेगा।

अथवा—तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथोचितम्॥ ५७॥

अन्वयः—यावत् भयम् अनागतम् (अस्ति) तावत् भयस्य भेतव्यम्, तु भयम् आगतम् वीक्ष्य नरः यथोचितम् कुर्यात्।

व्याख्या—यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, भयम् = भीतिः, अनागतम् = उपस्थितं न अस्ति, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम् भयस्य = भयकारणात्, (सम्बन्धविवक्षया षष्ठी), भेतव्यम् = त्रसितव्यम्, जनैरितिशेषः। तु = किन्तु भयम् = भीतिम् = आगतम् = उपस्थितम्, वीक्ष्य = विलोक्य, नरः = पुरुषः, यथोचितम् = यथायोग्यम्, कुर्यात् = विदध्यात्।

टिप्पणी—यथोचितम् = उचितमनतिक्रम्य इति यथोचितम् (पदार्थानतिवृत्ति में अव्ययीभावः समासः), अनागतम् = न आगतम् (नञ्० त०), भीति-

कारणात् तावदेव भीतिः कार्या यावत् सा नोपस्थिता भवेत्, भीतावुपस्थितौ सत्याम्, नरस्तन्निवारणाय, समुचितोपायं कुर्यात् इति भावः।

भाषार्थः—जब तक भय नहीं आया है, तब तक भय से डरना चाहिए, किन्तु भय को आया हुआ देखकर मनुष्य (उसके निवारण के लिए) यथोचित करे ॥ ५७ ॥

अधुनाऽतिसन्निधाने पलायितुमक्षमः। तद्यथा भवितव्यं तथा भवतु, तावत् विश्वासमुत्पाद्याऽस्य समीपमुपगच्छामि, इत्यालोच्य तमुपसृत्याब्रवीत्–'आर्य! त्वाम् अभिवन्दे'। गृध्रोऽवदत्–'कस्त्वम्?' सोऽवदत्–'मार्जारोऽहम्'। गृध्रो ब्रूते—'दूरम् अपसर, नो चेत् हन्तव्योऽसि मया'। मार्जारोऽवदत्–'श्रूयतां मद्वचनम्, ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्यः।'

व्याख्या—अधुना, इदानीम्, अतिसन्निधाने = अतिनिकटे, पलायितुम्=पलाय्य गन्तुम्, अक्षमः = अशक्तः, अस्मि। तत् = तस्मात्, असमर्थत्वात्, हेतोः, यथा = येन प्रकारेण, भवितव्यम् = भवनीयम्, तथा = तेन प्रकारेण प्रकारेण, भवतु = अस्तु, मरणं जीवनं वा। तावत् = प्रथमम्, विश्वासम् = विश्रम्भम्, उत्पाद्य = जनयित्वा, अस्य = जरद्गवस्य, समीपम् = निकटम्, उपगच्छामि = यामि, इति = एवम्, आलोच्य = विमृश्य, तम् = गृध्रम्, उपसृत्य = समीपं गत्वा, अब्रवीत् = अवदत्, आर्य! = मान्यवर! त्वाम् = भवन्तम्, अभिवन्दे = अभिवादनं करोमि, गृध्रः = दाशाय्यः, अवदत् = अगदत्, त्वं कः = नाम्ना जात्या वा को भवान्। सोऽवदत् = मार्जारोऽकथयत्, मार्जारोऽहम्, अहम्, विडालोऽस्मि, गृध्रो ब्रूते–जरद्गवः कथयति। दूरम् = विप्रकृष्टम्, अपसर = अपगच्छ, नो चेत् = यदि न गच्छसि, तर्हि, मया = गृध्रेण, हन्तव्यः = वध्यः, असि = भवसि। मार्जार = विडालः, अवदत् = अब्रवीत्, मद्वचनम् = मम वाक्यं वक्ष्यमाणम्, श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्। ततः = तदनन्तरम्, यदि = चेत्, अहम्, मार्जारः, वध्यः = वधार्हः, तदा = तस्मिन् समये, हन्तव्यः हननीयः। अस्मीति शेषः।

टिप्पणी—अतिसन्निधाने = अत्यन्तं सन्निधानम्, तस्मिन् (गतिसमासः), अक्षमः = नक्षमः अक्षमः (नञ्, त०)।

भाषार्थः—'इस समय अति निकट में होने से भागने में असमर्थ हूँ। इसलिये जैसा होनहार है, वैसा होवे। तब तक विश्वास उत्पन्न करके इसके समीप जाता हूँ।' ऐसा विचार करके और उसके समीप जाकर वह बोला—'आर्य! आपको प्रणाम करता हूँ।' गीध ने कहा—'तू कौन है?' उसने कहा—'मैं बिलाव हूँ।' गीध कहता है—दूर हटो, नहीं तो, मुझ से मारे जाओगे।' बिलाव ने कहा—'मेरी बात सुनिये, इसके बाद यदि मैं मारने योग्य होऊँ, तो मार दीजियेगा।'

यतः—जातिमात्रेण किं कश्चिद् वध्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत् ॥ ५८ ॥

अन्वयः—क्वचित् कश्चित् जातिमात्रेण वध्यते पूज्यते किम् ? व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः अथवा पूज्यो भवेत् ॥

व्याख्या—क्वचित् = कुत्रचित् , कश्चित् = कोपि व्यक्ति विशेषः, जातिमात्रेण = ब्राह्मणादि जातिमात्रेण, मार्जारजातिमात्रेण वा इति शेषः, वध्यते = हन्यते, पूज्यते = अर्च्यते, किम् ? व्यवहारम् = उत्तमाधमव्यवहारम्, आचारम् वा, परिज्ञाय = परितः ज्ञात्वा, वध्यः = हन्तुं योग्यः, अथवा पूज्यः = पूजनीयः, सम्माननीय भवेत् = स्यात् ॥

टिप्पणी—जातिमात्रेण = जातिरेव जातिमात्रं, तेन (रूपकसमासः), जन्मगोत्रादि मात्रेण इत्यर्थः । व्यवहारं = वि + अव + हृ + घञ् । परिज्ञाय = परि + ज्ञा + क्त्वा (ल्यप्), परितः सर्वतोभावेन ज्ञात्वा इत्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ।

भावार्थः—कहीं कोई व्यक्ति जातिमात्र से मारा जाता है या पूजा जाता है क्या ? व्यवहार जानकर (अच्छी तरह परख कर वह) वध्य अथवा पूज्य होवे ॥ ५८ ॥

गृध्रो ब्रूते—'ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि ?' सोऽवदत्—'अहमत्र गङ्गातीरे नित्यस्नायी निरामिषाशी ब्रह्मचारी चान्द्रायणव्रतमाचरंस्तिष्ठामि । युष्मान् 'धर्मज्ञानरताः प्रेमविश्वासभूमयः' इति पक्षिणः सर्वे सर्वदा ममाग्रे प्रस्तुवन्ति, अतो भवद्भ्यो विद्यावयोवृद्धेभ्यो धर्मं श्रोतुमिहागतः । भवन्तश्चैतादृशा धर्मज्ञाः, यन्मामतिथिं हन्तुमुद्यताः ?' गृहस्थधर्मश्च एषः—

व्याख्या—गृध्रः = दाक्षाय्यः, जरद्गवः ब्रूते = कथयति— किमर्थम् = कस्मप्रयोजनाय, आगतः = आयातः, असि = भवसि ? सः = दीर्घकर्णः विडालः, आह= ब्रवीति, अहम् = दीर्घकर्णः, अत्र = अस्मिन् , गङ्गातीरे = भागीरथीतटे, नित्यस्नायी = प्रतिदिनस्नानशीलः, निरामिषाशी = त्यक्तमांसभोजनः । ब्रह्मचारी = ब्रह्मचर्यव्रततत्परः, चान्द्रायणव्रतम् = चान्द्रायणनामकं व्रतम्, आचरन् = कुर्वन् , तिष्ठामि = निवसामि, युष्मान् = भवतः, धर्मज्ञानरताः = सुकृतबोधपराः, प्रेमविश्वासभूमयः = स्नेहविस्रम्भस्थानानि, इति = इत्थम्, पक्षिणः = विहगाः, सर्वे = समस्ताः, सर्वदा = सततम्, मम=दीर्घकर्णस्य, अग्रे = पुरस्तात् , प्रस्तुवन्ति = प्रशंसन्ति, अतः = अस्माद्धेतोः, वयोविद्यावृद्धेभ्यः = अवस्थाज्ञानाधिक्ययुक्तेभ्यः, भवद्भ्यः = युष्मत् , धर्मम् = स्मृतिशास्त्रवार्ताम्, श्रोतुम् = आकर्णयितुम्, इह = अत्र, आगतः = आयातः । भवन्तः = यूयम्, एतादृशाः = ईदृशाः, धर्मज्ञाः = स्मृतिशास्त्रवेत्तारः, यन्माम् = दीर्घकर्णम्, अतिथिम् = आगन्तुकम्, हन्तुम् = वधं

कर्तुम्, उद्यताः = सन्नद्धाः, गृहस्थधर्मः = द्वितीयाश्रमधर्मः, एषः = अयम्, 'अस्तीति' शेषः।

टिप्पणी—किमर्थम् = कस्मै, इदम्, (च० त०) क्रि० वि०। गङ्गायाः तीरम् तस्मिन्, (ष० त०), नित्यस्नायी = नित्यं स्नातीति तच्छीलः, नित्य+स्ना+णिनिः+युक् (उपपदसमासः)। निरामिषाशी = आमिषान् निर्गतम्, निरामिषम्, तत् अश्नाति, तच्छीलः, निर [illegible] (उपपदस०), ब्रह्म चरतीति तच्छीलः ब्रह्म+चर+णिनिः (उपपदसमासः)। चान्द्रायणं च तत् व्रतम्, चान्द्रायण-व्रतम्, (क० धा०), धर्मज्ञानरताः = धर्मश्च ज्ञानञ्च, धर्मज्ञाने, तयोः रताः (द्वन्द्व-गर्भक, सप्तमी तत्पुरुषः), प्रेमविश्वासभूमयः = प्रेमा च विश्वासश्च, प्रेमविश्वासौ, (द्वन्द्वः), तयोः भूमयः, (ष० त०), विद्यावयोवृद्धेभ्यः = विद्या च वयश्च विद्या-वयसी (द्वन्द्वः), ताभ्यां वृद्धाः (तृ० त०), धर्मं जानन्तीति धर्मज्ञाः (उपपद-समा०), गृहे तिष्ठन्तीति गृहस्थाः (उपपदसमासः), गृहस्थानां धर्मः, गृहस्थ धर्मः। (ष० त०)।

भावार्थ—गिद्ध बोलता है—'बोलो, किस लिये आए हो?' वह बिलाव बोला—मैं यहाँ गंगाजी के तीर पर प्रति दिन स्नान करने वाला, निरामिष (मांस रहित) आहार करने वाला, ब्रह्मचारी (होकर) चान्द्रायण व्रत करता हुआ रहता हूँ। आपको 'धर्म और ज्ञान में लवलीन, प्रेम तथा विश्वास का पात्र' ऐसा सब पक्षी हमेशा मेरे आगे प्रशंसा करते हैं। अतः विद्या (ज्ञान) और वय (उम्र) में वृद्ध आप से धर्म सुनने के लिए यहां आया। आप तो ऐसे धर्मज्ञ हैं कि मुझ अतिथि को मारने के लिए तैयार हो गए। गृहस्थ धर्म यह है—

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगतांच्छायां नोपसंहरते द्रुमः॥ ५९॥

अन्वयः—गृहम् आगते, अरौ, अपि, उचितम्, आतिथ्यम्, कार्यम्। द्रुमः छेत्तुः पार्श्वगतांछायाम्, न उपसंहरते॥

व्याख्या—गृहम् = गेहम्, आगते = आयाते, अरौ = शत्रौ, अपि, उचितम्, योग्यम्, आतिथ्यम् = अतिसन्मानम्, कार्यम् = कर्तव्यम्, द्रुमः = तरुः, छेत्तुः = छेदनकर्तुः, पार्श्वगताम्, छायाम्, निकटप्राप्ताम्, छायाम्, न उपसंहरते = न आकर्षति॥

टिप्पणी—आतिथ्यम् = अतिथेर्भावः आतिथ्यम्, अतिथि+ष्यः। पार्श्वंगता ताम्, पार्श्वगताम् (द्वि० त०), गृहमागतोऽरिरपि, अतिथिसत्कारेण माननीयो भवति। वृक्षोऽपि स्वशाखाछेदनकर्तुः समीपविद्यमानां स्वछायां नापवारयति, इति भावः।

भाषार्थः—शत्रु भी घर पर आ जाय तो उचित अतिथि-सत्कार करना चाहिये, जैसे वृक्ष, (जड़) काटने वाले के ऊपर पड़ने वाली अपनी छाया को नहीं हटाता है ॥

किञ्च—यदि अन्नं नास्ति तदा सुप्रीतेनाऽपि वचसा तावदतिथिः पूज्य एव ।

व्याख्या—यदि = चेत्, अन्नम् = अदयपदार्थः, नास्ति = न विद्यते, तदा = तस्मिन् काले, सुप्रीतेन = स्नेहसिक्तवाक्येन अपि, अतिथिः = आगन्तुकः, पूज्यः = सत्करणीय, एव, अस्तीति शेषः ।

भाषार्थः—यदि (घर में) अन्न नहीं हो तब भी प्रीतिपूर्ण वचनों से तब तक अतिथि सत्कार करने योग्य ही है ॥

तथा चोक्तम्—तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ६० ॥

अन्वयः—तृणानि, भूमिः, उदकम्, चतुर्थी सूनृता वाक् च, एतानि, सतां गेहे कदाचन न उच्छिद्यन्ते ॥

व्याख्या—तृणानि = तृणरचितासनानि, भूमिः = उपवेशनस्थानम्, उदकम् = पादादिप्रक्षालनार्थ जलम्, चतुर्थी = तुरीया, सूनृता = सत्यप्रिया, वाक् = वाणी च एतानि = इमानि, सताम् = सज्जनानाम्, गेहे = गृहेः, कदाचन = जातुचित्, न उच्छिद्यन्ते, न लुप्यन्ते ॥

टिप्पणी—आसनोपवेशस्थानं पादप्रक्षालनार्थं जलं सत्यं प्रियं वचनं एतत् चतुष्टयं सज्जनानां गृहे सदा वर्तन्ते, इति भावः ।

भाषार्थः—तृणों का आसन, बैठने के लिये भूमि, पादप्रक्षालन के लिये पानी और चौथी सत्य तथा प्रिय वाणी ये सभी चीजें सज्जनों के घर में कभी भी नहीं उच्छिन्न होती हैं अर्थात् सदा विद्यमान् रहती हैं ॥ ६० ॥

अन्यच्च—बालो वा यदि वृद्धो युवा वा गृहमागतः ।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—गृहम्, आगतः बालः वा, वृद्धः वा, युवा वा तस्य पूजा विधातव्या, अभ्यागतः सर्वस्य गुरुः 'अस्ति' ।

व्याख्या—गृहम् = गेहम्, आगतः = आयातः, बालः = कुमारः, वा = अथवा; वृद्धः = स्थविरः, युवा = यौवनावस्थो वा, तस्य = अतिथेः, पूजा = अपचितिः, विधातव्या = कर्तव्याः, अभ्यागतः = अतिथिः, सर्वस्य = अखिलजनस्य, गुरुः = पूज्यः । अस्तीतिशेषः ।

टिप्पणी—बालवृद्धयुवास्वन्यतमोऽप्यतिथिः सर्वैः सत्करणीयः । अतिथेः सर्वेषां गुरुत्वात्, इति भावः ।

भाषार्थः—बालक हो या वृद्ध हो अथवा युवा (अतिथि हो) अपने घर में आया हो तो उसकी पूजा करनी चाहिए क्योंकि अभ्यागत (अतिथि) सभी का गुरु (पूजनीय) होता है ॥ ६१ ॥

अपरञ्च—निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—साधवः निर्गुणेषु, अपि सत्त्वेषु, दयाम् कुर्वन्ति । हि चन्द्रः चाण्डाल-वेश्मनः ज्योत्स्नाम् न संहरते ॥

व्याख्या—साधवः = परकार्यसाधकाः निर्गुणेषु = गुणरहितेषु, अपि, दयाम् = कृपाम्, कुर्वन्ति = विदधति, हि = यतः, चन्द्रः = विधुः, चाण्डालवेश्मनः = श्वपचादिगृहात्, ज्योत्स्नाम् = चन्द्रिकाम्, न संहरते = नापवारयति ।

टिप्पणी—निर्गुणेषु = निर्गताः गुणाः येभ्यस्ते निर्गुणास्तेषु (बहु०), साधवः= साध्नुवन्ति परकार्यम् ते साधवः, चाण्डालवेश्मनः = चाण्डालस्य वेश्म, तस्मात्, (ष० त०) 'वेश्म सद्मनिकेतनम्', इत्यमरः । चन्द्रिकाकौमुदी ज्योत्स्ना, इति चामरः । सज्जना गुणहीनेष्वपि जीवेषु दयां कुर्वन्ति, चन्द्रः स्वचन्द्रिकया, अन्येषां गृहाणीव, श्वपचगृहमपि प्रकाशयति, इति भावः ।

भाषार्थः—सज्जन निर्गुण (गुण हीनों) पर भी दया करते हैं। क्योंकि चन्द्रमा अपनी चाँदनी को चाण्डाल के घर से लौटाता नहीं है ॥ ६२ ॥

अन्यच्च—अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ ६३ ॥

अन्वयः—यस्य गृहात् अतिथिः भग्नाशः (सन्) प्रतिनिवर्तते, स तस्मै दुष्कृतम् दत्त्वा पुण्यम् आदाय गच्छति ॥

व्याख्या—यस्य=अतिसत्कारमकुर्वाणस्य जनस्य, गृहात् = गेहात्, भग्नाशः= विनष्टाभिलाषः, प्रतिनिवर्तते = व्याघोटते, सः = अतिथिः, तस्मै = गृहस्थाय, दुष्कृतम् = पापम् (आत्मनीनमिति शेषः), दत्त्वा = वितीर्य, धर्मम् = सुकृतम्, (गृहस्थस्येति शेषः), आदाय = गृहीत्वा, गच्छति = याति ।

टिप्पणी—भग्नाशः = भग्ना आशा यस्य सः भग्नाशः (बहु०), यस्य गृहस्थस्य गृहात्, अभ्यागतः आशां त्यक्त्वा प्रतिनिवृत्तो भवति । सोऽतिथिः तस्मै गृहस्थाय स्वपापं दत्त्वा तस्य पुण्यमादाय गच्छति, इति भावः ।

भाषार्थः—जिस (गृहस्थ) के घर से अतिथि निराश होकर लौटता है तब वह (अतिथि) अपना पाप उस गृहस्थ को देकर तथा उसके पुण्य को लेकर चला जाता है ॥ ६३ ॥

अन्यच्च—उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥ ६४ ॥

अन्वयः—उत्तमस्य अपि वर्णस्य गृहम् आगतः नीचः अपि यथायोग्यम् पूजनीयः, (यतः) अतिथिः सर्वदेवमयः (भवति)।

व्याख्या—उत्तमस्य=ब्राह्मणादेः, वर्णस्य = जातेः, अपि, गृहम्=गेहम्, आगतः= आयातः नीचोऽपि = हीनोऽपि 'जनः, यथायोग्यम् = योग्यतानुसारम्, पूजनीयः = सम्मान्यः (भवति), अतिथिः = आगन्तुकः, सर्वदेवमयः = सकलदेवतारूपः । अतिथिपूजा, सर्वदेवपूजा, इति यावत् ।

टिप्पणी—यथायोग्यम्=योग्यमनतिक्रम्य इति, यथायोग्यम् (अव्ययीभावः), सर्वदेवमयः = सर्वश्चासौ देवः सर्वदेवः (क० धा०), प्रचुरः सर्वदेवः सर्वदेवमयः, सर्वदेव+मयट् । उत्कृष्टस्यापि वर्णस्य गृहम् आगतः अतिथिरूपेण नीचोपि= निकृष्टोऽपि योग्यतानुसारम् सत्करणीयः । अतिथेः सर्वदेवमयत्वादिति भावः ।

भावार्थः—उत्तम वर्ण (ब्राह्मण वर्ण) के घर में (अतिथि रूप से) आया हुआ नीच (शूद्र) भी यथायोग्य पूजनीय है; क्योंकि अतिथि समस्त देवताओं का स्वरूप है ॥ ६४ ॥

गृध्रोऽवदत्—'मार्जारो हि मांसरुचिः, पक्षिशावकाश्च अत्र निवसन्ति, तेनाऽहमेवं ब्रवीमि'। तच्छ्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति, ब्रूते च—मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चन्द्रायणम् अध्यवसितम्, यतः परस्परं विवदमानानामपि धर्मशास्त्राणाम्—'अहिंसा परमो धर्मः—' इत्यत्रैकमत्यम्'।

व्याख्या—गृध्रः = जरद्गवः, अवदत् = अब्रवीत् ; मार्जारः = विडालः, मांसरुचिः = आमिषाभिलाषः, पक्षिशावकाः = खगशिशवः, अत्र = अस्मिन् स्थले, निवसन्ति = निवासं कुर्वन्तिः, तेन = हेतुना, अहम् = जरद्गवः, एवम् = इत्थम्, ब्रवीमि = वदामि । तत् = गृध्रोक्तम्, श्रुत्वा = निशम्य, भूमिम् = धरातलम्, स्पृष्ट्वा = आमृश्य, कर्णौ = श्रोत्रे, स्पृशति = स्पर्शम् करोति, मार्जारः = विडालः । ब्रूते च—वदति च । वीतरागेण = त्यक्तविषयसङ्गेन, मया = दीर्घकर्णेन, इदम् = एतत् , दुष्करम् = कष्टसाध्यम्, चान्द्रायणम् = एतन्नामकम्, व्रतम् = नियमः, अध्यवसितम् = अनुष्ठितम् । यतः=कारणात् , परस्परम् = मिथः, विवदमानानाम्= विवादं कुर्वताम्, धर्मशास्त्राणाम् = स्मृतिग्रन्थानाम्—अहिंसा = हिंसाभावः, परमः= उत्कृष्टः धर्मः, पुण्यजनकाचारविशेषः, इत्यत्र = उक्तसिद्धान्ते, ऐकमत्यम् = न विरोधः ।

टिप्पणी—मांसरुचिः = मांसेरुचिर्यस्य सः मांसरुचिः (व्यधिकरणबहु०); पक्षिशावकाः = पक्षिणां शावकाः ते (ष० त०), धर्मशास्त्रम् = धर्मस्य शास्त्रम्, (ष० त०), वीतरागेण = वीतः रागः, यस्मात् , सः तेन (बहु०), न हिंसा, अहिंसा (नञ् त०), ऐकमत्यम् = एकामतिर्येषां ते, एकमतयः, तेषां भावः (बहु०), भावार्थेष्यञ् च ।

भाषार्थः—गीध ने कहा—'बिलाव मांस में रुचि वाला है और यहां पक्षियों के बच्चे रहते हैं। इस कारण से मैं ऐसा कह रहा हूँ।' यह सुनकर बिलाव भूमि को स्पर्श कर दोनों कानों को छूता है और कहता भी है—मैंने धर्मशास्त्रों को सुनकर राग नष्ट होने से (समस्त विषयों की आसक्ति का त्याग होने से) यह अति कठिन चान्द्रायणव्रत किया है; क्योंकि परस्पर विवाद करने वाले (धर्म के विषय में मतभेद रखने वाले) धर्मशास्त्रों का 'अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है' इस विषय में एकमत (एक राय) है ।

यतः—सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये ।
सर्वस्याऽऽश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—ये नराः सर्वहिंसानिवृत्ताः, ये च सर्वसहा, ये च सर्वस्य आश्रयभूताः, ते नराः स्वर्गगामिनः (भवन्ति) ।

व्याख्या—ये नराः = जनाः, सर्वहिंसानिवृत्ताः = प्राणिमात्रवधपराङ्मुखाः, ये च सर्वसहाः = अखिलसहिष्णवः (भवन्तीति क्रिया पदं प्रतिवाक्यमध्याहार्यम्), ये च, सर्वस्य = प्राणिमात्रस्य, आश्रयभूताः = आधारभूता, तादृशाः ते नराः = मनुष्याः स्वर्गगामिनः = देवलोकनिवासिनः 'भवन्ति' ।

टिप्पणी—सर्वहिंसानिवृत्ताः = सर्वेषां हिंसा, सर्वहिंसा (ष० त०), तस्याः, निवृत्ताः ते, (पं० त०) सर्वसहाः = सर्वं सहन्ते, ते सर्वंसहाः सर्व + सह + खच् + मुम् । स्वर्गगामिनः = स्वर्गं गच्छन्ति तच्छीलाः ते स्वर्ग + गम् + णिनिः (उपपदसमासः), आश्रयाः भूताः आश्रयभूताः (सुप्सुपा) इति केवल समासः । ये नराः प्राणिमात्रवधपराङ्मुखाः सर्वसहनशीला सर्वाधारभूताः सन्ति ते नरा स्वर्गं गच्छन्तीति भावः ।

भाषार्थ—जो मनुष्य सबकी हिंसा से रहित हैं और जो पुरुष सब कुछ सहने वाले हैं तथा सभी के आधारस्वरूप हैं वे ही पुरुष स्वर्गगामी (स्वर्ग जाने के भागी) होते हैं ।

अन्यच्च—एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥ ६६ ॥

अन्वयः—धर्म एव एकः सुहृत्, यः निधनेऽपि, अनुयाति अन्यत् तु सर्वम् शरीरेण समम् नाशम्, गच्छति ।

व्याख्या—धर्मः = शुभजनकाचारविशेषः, एव = नूनम्, सुहृत = मित्रम्, यः = धर्मः, निधनेऽपि = देहत्यागेऽपि, अनुयाति = पश्चाद्धावति, अन्यत् = धर्मातिरिक्तम्, सर्वम् = बन्धुमित्रकलत्रपुत्रद्रव्यादिकम्, शरीरेण = देहेन, समम् = साकम्, नाशम् = विनाशम्, गच्छन्ति = यान्ति ।

टिप्पणी—वास्तविकमित्रन्तु जनानां तैराचरितधर्म एव, यः मरणेऽपि स्वधर्मिणं न परित्यजति, तद्भिन्नं वस्तुमात्रं कायेन, सहात्रैव विलीयते, इति भावः ।

भाषार्थः—धर्म ही एकमात्र मित्र है जो कि मरने पर भी (परलोक में) पीछे-पीछे जाता है । अन्य सब तो शरीर के साथ ही नाश हो जाता है ॥ ६६ ॥

किञ्च—योऽत्ति यस्य तदा मांसमुभयोः पश्यताऽन्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥ ६७ ॥

अन्वयः—यः यस्य मांसम् यदा अत्ति उभयोः अन्तरम् पश्यत, एकस्य क्षणिका प्रीतिः (भवति) अन्यः प्राणैः विमुच्यते ।

व्याख्या—यः = कश्चित्, यस्य = प्राणिनः, मासम् = पललम्, यदा = यस्मिन् काले, अत्ति = खादति, तदा, एकस्य = भक्षकस्य, क्षणिका = क्षणमात्रम्, प्रीतिः = हर्षः (भवति), अन्यः = भक्ष्यः, प्राणैः = असुभिः, विमुच्यते = पृथक् क्रियते ॥

टिप्पणी—यः यस्य मासम् यदा खादति तयोरुभयोः (भक्ष्यभक्षकयोः) भेदम्, पश्यत, भक्षकस्य क्षणमात्रकालाय हर्षः उत्पद्यते परन्तु, अन्यः भक्ष्यस्तु प्राणेभ्यः पृथक् क्रियते, मरणरूपमहादुःखं प्राप्नोति, इति भावः ।

भाषार्थः—जो प्राणी जिस का मांस जब खाता है (तब) उन दोनों (भक्षक और भक्ष्य) में अन्तर देखो । एक की क्षणिक प्रीति होती है किन्तु दूसरा (भक्ष्य प्राणी) प्राणों से अलग हो जाता है ।

अपि च—मर्त्तव्यमिति यद् दुःखं पुरुषस्योपजायते ।
शक्यस्ते नाऽनुमानेन परोऽपि परिरक्षितुम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—पुरुषस्य मर्तव्यम्, इति यद् दुःखं उपजायते, तेन अनुमानेन परः अपि परिरक्षितुम् शक्यः ॥

व्याख्या—पुरुषस्य = पुरि (शरीरे), शेते, इति पुरुषस्तस्य = जीवस्य, मर्तव्यम् = मम मरणं स्यादिति चिन्तया, यद्, दुःखम् = कष्टम्, उपजायते = उत्पद्यते, तेन, अनुमानेन = स्वस्य यथा मरणेन कष्टं भवति, तथा अन्यस्यापि मरणं दुःसहकष्टदम्, इति अनुमित्या, परोऽपि, स्वभिन्नोऽपि प्राणी परिरक्षितुम् = हिंसावृत्तितस्त्रातुं, जीवयितुमित्यर्थः । शक्यः = योग्योऽस्तीति ।

टिप्पणी—आत्मानम् (महाविपत्तिसमये) सम्प्रति मम मरणं नूनं भविष्यति, एतादृश्या चिन्तया यावद् दुःखं भवति, तावदेव दुःखमन्यस्यापि भवति, इत्थमवगम्य कदापि कश्चिन्न हन्तव्यः, इति भावः ॥

भाषार्थः—जीव को 'मुझे मरना पड़ेगा' ऐसा समझ कर जो दुःख उत्पन्न होता है, उस अनुमान से (उतना ही दुःख दूसरे को भी होता है) दूसरा भी प्राणी रक्षा करने योग्य है ॥ ६८ ॥

शृणु, पुनः—

व्याख्या—शृणु = आकर्णय, पुनः = भूयः ।

भापार्थः—फिर सुनो—

> स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्यते ।
> अस्य दग्धोदरस्याऽर्थे कः कुर्यात् पातकं महत् ॥ ६९ ॥

अन्वयः—स्वच्छन्दवनजातेन, शाकेन, अपि, (यद् उदरम्), प्रपूर्यते, अस्य दग्धोदरस्य अर्थे कः महत् पातकम् कुर्यात् ॥

व्याख्या—स्वच्छन्दवनजातेन = हलकर्षणादिकमन्तरेणारण्योत्पन्नेन, शाकेन= शाकपत्रफलादिनापि, यद् उदरम् इति शेषः प्रपूर्यते = भ्रियते, जनैरिति शेषः। अस्य = एतस्य, दग्धोदरस्य = नष्टप्रायकुक्षेः, अर्थे = निमित्ते, कः = को नाम जनः, महत् पातकम् = जीवहिंसात्मकम् अत्युत्कटं पापम्, कुर्यात् = आचरेत् ? न कोऽपीत्यर्थः ॥

टिप्पणी—स्वच्छन्दवनजातेन = वने जातः, वनजातः, (स० त०), स्वच्छन्दं, च तत् वनजातम्, तेन (क० धा०), दग्धोदरस्य = दग्धं च तत्, उदरम्, दग्धोदरम्, तस्य (क० धा०), यदा वने स्वाभाविकतया उत्पन्नेन, शाकपत्रफलादिनोदरम् भर्तुं शक्यते तदा, उदरनिमित्ते महापातकम्, (हिंसात्मकं पापम्) किमिति क्रियेतेति भावः ॥

भाषार्थः—स्वाभाविकता से (बिना जोते बोये) वन में उत्पन्न होने वाले शाकपत्र, फलादिकों से ही जब (पेट) भर सकता है तब (जाठराग्नि से) दग्ध इस उदर (पूर्ति) के लिये कौन बड़ा पाप (जीव हिंसा) करे ? ॥ ६९ ॥

एवं विश्वास्य स मार्जारस्तरुकोटरे स्थितः। ततो दिनेषु गच्छत्सु असौ पक्षिशावकानाक्रम्य स्वकोटरमानीय प्रत्यहं खादति । अथ येषामपत्यानि खादितानि, तैः शोकार्तैर्विलपद्भिरितस्ततो जिज्ञासा समारब्धा। तत्परिज्ञाय मार्जारः कोटरान्निःसृत्य वहिः पलायितः। पश्चात्पक्षिभिरितस्ततो निरूपयद्भिस्तत्र तरुकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि। अनन्तरमनेनैव शावकाः खादिता इति (सर्वैः पक्षिभिः) निश्चित्य स गृध्रो व्यापादितः। अतोऽहं ब्रवीमि— 'अज्ञातकुलशीलस्ये'त्यादि ।

व्याख्या—एवम् = इत्थम्, विश्वास्य = विश्वासमुत्पाद्य, सः=पूर्वोक्तः, मार्जारः = बिडालः, तरुकोटरे = वृक्षनिष्कुहे, स्थितः = तस्थौ। ततः = अनन्तरम्, दिनेषु = दिवसेषु, गच्छत्सु = व्रजत्सु, असौ = बिडालः, पक्षिशावकान् = विहङ्गमशिशून्, आक्रम्य = आक्रमणं कृत्वा, स्वकोटरम् = निजनिष्कुहम्, आनीय = प्रापय्य, प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्, खादति = अत्ति। अथ = अनन्तरम्, येषाम् = पक्षिणाम्, अपत्यानि = शावकाः, खादितानि = जग्धानि, शोकार्तैः = मन्युपीडितैः, विलपद्भिः= विलापं कुर्वद्भिः, तैः पक्षिभिः, इतस्ततः = अस्मिंस्तस्मिन् प्रदेशे, जिज्ञासा = ज्ञातुमिच्छा, समारब्धा = आरेभे, तत् = पक्षिकृतान्वेषणम् (शिशूनामिति शेषः), परिज्ञाय = अवगम्य, मार्जारः = बिडालः, कोटरात् = निष्कुहात्, निःसृत्य = निर्गत्य, बहिः = बाह्यप्रदेशे, पलायितः = पलाय्य गतः। पश्चात् = तदनु, इतस्ततः = यत्रतत्र, निरूपयद्भिः = निरूपणं कुर्वद्भिः, पक्षिभिः = विहगैः, तत्र = तस्मिन्, तरुकोटरे = वृक्षनिष्कुहे, शावकास्थीनि = शिशुकीकसानि, प्राप्तानि = लब्धानि, अनन्तरम्, तत्पश्चात्, एतेनैव=अनेनैव (जरद्गवेनैव, गृध्रेण), शावकाः=शिशवः, खादिताः= भक्षिताः, इति, समस्तविहगैः, निश्चित्य = निर्णीय, सः = पूर्वनिर्दिष्टः, गृध्रः = दाक्षाय्यः, जरद्गवः, व्यापादितः = हतः। अतः = अस्माद्धेतोः, अहम्=लघुपतनकः, ब्रवीमि = वदामि 'अज्ञातकुलशीलस्ये'त्यादि।

टिप्पणी—तरुकोटरे = तरोः कोटरम्, तस्मिन् (ष० त०), पक्षिणां शावकाः पक्षिशावकास्तान् (ष० त०), स्वकोटरम् = स्वस्य कोटरम् तत् (ष० त०), प्रत्यहम्=अहः, अहः प्रतीति प्रत्यहम् (अव्ययीभावः)। शोकार्तैः=शोकेन आर्तास्तैः (तृ० त०), शावकास्थीनि = शावकानाम् अस्थीनि तानि (ष० त०)।

भावार्थः—इस प्रकार विश्वास दिलाकर वह बिलाव (दीर्घकर्णः) वृक्ष के कोटर (खोखला) में बैठ गया। इसके बाद कुछ दिन व्यतीत होने पर वह बिलाव पक्षियों के बच्चों को झपट कर अपने खोखला में लाकर प्रतिदिन खाता था। तब जिनके बच्चे खा डाले गए थे उन्होंने शोक से पीड़ित हो विलाप करते हुए जानना चाहा, अतः अपने स्थान से इधर-उधर अन्वेषण करना शुरू किया। उसे जानकर वह बिलाव कोटर से निकल कर बाहर भाग गया। इसके बाद इधर-उधर ढूंढ़ते हुए उन पक्षियों ने वृक्ष के खोखला में बच्चों की हड्डियाँ पाईं। तब 'इसी ने बच्चों को खाया है' ऐसा निश्चय कर (सभी पक्षियों द्वारा) वह गीध मार डाला गया। इस कारण से मैं कहता हूं—'अज्ञातकुलशीलस्य' इत्यादि।

इत्याकर्ण्य स जम्बुकः सकोपमाह—'मृगस्य प्रथमदर्शनदिने भवानपि अज्ञातकुलशील एव आसीत्। तत् कथं भवता सह एतस्य स्नेहाऽनुवृत्तिरुत्तरोत्तरं वर्द्धते?'॥

व्याख्या—इति = पूर्वोक्तम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, सः=पूर्वोक्तः, जम्बुकः=शृगालः, सकोपम् = क्रोधसहितम्, आह = ब्रूते। मृगस्य = हरिणस्य, प्रथमदर्शनदिने = आद्यावलोकनदिवसे, भवान् अपि त्वमपि, अज्ञातकुलशीलः, एव = अविदितवंश-वृत्तः निश्चयेन, आसीत् = अभवत्, तत् = तस्माद्धेतोः, भवता = त्वया, सह = साकम्, एतस्य = अस्य मृगस्य, स्नेहानुवृत्तिः = प्रेमानुभावनम्, कथम् = केन प्रकारेण, उत्तरोत्तरम् = प्रतिदिनम्; वर्द्धते = एधते ॥

टिप्पणी—सकोपम् = कोपेन सह वर्तमानम्, (तुल्ययोगबहु०), प्रथमदर्श-दिने = प्रथमं च तत् दर्शनम् तत्, प्रथमदर्शनम् (क० धा०), तस्य दिनम्, तत तस्मिन् (ष० त०), स्नेहस्य अनुवृत्तिः स्नेहानुवृत्तिः (ष० त०), उत्तरोत्तरम् = उत्तरात् उत्तरम्, उत्तरोत्तरम्, (पं० त०)।

भाषार्थः—इस प्रकार सुनकर वह गीदड़ (सियार) कुपित होकर बोला—'मृग के प्रथम दर्शन के दिन पर तो आप भी कुल और शील के विषय में अनजान ही थे। (अर्थात् आपका मृग के साथ जब पहली भेंट हुई, उस समय तो आप भी अपने कुल तथा स्वभाव से अपरिचित ही थे।) तब फिर आपके साथ इसका प्रेमभाव कैसे प्रतिदिन बढ़ रहा है ?

अथवा—यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राऽल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥ ७० ॥

अन्वयः—यत्र विद्वज्जनः नास्ति तत्र अल्पधीः अपि श्लाघ्यः। निरस्तपादपे देशे एरण्डः अपि द्रुमायते ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थले, विद्वज्जनः = पण्डितजनः नास्ति = न वर्तते, तत्र = तस्मिन् स्थाने, अल्पधीः अपि = मन्दबुद्धिः अपि 'जनः' श्लाघ्यः=प्रशस्यते। निरस्तपादपे = निर्वृक्षे, देशे = जनपदे, एरण्डः, अपि = राजवृक्षः, अपि, द्रुमायते= द्रुमवत् आचरति (वृक्षेषु परिगणनं लभते, इत्यर्थः)।

टिप्पणी—विद्वज्जनः=विद्वाँश्चासौ जनः सः, तथोक्तः (क० धा०), अल्पधीः= अल्पा धीर्यस्य सः तथोक्तः (बहु०), निरस्तपादपे = निरस्ताः पादपाः, यस्मिन् प्रदेशे, स निरस्तपादपः, तस्मिन् (बहु०), निर्वृक्षप्रदेशे, एरण्डद्रुमवत् पण्डित-जनाभावस्थले पण्डितकल्पोऽपि, अल्पबुद्धिरपि प्रशस्यते इति भावः।

भाषार्थः—जिस स्थान पर कोई विद्वान् पुरुष नहीं है वहाँ थोड़ी बुद्धि वाला भी पुरुष प्रशंसनीय है। जिस देश में वृक्ष नहीं है, वहाँ रेंड़ का पेड़ भी वृक्षों के समान माना जाता है ॥ ७० ॥

अन्यच्च—अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ ७१ ॥

अन्वयः—अयम् निजः परः वा इति लघुचेतसाम् गणना, उदारचरितानाम् तु वसुधा एव कुटुम्बकम् ।

व्याख्या—अयम् = एषः, निजः = आत्मीयः, वा = अथवा, परः = भिन्नः, इति गणना = इत्थं विमर्शः, लघुचेतसाम् = क्षुद्रमानसानाम्, उदारचरितानाम्=महानुभावानाम्, तु = किन्तु, वसुधा एव = सकला पृथ्वी, कुटुम्बकम् = कुटुम्बसमुदायः।

टिप्पणी—लघुचेतसाम् = लघूनि चेतांसि येषां ते लघुचेतसस्तेषाम्, (बहु०), उदारचरितानाम् = उदाराणि चरितानि येषां ते, उदारचरिताः, तेषाम् (बहु०), ये क्षुद्रबुद्धयः ते स्वकीयपरकीयभावं कुर्वन्ति, ये चौदार्यशीलाः ते तु, अखिलं जगतीतलमात्मीयमेव मन्यन्त इति भावः।

भाषार्थः—यह अपना है, यह पराया (अपना नहीं) है, ऐसी गिनती छोटे हृदयवालों की होती है। उदार चित्तवालों का तो सारा पृथ्वीमंडल ही कुटुम्ब (परिवार) है ॥ ७१ ॥

यथा चाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि। मृगोऽब्रवीत्—'किमनेन उत्तरोत्तरेण? सर्वैरेकत्र विश्रम्भाऽऽलापैः सुखमनुभवद्भिः स्थीयताम्।'

व्याख्या—अयम् = एषः, मृगः = हरिणः, मे = मम, बन्धुः = बान्धवः, तथा = तद्वत्, भवानपि = त्वमपि 'बन्धुः', मृगः = हरिणः, अब्रवीत् = अवदत्, अनेन = एतेन, उत्तरोत्तरेण = उत्तरप्रत्युत्तरेण, वाक् प्रपञ्चेन, किम् = अलम्। विश्रम्भालापैः= विश्वस्तवचनैः, सुखम् = आनन्दम्, अनुभवद्भिः = अनुभवम् कुर्वद्भिः, एकत्र= एकस्मिन् स्थाने, स्थीयताम् = उपवेशनं क्रियताम्।

टिप्पणी—उत्तरात्, उत्तरम्, तेन, उत्तरोत्तरेण (पं० त०), विश्रम्भालापैः = विश्रम्भस्य आलापास्तैः (ष० त०)।

भाषार्थः—जैसे यह मृग मेरा बन्धु है उसी तरह आप भी (बन्धु) हैं। मृग ने कहा—इस उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या मतलब? विश्वासपूर्ण बातचीत से सुख का अनुभव करते हुए (हम) सब एक जगह बैठ जाँय ॥

यतः—न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ॥ ७२ ॥

अन्वयः—कश्चित् कस्यचित् मित्रम् न, कश्चित् कस्यचित् रिपुः न। व्यवहारेण मित्राणि तथा रिपवः जायन्ते।

व्याख्या—कश्चित् = कोऽपि जनः, कस्यचित् = कस्यापि जनस्य, मित्रम् = सुहृद्, न=नास्ति, रिपुः=शत्रुः, न = नास्ति, व्यवहारेण = अनुकूलेन, प्रतिकूलेन वा वर्तनेन, रिपवः = शत्रवः तथा मित्राणि = सुहृदः, जायन्ते = भवन्ति।

टिप्पणी—कोऽपि जनः कस्यापि जनस्य स्वभावतः शत्रुर्वा मित्रं नास्ति, अनुकूलाचरिता मित्रं प्रतिकूलाचरिता शत्रुरिति भावः।

भाषार्थः—कोई किसी का मित्र नहीं है और न कोई किसी का शत्रु है। व्यवहार से मित्र तथा शत्रु पैदा होते हैं ॥ ७२ ॥

काकेन उक्तम्—'एवमस्तु'। अथ प्रातः सर्वे यथाऽभिमतदेशं गताः। एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते—'सखे मृग! एतस्मिन्नेव वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति, तदहं त्वां तत्र नीत्वा दर्शयामि'। तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति। ततो दिनकतिपयेन क्षेत्रपतिना तद् दृष्ट्वा पाशास्तत्र योजिताः। अनन्तरं पुनरागतो मृगः तत्र चरन् पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत्—'को मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात् त्रातुं मित्रादन्यः समर्थः?'। 'अत्रान्तरे जम्बुकस्तत्राऽऽगत्य उपस्थितोऽचिन्तयत्—'फलितस्तावदस्माकं कपटप्रबन्धः, मनोरथसिद्धिरपि बाहुल्यान्मे भविष्यति। यतः एतस्य उत्कृत्यमानस्य मांसाऽसृग्लिप्तानि अस्थीनि मया अवश्यं प्राप्तव्यानि। तानि च बाहुल्येन मम भोजनानि भविष्यन्ति'। स च मृगस्तं दृष्ट्वा उल्लासितो ब्रूते—'सखे! छिन्धि तावन्मम बन्धनम्, सत्वरं त्रायस्व माम्।'

व्याख्या—काकेन = वायसेन, उक्तम्, अभिहितम्। एवम्=भवता यदभिधीयते तथा, अस्तु=भवतु। अथ=अनन्तरम्, प्रातः=प्रभाते, सर्वे=समस्ताः, यथाभिमतम्=स्वेष्टम, देशम् = प्रदेशम्, गताः = प्रस्थिताः। एकदा = एकस्मिन् दिने, शृगालः = जम्बुकः, निभृतम् = एकान्तस्थले, ब्रूते = वदति, (मृगमिति शेषः), सखे = मित्र, मृग! = हरिण!, एतस्मिनेव = अस्मिन्नेव, वनैकदेशे = अरणापरपार्श्वे, सस्यपूर्णम् = धान्यपूरितम्, क्षेत्रम् = कृषिभूमिः, अस्ति = विद्यते, तत् = तस्मात् कारणात्, अहम् = शृगालः, त्वाम् = मृगम्, तत्र = क्षेत्रे, नीत्वा = प्रापय्य, दर्शयामि = दर्शनं कारयामि। तथा = उक्तप्रकारेण, कृते सति = विहिते सति, मृगः = हरिणः, प्रत्यहं = प्रतिदिनम्, तत्र=क्षेत्रे, गत्वा, प्राप्य, सस्यम्=धान्यम्, खादति= भक्षयति। ततः = अनन्तरम्, दिनकतिपयेन = केनचिद् दिनेन, क्षेत्रपतिना = केदारस्वामिना, तत् = सस्य भक्षणम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, पाशाः = जालकानि, तत्र = तस्मिन् स्थाने, योजिता = स्थापिताः। अनन्तरम् = ततः, पुनः = भूयः, आगतः = आयातः, मृगः = हरिणः, तत्र = स्थाने, चरन् = गच्छन्, मृगः पाशैः = जालकबन्धनैः, बद्धः = बन्धनं प्राप्तः, मृगः=हरिणः, अचिन्तयत् = चिन्तितवान्, कालपाशात् इव = मृत्युबन्धनात् इव, इतः = अस्मात्, व्याधपाशात् = मृगयुआकर्षात्, त्रातुम् = रक्षितुम्, मित्रात् = सुहृदः, अन्यः = अपरः, कः = जनः,

समर्थः = शक्यः। अत्र = अस्मिन्, अन्तरे = अवकाशे, जम्बुकः = शृगालः, तत्र = तस्मिन् स्थाने, आगत्य = आगमनं कृत्वा, उपस्थितः = विद्यमानः (सन्), अचिन्तयत् = चिन्तितवान्, तावत् = अधुना, अस्माकम् = मम, शृगालस्य, कपटप्रबन्धः = छद्माचरणम्, फलितम् = सफलः। मनोरथसिद्धिरपि = वाञ्छासाफल्यमपि मे = मम, बाहुल्यात् = प्राचुर्यात्, भविष्यति = संपत्स्यते। यतः = यस्माद्धेतोः उत्कृत्यमानस्य = संछिद्यमानस्य, एतस्य = मृगस्य, मांसासृग्लिप्तानि = आमिषरक्तलेपयुक्तानि = अस्थीनि = कीकसानि, मया = शृगालेन, अवश्यम् = नूनम्, प्राप्तव्यानि = आसादयितव्यानि, तानि च = तादृशान्यस्थीनि, च मम = शृगालस्य बाहुल्येन = प्राचुर्येण, भोजनानि = खाद्यपदार्था = भविष्यन्ति = सम्पत्स्यन्ते। स च = पूर्वोक्तश्च, मृगः = हरिणः, तम् = शृगालम्, दृष्ट्वा = वीक्ष्य, उल्लासितः = प्रसन्नः 'सन्', ब्रूते = वदति। सखे ! = मित्र ! तावत् = अधुना, मम = मित्रस्य, बन्धनम् = जालकपाशम्, छिन्धि = खण्डय, माम् = मृगम्, सत्वरम् = आशु. त्रायस्व = रक्ष।

टिप्पणी—यथाऽभिमतदेशम् = अभिमतमनतिक्रम्य, यथाभिमतम् (अव्ययीभावः), यथाभिमतश्चासौ देशस्तम (क० धा०), वनैकदेशे = एकश्चासौ देशः, एकदेशः (क० धा०), वनस्य, एकदेशः वनैकदेशस्तस्मिन् (ष० त०), सस्यपूर्णम् = सस्यैः पूर्णम्, सस्यपूर्णम् (तृ० त०), दिनकतिपयेन = दिनानां कतिपयम्, तेन (ष० त०), क्षेत्रपतिना = क्षेत्रस्य पतिः क्षेत्रपतिः, तेन (ष० त०), कालपाशात् = कालस्य पाशः कालपाशस्तस्मात (ष० त०), कपटस्य प्रबन्धः कपटप्रबन्धः (ष० त०), मनोरथसिद्धिः = मनोरथस्य सिद्धिः, मनोरथसिद्धिः (ष० त०), बाहुल्यात् = बहुलस्य भावः बाहुल्यम, तस्मात्। मांसाऽसृक्लिप्तानि = मांसायुक्तम असृक्, मांसासृक् (मध्यमपदलोपिसमासः), तेन लिप्तानि (तृ० त०), सत्वरम् = त्वरया सहितम् (तुल्ययोगबहु०)।

भावार्थः—कौवा ने कहा—'ऐसा ही हो'। इसके बाद प्रातःकाल सब (कौवा इत्यादि) यथेष्ट (मन चाहे) प्रदेशों को चले गये। एक दिन एकान्त में शृगाल मृग से कहा—'मित्र मृग ! इसी वन के एक भाग में धान्य से परिपूर्ण खेत है। इस कारण मैं तुमको वहाँ ले जाकर दिखाता हूँ। ऐसा करने के बाद मृग प्रतिदिन खेत में जाकर धान्य खाता था। तब कुछ दिन बाद खेत के मालिक ने उसे (धान्य को खाया हुआ) देखकर खेत में जाल लगा दिया। इसके बाद मृग फिर आया और चरता हुआ जाल में फंस गया और चिन्ता करने लगा—यमपाश के समान इस व्याध के जाल से मुझे छुड़ाने के लिए मित्र के सिवा दूसरा कौन समर्थ है ? इसी बीच में गीदड़ (सियार) वहाँ आकर उपस्थित हो गया और सोचने लगा—मेरा कपट से किया हुआ प्रयोग सफल हो गया। मेरे मनोरथ की

सिद्धि भी अब पूर्ण रूप से होगी। क्योंकि इस मृग के काटने पर, माँस तथा रुधिर से सनी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य प्राप्त करनी चाहिये। वे बहुत दिन के लिये मेरे पर्याप्त भोजन होंगे। वह मृग उसे (शृगाल को) देखकर उल्लसित होकर बोलता है—हे मित्र ! तब तक मेरे बन्धन को काट तथा शीघ्र मुझे रक्षा करो ॥

यतः—आपत्सु मित्रं जानीयाद् युद्धे शूरमृणे शुचिम् ।
भार्य्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ॥ ७३ ॥

अन्वयः—आपत्सु मित्रम् जानीयात , युद्धे शूरम्, ऋणे शुचिम्, वित्तेषु क्षीणेषु (सत्सु) भार्याम्, व्यसनेषु च बान्धवान् 'जानीयात' ।

व्याख्या—आपत्सु = उपस्थितविपत्सु, मित्रम् = सुहृदम्, जानीयात = परीक्षेत, युद्धे = रणे, शूरम् = वीरम्, ऋणे = पर्युदञ्चने, शुचिम् = निष्कपटं जनम्, वित्तेषु = धनेषु, क्षीणेषु = नष्टेषु (सत्सु), भार्याम् = स्वपत्नीम्, व्यसनेषु = दुःखेषु च, बान्धवान् = बन्धून्, जानीयात ।

टिप्पणी—मित्रशूरनिष्कपटजनस्वपत्नीबान्धवानां, विपद्युद्धर्णनष्टधनदुःखेषु क्रमशः परीक्षणं कुर्यादिति भावः ॥

भाषार्थः—आपत्ति में मित्र को, युद्ध में शूर को, ऋण (उधार के व्यवहार) में ईमानदार (शुद्ध हृदय वाले) को, धन नष्ट होने पर अपनी स्त्री को तथा दुःखों में बान्धवों (सम्बन्धियों) को जान लेना चाहिए (अच्छी तरह परख लेनी चाहिए) ॥ ७३ ॥

अपरञ्च—उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ ७४ ॥

अन्वयः—यः उत्सवे, व्यसने, चैव दुर्भिक्षे, राष्ट्रविप्लवे राजद्वारे श्मशाने च तिष्ठति स बान्धवः ।

व्याख्या—यः = जनः, उत्सवे = विवाहादिलक्षणे, व्यसने = विपत्तिकाले, दुर्भिक्षे = भक्ष्याभावसमये, राष्ट्रविप्लवे = स्वदेशस्य नृपान्तरकृताक्रमणात्प्रकोपद्रवे, राजद्वारे = प्रतिपक्षकृताभियोगे सति न्यायालये, श्मशाने = शवदाहस्थाने, तिष्ठति = तनुमनोवित्तैरुपकरोति, स एव = पूर्वनिर्दिष्ट एव, बान्धवः = यथार्थः बन्धुः ।

टिप्पणी—दुर्भिक्षे = दुर्लभा, भिक्षा यस्मिन् काले सः, दुर्भिक्षस्तस्मिन् (बहु०) राष्ट्रविप्लवे = राष्ट्रस्य विप्लवस्तस्मिन् (ष० त०), राजद्वारे = राज्ञो द्वारम्, तस्मिन् (ष० त०), सम्पत्तौ सर्वोऽपि बन्धुत्वं प्रदर्शयति, व्यसनादौ तनुमनोधनैरुपकरोति यः स एव बान्धवपदवाच्यो भवतीति भावः ।

भाषार्थः—जो (विवाहादि) उत्सव में, विपत्ति में, अकाल पड़ने पर, राष्ट्र में

उपद्रव होने पर, राजा के द्वार पर और श्मशान में रहता है, वही बान्धव (भाई बन्धु) है ॥ ७४ ॥

जम्बुकः पाशं मुहुर्मुहुर्विलोक्याऽचिन्तयत् 'दृढस्तावदयं बन्धः, ब्रूते च—'सखे ! स्नायुर्निर्मिताः पाशाः, तदद्य भट्टारकवारे कथमेतान् दन्तैः स्पृशामि ? मित्र ! यदि चित्ते न अन्यथा मन्यसे, तदा प्रभाते यत् त्वया वक्तव्यं तत् कर्तव्यम्' इति। अनन्तरं स काकः प्रदोषकाले मृगमनागतमवलोक्य इतस्ततोऽन्विष्यन् तथाविधं दृष्ट्वा उवाच—'सखे ! किमेतत् ?' मृगेणोक्तम् 'अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत् ।' तथा चोक्तम्—

व्याख्या—जम्बुकः = शृगालः, पाशम् = जालम्, मुहुर्मुहुः = वारं वारम्, विलोक्य = निरीक्ष्य, अचिन्तयत् = चिन्तितवान्, तावत् = तु, एषः = अयम्, बन्धः = बधनम्, दृढः = गाढः, ब्रूते च = कथयति च, सखे, मित्र, स्नायुनिर्मिताः = धमनिरचिताः, पाशाः=जालकतन्तवः, तत् = तस्मात् कारणात्, अद्यभट्टारकवासरे= रविवारे, कथं = केनप्रकारेण, दन्तैः = रदैः, स्पृशामि = आस्पृशामि। मित्र, यदि = चेत्, चित्ते = मनसि, अन्यथा = प्रकारान्तरेण, न मन्यसे=नोविचारयसि !, तदा प्रभाते = प्रातःकाले, यत् त्वया = भवता, वक्तव्यम् = कथनीयम्, तत्, 'मया' कर्तव्यम् = विधेयम्। अनन्तरम् = ततः, सः = पूर्वनिर्दिष्टः काकः (लघुपतनकः वायसः), मृगम्=हरिणम्, अनागतम्, अनायातम्, अवलोक्य=वीक्ष्य, इतस्ततः= यत्रतत्र, अन्विष्यन् = अन्वेषणं कुर्वन्, तथाविधम्, पाशबद्धम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, उवाच = जगाद। सखे, मित्र, एतत्=इदं पाशबन्धनम्, किम् = कथम्। एतत् = यत् त्वयोक्तम्, तत् अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलम् = तिरस्कृतमित्रवचन-परिणामः। तथा च = तेन प्रकारेण, उक्तम् = कथितम्।

टिप्पणी—स्नायुनिर्मिताः = स्नायुभिः निर्मिताः स्नायुनिर्मिताः (तृ० त०), भट्टारकस्य वासरः भट्टारकवासरस्तस्मिन् (ष० त०), प्रदोषकाले=प्रदोषस्य कालस्तस्मिन् (ष० त०), प्रदोषो रजनीमुखम्, इत्यमरः। अनागतम् = न आगतः, अनागतस्तम् (नञ्, त०), तथाविधम्=तथा, विधा (प्रकारः) यस्य सः, तम् (बहु०), अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य = सुहृदो वाक्यं सुहृद्वाक्यं (ष० त०), अवधीरितं च तत् सुहृद्वाक्यम्, तस्य (क० धा०)।

भाषार्थः—सियार ने पाश (बन्धन) को बार बार देखकर विचार किया कि 'यह पाशबन्धन मजबूत है, और बोलता भी है—'मित्र ! ताँत (नसों) के बने हुए ये जाल हैं, इस कारण आज रविवार में इनको दाँतों से कैसे स्पर्श करूं ? मित्र ! यदि तुम चित्त में अन्यथा (मेरे कथन का विपरीत) नहीं मानते हो (विचार नहीं करते हो), तो प्रातःकाल में जो तुम्हें कहना है, वही मुझे करना

है।' इसके बाद वह कौवा सायंकाल होने पर भी मृग को नहीं आया हुआ देखकर इधर-उधर तलाश करते हुए उसी प्रकार से बँधे हुए मृग को देखकर बोला— 'मित्र ! यह क्या है ?' मृग बोला—मित्र के वचन न मानने का यह फल है।' वैसा ही कहा भी गया है—

सुहृदां हितकामानां यः शृणोति न भाषितम् ।
विपत् सन्निहिता तस्य स नरः शत्रुनन्दनः ॥ ७५ ॥

अन्वयः—यः हितकामानाम्, सुहृदाम् भाषितम् न शृणोति तस्य विपत् सन्निहिता, सः नरः शत्रुनन्दनः 'भवतीति शेषः'।

व्याख्या—यः = जनः, हितकामानाम् = हितकारकानाम्, सुहृदाम् = मित्राणाम्, भाषितम् = कथनम्, (हितवाक्यम्), न शृणोति = श्रुत्वा तथैव नाचरति, तस्य = जनस्य, विपत् = आपत्तिः, सन्निहिता = आसन्ना 'वर्तते', सः = प्रसिद्धः, नरः = मनुष्यः, शत्रुनन्दनः = वैरिप्रीतिकरः 'भवतीति शेषः'।

टिप्पणी—हितकामानाम् = हिते कामो येषां ते हितकामाः, तेषां (व्य० बहु०), शत्रुनन्दनः=शत्रुं नन्दयति, इति शत्रुनन्दनः (उपपदसमासः), शत्रु + नदि + नुम् + ल्युः + अनः । यो जनः = हितैषिणां मित्राणां हितकरं वचनं श्रुत्वापि तथा नाचरति, तस्य परिणामः, अयमेव, स आशु विपद्ग्रस्तो भवति, दृष्ट्वा च विपदापन्नं तच्छत्रुः हृष्यति, इति भावः।

भावार्थः—जो पुरुष अपने हितैषी मित्रों के कथन को नहीं मानता है वह शीघ्र ही विपत्ति में पड़कर अपने शत्रु को आनंद देने वाला होता है ॥ ७५ ॥

काको ब्रूते—'स वञ्चकः क्वाऽऽस्ते !' मृगेणोक्तम्—'मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव'। काको ब्रूते—'मित्र ! उक्तमेव मया पूर्वम्।'

व्याख्या—काकः = वायसः; ब्रूते = वदति, सः = क्षुद्रबुद्धिः शृगालः, वञ्चकः = धूर्तः, क्व = कुत्र, आस्ते = विद्यते, मृगेण = हरिणेन, उक्तम् = अभिहितम्, मन्मांसार्थी = ममामिषाभिलाषुकः, अत्रैव = अस्मिन्नेव स्थाने, तिष्ठति = वर्तते, काकः = वायसः, ब्रूते = वदति, मित्र, मया = लघुपतनकेन, पूर्वम् एव, प्रथमम् एव, उक्तम् = कथितम्।

टिप्पणी—मन्मांसार्थी = मम मांसं (ष० त०), तत् अर्थयते तच्छीलः, मन्मास + अर्थ + णिनिः (उप० स०)।

भावार्थः—कौवा कहता है—'वह ठग (सियार) कहाँ है' मृग ने कहा— 'मेरे माँस को चाहने वाला (वह) यहीं बैठा हुआ है।' कौवा कहता है—'मित्र ! मैंने तो पहले ही कहा था।'

अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम् ।
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥ ७६ ॥

अन्वयः—अपराधः मे न अस्ति, इति विश्वासकारणम् एतत् न, गुणवताम् अपि नृशंसेभ्यः भयम् विद्यते ।

व्याख्या—अपराधः = दोषः, मे = मम, न अस्ति, नो वर्तते, इति, एतत् = इतीदम्, विश्वासकारणं = प्रत्ययहेतुः, न = नास्ति, हि = यतः, गुणवताम्, अपि = गुणिनामपि, नृशंसेभ्यः = घातुकेभ्यः, भयम् = भीतिः, विद्यते = वर्तते ॥

टिप्पणी—विश्वासस्य कारणम्, विश्वासकारणम् (ष० त०), गुणाः विद्यन्ते येषु ते गुणवन्तस्तेषाम्, गुण + मतुप् । 'नृशंसः घातुकः, क्रूरः', इत्यमरः । अपराधाभावकथनम् विश्वासोत्पादकं न भवति । कुतः, गुणिनामपि जनानां क्रूरेभ्यः भयस्य विद्यमानत्वादिति भावः ।

भाषार्थः—मेरा अपराध नहीं है, इस प्रकार से (भय के न होने में) विश्वास का कारण यह नहीं है । क्योंकि गुणवान् पुरुषों को भी क्रूर जनों से भय होता है ॥७६॥

दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् ।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गताऽऽयुषः ॥ ७७ ॥

अन्वयः—गतायुषः दीपनिर्वाणगन्धम् न जिघ्रन्ति, सुहृद्वाक्यम् न शृण्वन्ति, अरुन्धतीम् न पश्यन्ति ।

व्याख्या—गतायुषः = आसन्नमृत्यवो जनाः, दीपनिर्वाणगन्धम् = प्रदीपान्तधूमगन्धम्, न जिघ्रन्ति = घ्राणेन्द्रियेण न गृह्णन्ति, सुहृद्वाक्यम् = मित्रोक्तिम्, न शृण्वन्ति = नाकर्णयन्ति, अरुन्धतीम् = एतन्नामकनक्षत्रविशेषम्, न पश्यन्ति = नालोचयन्ति ।

टिप्पणी—गतायुषः = गतम्, आयुर्येषां ते (बहु०), सुहृद्वाक्यम् = सुहृदः, वाक्यम् तत् (ष० त०), दीपनिर्वाणगन्धं च = दीपस्य निर्वाणं दीपनिर्वाणम् (ष० त०), तस्य गन्धः, तम् (ष० त०) । आसन्नमृत्यवो जनाः दीपे विनष्टे सति तस्य कार्पासवर्तिकातः यो धूमः निःसरति तस्य गन्धम्, निजघ्राणेन्द्रियेण नाददते, मित्रवचनं हितमपि न शृण्वन्ति, अरुन्धती नामकं नक्षत्रविशेषं न पश्यन्तीति भावः ॥

भाषार्थः—जो गतायु (मौत के पास) हैं वे दीप की बुझी हुई गन्ध को नहीं सूंघते हैं, मित्र के (हितैषी) वचन को नहीं सुनते तथा अरुन्धती नामक तारा को नहीं देखते हैं (अर्थात् ये सभी लक्षण शीघ्र मरने वाले व्यक्ति के हैं) ॥ ७७ ॥

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः—परोक्षे कार्यहन्तारम्, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्, तादृशम् मित्रम्, पयोमुखम्, विषकुम्भम् इव वर्जयेत् ।

व्याख्या—परोक्षे = दृष्टिगोचराभावे, कार्यहन्तारम् = कृत्यविनाशकम्, प्रत्यक्षे = समक्षे, प्रियवादिनम् = मधुरभाषिणम्, तादृशम् = पूर्वनिर्दिष्टम्, मित्रम् = सुहृदम्, पयोमुखम् = दुग्धवदनम्, विषकुम्भम् = गरलघटम्, इव = यथा, वर्जयेत् = त्यजेत् ।

टिप्पणी—परोक्षे = अक्ष्णोः परं परोक्षम्, तस्मिन् (अव्ययीभावः), कार्यहन्तारम् = कार्यस्य हन्ता, तम् (ष० त०), प्रत्यक्षे = अक्ष्णोरभिमुखम्, प्रत्यक्षम् (अव्ययीभावः), प्रियवादिनम् = प्रियं वदति तच्छीलः, प्रिय + वद + णिनिः (उपपदसमासः), पयोमुखम् = पयसा युक्तं मुखं यस्य सः तम् शाकपार्थिव इव (मध्यमपदलोपिसमासः), विषकुम्भम्=विषस्य कुम्भः सः, तम् (ष० त०), यः परोक्षे कार्यं नाशयति, प्रत्यक्षे प्रियं वदति, एतादृशः मित्रभावमापन्नः जनः दुग्धाननगरलघट इव हेयः इति भावः ।

भाषार्थः—परोक्ष में कार्य बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष में प्रिय बोलने वाले ऐसे मित्र को मुख भाग में दूध लिये हुए (भीतर में भरे) जहर के घड़े की तरह त्याग देना चाहिए ॥ ७८ ॥

ततः काको दीर्घं निःश्वस्य उवाच—'अरे वञ्चक ! किं त्वया पापकर्मणा कृतम् ।'

व्याख्या—ततः = अनन्तरं, काकः = वायसः, दीर्घं = आयतम्, यथा तथा निश्वस्य=निश्वासं कृत्वा, उवाच = जगाद । अरे वञ्चक !, रे प्रतारक, पापं कर्म यस्य स पापकर्मा तेन (बहु०), कल्मषकारिणा, त्वया = जम्बुकेन, किं कृतम् = किमनुष्ठितम् ॥

भाषार्थः—इसके बाद कौवा ने लम्बी श्वास छोड़कर कहा—'अरे ठग ! पापी तूने क्या किया ?' ।

यतः—संलापितानां मधुरैर्वचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् ।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ॥ ७९ ॥

अन्वयः—लोके मधुरैः वचोभिः संलापितानाम्, मिथ्योपचारैः वशीकृतानाम्, आशावताम् श्रद्दधताम् च अर्थिनाम् , किम् वञ्चयितव्यम्, अस्ति ।

व्याख्या—लोके = जगत्याम् , मधुरैः = प्रियैः, वचोभिः = वाक्यैः, संलापितानाम्=कृतसंलापानाम् , मिथ्योपचारैः = मृषाव्यवहारैः, वशीकृतानाम् = स्वायत्तीकृतानाम् , श्रद्दधताम् = विश्वासं कुर्वताम् , आशावताम् च = मनोरथविशेषयुक्ता-

नाम्, अर्थिनाम्=याचकानाम्, किंवञ्चयितव्यम्=किं प्रतारणीयम्, अस्ति=विद्यते। उपजाति, छन्दः।

टिप्पणी—आशा विद्यते येषां ते आशावन्तस्तेषाम्, आशा+मतुप्। जगति मनोहारिवचनैः, संभाषितां मृषाव्यवहारैः स्वाधीनीकृतानाम्, श्रद्धालूनां, आशायुक्तानाम्, याचकानां वञ्चनेन किंचित् शोभनं कार्यं नास्ति। अतो भवता भद्रं नाचरितमिति भावः॥

भावार्थः—जगत् में मधुर वचनों से बातचीत में आये हुए, झूठे व्यवहारों से वश में किये गये, आशावान् तथा श्रद्धालु याचकों को क्या ठगना है? यानी ऐसे लोगों को ठगना कठिन नहीं है॥ ७९॥

अन्यच्च—उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे! कथं वहसि॥ ८०॥

अन्वयः—हे भगवति! वसुधे! उपकारिणि, विश्रब्धे, शुद्धमतौ यः पापम्, समाचरति, असत्यसन्धम, तम्, जनम्, कथम्, वहसि॥

व्याख्या—यः=जनः, उपकारिणि=उपकारकर्तरि, विश्रब्धे=विश्वस्ते, शुद्धमतौ=कपटरहिते, पापम्=किल्बिषम्, समाचरति=अनुतिष्ठति, असत्यसन्धम्=अनथ्यप्रतिज्ञम्, तम्=पूर्वोक्तम्, जनम्=मनुष्यम्, कथम्=केन प्रकारेण, हे भगवति=ऐश्वर्यादिशालिनि, वसुधे=धरे!, वहसि=दधासि॥

टिप्पणी—शुद्धमतौ=शुद्धामतिर्यस्य सः, तस्मिन् (बहु०), असत्यसन्धम्=न सत्या, असत्या (नञ् त०), असत्या सन्धा यस्य सः, तम् (बहु०), हे भगवति धरणि! त्वमेतादृशं जनं कथं धारयसि, यः स्वोपकारके कृतविश्वासे निष्कपटे विश्वासघातं करोति, असत्यप्रतिज्ञं तादृशं जनं मा धेहि, इति भावः। आर्या, छन्दः॥

भावार्थः—जो व्यक्ति उपकारी में, विश्वस्त में, विशुद्ध मति वाले में पाप (पूर्ण व्यवहार) करता है उस असत्यवादी पुरुष को हे भगवति वसुधे! (हे माँ, पृथ्वी!) तुम कैसे धारण करती हो?॥ ८०॥

दुर्जनेन समं सख्यं वैरञ्चाऽपि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाऽङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्॥ ८१॥

अन्वयः—दुर्जनेन समम् सख्यम्, वैरम् च, अपि न कारयेत्, उष्णः अङ्गारः करम् दहति, शीतः कृष्णायते।

व्याख्या—दुर्जनेन=दुष्टपुरुषेण, समम्=सह, सख्यम्, मैत्र्यम्, वैरञ्चापि=शत्रुताञ्चापि, न कारयेत्=नो विदधीत, उष्णः=प्रदीप्तः, अङ्गारः=अलातम्,

स्पृष्टं सत्, करम् = हस्तम्, दहति = ज्वलयति, शीतः = अनुष्णः, करम् = हस्तम्, कृष्णायते = कृष्णं करोति ॥

टिप्पणी—दुर्जनेन = दुष्टो जनः, दुर्जनः, तेन (गतिसमासः), सख्यु र्भावः सख्यम्, सखि + यः। अङ्गारोऽलातमुल्मुकमित्यमरः। दुर्जनेन सह मैत्रीं शत्रुतां च न कुर्वीत, उष्णः अङ्गारः स्पृष्टश्चेत् हस्तं दहति, शीतलः चेत् हस्तं कृष्णं करोतीति भावः ॥

भाषार्थः—दुर्जन के साथ मैत्री और वैर न करे, क्योंकि अङ्गार (आग का गोला) गरम रहने पर हाथ को जलाता है, ठंढा होने पर (कोयला होकर) हाथ को काला कर देता है (अर्थात् दोनों रूप से दुर्जन दुःखदायी है।) ॥ ८१ ॥

अथवा स्थितिरियं दुर्जनानाम्—

व्याख्या—अथवा = यद्वा, इयम् = एषा, दुर्जनानाम् = दुष्टजनानाम्, स्थितिः = आचरणम्।

भाषार्थः—अथवा दुर्जन पुरुषों का यह स्वभाव ही है ॥

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥ ८२ ॥

अन्वयः—मशकः खलस्य सर्वम्, चरितम्, करोति, प्राक्, पादयोः पतति, (पश्चात्) पृष्ठमांसम् खादति, कर्णे कलम् किमपि शनैः विचित्रम् रौति, छिद्रम् निरूप्य अशङ्कः (सन्), सहसा प्रविशति ॥

व्याख्या—मशकः = कीटविशेषः, खलस्य = दुष्टजनस्य, सर्वम् = अखिलम्, चरितम् = आचरणम्, करोति = विदधाति, प्राक् = पूर्वम्, पादयोः = चरणयोः, पतति = पतनं करोति, पृष्ठमांसम् = देहपश्चाद्भागपललं, खादति = भक्षयति, कर्णे = श्रोत्रे, कलं = अव्यक्तमधुरं, किमपि = अनिर्वचनीयम्, शनैः = मन्दं मन्दम्, विचित्रम् = नैकविधम, रौति = शब्दायते, छिद्रम् = रन्ध्रम, निरूप्य = दृष्ट्वा, अशङ्कः (सन्) = शङ्कारहितः सन्, सहसा = झटिति, प्रविशति = प्रवेशं करोति।

टिप्पणी—पृष्ठमांसम् = पृष्ठस्य मांसम् तत् (ष० त०), अशङ्कः = अविद्यमाना शङ्का यस्य सस्तथोक्तः (नञ् बहु०), उत्तरपदलोपश्च। मशकः दुर्जनस्य सर्वं चरित्रं करोति, तथाहि—पूर्वं चरणयोः पतति, पृष्ठमासं खादति कर्णे मधुरप्रकारेण शनैः शनैः विचित्ररीत्या शब्दं करोति, छिद्रं दृष्ट्वा शङ्कारहिते प्रविशति सहसेति भावः ॥

भावार्थः—मच्छर पहले पैरों पर गिरता है, फिर पीठ के मांस को खाता है; कानों में मधर कुछ धीरे से विचित्र-सा शब्द करता है, और फिर (मौका) पाकर, निशंक होकर झट से प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार (वह) सब कुछ दुष्ट का चरित (व्यवहार) करता है ॥ ८२ ॥

तथा च—दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः—दुर्जनः प्रियवादी एतत्, च, विश्वासकारणम् न, 'यस्य' जिह्वाग्रे मधु तिष्ठति हृदि हालाहलम् विषम् 'तिष्ठति' ॥

व्याख्या—दुर्जनः=दुष्टो जनः, प्रियवादी=मधुरभाषणशीलः, एतत=इदम्, (प्रियवादित्वम्), विश्वासकारणम्=विस्रम्भहेतुः, न=नास्ति, 'यस्य', दुर्जनस्य, जिह्वाग्रे=रसनाग्रभागे, मधु=माधुर्यं प्रियवादित्वादि। तिष्ठति=वर्तते, हृदि=हृदयं, हालाहलम्=एतन्नामकमब्धिजमप्रतिक्रियं विषम् तत्तुल्यम्, नृशंसवचनरूपगरलम्, तिष्ठति=वर्तते ॥

टिप्पणी—दुर्जनः=दुष्टो जनः (गतिसमासः), प्रियवादी=प्रियं वदति तच्छीलः प्रिय+वद+णिनिः, (उपपदसमासः), विश्वासकारणम्=विश्वासस्य कारणम् तत (ष० त०), जिह्वाग्रे=जिह्वाया अग्रम् तत् तस्मिन् (ष० त०), दुर्जनस्य प्रियवादित्वेऽपि, विश्वासो न विधेयः। प्रियवादित्वं बालानां वञ्चनाय कथनमात्रं नाम। हृदये तु सागरोत्पन्नं 'हालाहल'नाम्ना प्रख्यातं प्रतिक्रियारहितं गरलम्. वर्तते, इतिभावः।

भावार्थः—दुर्जन प्रियवादी (मधुरभाषी) है यह विश्वास का कारण नहीं है। क्योंकि (दुर्जन के) जीभ के अग्रभाग में मधु रहता है, परन्तु हृदय में हलाहल विष रहता है ॥ ८३ ॥

अथ प्रभाते स क्षेत्रपतिलगुडहस्तस्तं प्रदेशम् आगच्छन् काकेनाऽवलोकितः। तमवलोक्य काकेन उक्तम्—'सखे मृग! त्वमात्मानं मृतवत्सन्दर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ, अहं तव चक्षुषी चञ्च्वा किमपि विलिखामि, यदा अहं शब्दं करोमि तदा त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे'। मृगस्तथैव काकवचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्ललोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः, अथाऽसौ—'आः स्वयं मृतोऽसि?'—इत्युक्त्वा मृगं बन्धनात् मोचयित्वा पाशान् सम्वरीतुं (संग्रहीतुं) सत्वरो (सयत्नो) बभूव। ततः कियद्दूरे अन्तरिते क्षेत्रपतौ स मृगः काकस्य शब्दं

श्रुत्वा सत्वरमुत्थाय पलायितः। तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिनां प्रकोपात् क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो व्यापादितः।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, प्रभाते = प्रातःकाले, क्षेत्रपतिः = केदारस्वामी लगुड्हस्तः, 'सन्' यष्टिकरः सन् , तं = पूर्वनिर्दिष्टम्, प्रदेशं = स्थानम्, आगच्छन् = आव्रजन् , काकेन = वायसेन, अवलोकितः = दृष्टः। तम् = मृगं, अवलोक्य, दृष्ट्वा, काकेन = वायसेन उक्तम्। सखे मृग ! = मित्र, हरिण, त्वम्, भवान् , आत्मानम् = स्वं, मृतवत् = मृतप्राणीव, सन्दर्श्य = दर्शयित्वा, वातेन = वायुना, उदरम् = कुक्षिम्, पूरयित्वा = प्रपूर्य, पादान् = चरणान् , स्तब्धीकृत्य = निश्चलान् , कृत्वा, तिष्ठ = स्थितो भव। अहम् = वायसः, तव = मृगस्य चक्षुषी = नेत्रे, चञ्च्वा = त्रोट्या, किमपि विलखामि = विलेखनं करोमि, यदा = यस्मिन् समये, अहं = काकः, शब्दं करोमि = ध्वनिं विदधामि, तदा = तस्मिन् समये त्वं = भवान् , उत्थाय = उत्थानं कृत्वा सत्वरं = शीघ्रं, पलायिष्यसे = पलायनं करिष्यसि। मृगः = हरिणः, काकवचनेन = वायसोक्त्या तथैव = तेन प्रकारेणैव, स्थितः = अवस्थितः। ततः = अनन्तरम्, हर्षोत्फुल्ललोचनेन = आनन्दविकसितनयनेन, क्षेत्रपतिना = केदारस्वामिना, तथाविधः = तादृशः, मृगः = हरिणः, आलोचितः = दृष्टः। अथ = अनन्तरम्, असौ = क्षेत्रपतिः। आः = आश्चर्यं, स्वयं = स्वतः, मृतः = निधनं प्राप्तः। असि = वर्तसे, इति = एवम्, उक्त्वा = कथयित्वा, मृगं = हरिणं, बन्धनात् = संयमनात् , मोचयित्वा = उन्मुच्य, पाशात् = जालात् , संवरीतुं = संग्रहीतुम्, सयत्नः = सप्रयासः, प्रयासयुक्तः, बभूवः = अभवत्। ततः = अनन्तरम्, क्षेत्रपतौ = केदारस्वामिनि, कियद्दूरे = कियद्विप्रकृष्टे, अन्तरिते = तिरोहिते, सः = पूर्वोक्तः, मृगः = हरिणः, काकस्य = वायसस्य, शब्दं = ध्वनिं, श्रुत्वा = आकर्ण्य, सत्वरम् = शीघ्रं, उत्थाय = उत्थान कृत्वा, पलायितः = पलाय्यगतः। तम्, मृगम् = हरिणं, उद्दिश्य = लक्ष्यीकृत्य, प्रकोपात = अतिक्रोधात् , क्षिप्तेन = प्रेरितेन, लगुडेन = यष्ट्या, शृगालः = जम्बुकः, व्यापादितः = मारितः।

टिप्पणी—क्षेत्रस्य पतिः क्षेत्रपतिः (ष० त०), लगुडहस्तः = लगुडः हस्ते यस्य सः (व्य० बहु०), मृतवत् = मृतेन तुल्यं मृत + वतिः। काकवचनेन = काकस्य वचनं तत् तेन (ष० त०), हर्षोत्फुल्ललोचनेन = हर्षेण उत्फुल्ले, हर्षोत्फुल्ले (तृ० त०), ते लोचने यस्य सः तेन (बहु०), प्रकोपात् = प्रकृष्टः कोपस्तस्मात (गतिस०)।

भाषार्थः—इसके बाद प्रातःकाल में क्षेत्रपति (खेत के मालिक) को हाथ में लगुड (लाठी) लेकर उसी स्थान में आते हुए कौआ ने देखा। उसे देखकर, कौआ बोला—'मित्र मृग ! तू मृतक प्राणी की तरह अपने को दिखला कर वायु से पेट

को फुलाकर पैरों को निष्क्रिय बनाकर पड़े रहो। मैं अपनी चोंच से तेरे नेत्रों को ज़रा-सा खोदूंगा (चोंच मारता रहूँगा)। जब मैं शब्द करूं, तब तुम शीघ्र उठकर भाग जाना।' मृग उसी प्रकार कौआ के कथनानुसार पड़ा रहा। तब हर्ष से विकसित नेत्रवाले क्षेत्र के स्वामी ने वैसे ही (मृतवत् पड़े हुए) मृग को देखा। तब उसने 'ओह ! तू स्वयं मर गया है। ऐसा कहकर, मृग को बन्धन से छुड़ाकर पाशों को इकट्ठा करने के लिये जल्दी करने लगा। तब खेत के मालिक के कुछ दूर हटने से ओझल होने पर वह मृग कौआ का शब्द सुनकर शीघ्र उठकर भाग गया। उसको (मृग को) लक्ष्य करके क्रोध में आकर फेंकी गई उस क्षेत्रपति की लाठी से वह सियार मारा गया॥

तथा चोक्तं—त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते ॥ ८४ ॥

अन्वयः—अत्युत्कटैः पापपुण्यैः त्रिभिः वर्षैः त्रिभिः मासैः त्रिभिः पक्षैः त्रिभिः दिनैः इह एव फलम्, अश्नुते ॥

व्याख्या—अत्युत्कटैः = अतितीव्रैः, पापपुण्यैः = कल्मषधर्मैः, त्रिभिः=त्रिसंख्यकैः, वर्षैः = हायनैः, त्रिभिः = त्रिसंख्यकैः, मासैः, त्रिभिः = त्रिसंख्यकैः पक्षैः, त्रिभिः = त्रिसंख्यकैः, दिनैः = दिवसैः, इहैव = अस्मिन्नेव जन्मनि, फलम् = स्वकृतकर्मणां परिणामम्, अश्नुते = भुङ्क्ते, पापपुण्यकर्ता जनः, इति शेषः ।

टिप्पणी—पापपुण्यैः = पापानि च पुण्यानि च, तैः (द्वन्द्वः), अतितीव्राणां पापपुण्यानां फलम् अस्मिन्नेव जन्मनि, वर्षत्रये, मासत्रये, वा पक्षत्रयेऽथवा दिनत्रये पुरुषो भुङ्क्ते, इति भावः ॥

भाषार्थः—अति तीव्र पाप या पुण्य के फल इसी जन्म में तीन वर्ष में अथवा तीन मास में या तीन पक्ष में या तीन दिन में भोगना पड़ता है ॥ ८४ ॥

अतोऽहं ब्रवीमि—'भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः' इत्यादि ।

भाषार्थः—इस कारण से मैं कहता हूँ—'भक्ष्य और भक्षक की प्रीतिः' इत्यादि।

काकः पुनराह—

भाषार्थः—(कौआ फिर बोला)—

भक्षितेनाऽपि भवता नाऽहारो मम पुष्कलः ।
त्वयि जीवति जीवामि चित्रग्रीव इवाऽनघ ! ॥ ८५ ॥

अन्वयः—हे अनघ ! भवता भक्षितेन अपि मम पुष्कलः आहारः न, त्वयि जीवति चित्रग्रीव इव जीवामि ।

व्याख्या—हे अनघ != निष्पाप, भवता = त्वया, भक्षितेनापि = खादितेनापि, स्वभक्षणेनापि, इत्यर्थः। मम = वायसस्य, पुष्कलः = पर्याप्तः, आहारः = भोजनम् न = न भविष्यति। किन्तु त्वयि = भवति, जीवति = प्राणान् दधति (सति), जीवामि = जीवनं दधामि, चित्रग्रीव इव = कपोतराज इव।

टिप्पणी—हे अनघ != अविद्यमानः, अघो यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (नञ् बहु०), हे निष्पाप, मूषिकराज, भवतो भक्षणेनापि पर्याप्त्या मम भोजनं न भविष्यति, त्वयि जीवति सति, चित्रग्रीव इव महताऽऽनन्देन सुखानुभवं करिष्यामि, इति भावः॥

भावार्थः—हे अनघ ! आपको खाने पर भी मेरा भरपेट भोजन नहीं होगा। परन्तु तुम्हारे जीवित रहने पर, मैं भी चित्रग्रीव के समान (बन्धन मुक्त होकर) जीवन धारण करूँगा॥ ८५॥

अन्यच्च—तिरश्चामपि विश्वासो दृष्टः पुण्यैककर्मणाम्।
सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते॥ ८६॥

अन्वयः—पुण्यैककर्मणाम्, तिरश्चामपि विश्वासः, दृष्टः। सताम्, साधुशीलत्वात् स्वभाव = न निवर्तते।

व्याख्या—पुण्यैककर्मणाम् = धार्मिकाणाम्, तिरश्चाम् अपि, पक्षीपश्वादीनामपि, विश्वासः=विश्रम्भः, दृष्टः=अवलोकितः। तत्र हेतुमाह—सतामिति। हि=यस्माद्धेतोः, सताम् सज्जनानाम्, साधुशीलत्वात् = परोपकारकप्रकृतित्वात्, स्वभावः = प्रकृतिः, न निवर्तते = निवृत्तो न भवति। यथाऽस्ति तथैव तिष्ठति, इति यावत्।

टिप्पणी—पुण्यैककर्मणाम् = पुण्यम् एव एकं कर्म येषां ते पुण्यकर्माणस्तेषाम्। (बहु०), साधुशीलत्वात् = साधु शीलं येषां ते साधुशीलाः (बहु०), तेषां भावः साधुशीलत्वम्, तस्मात्। धर्माचरणशीलानां पशुपक्षिणामपि विश्वासोऽवलोकितोऽस्ति। यतः प्रकृत्या चारवो सज्जना भवन्ति, तेषां स्वभावो यादृशोऽस्ति तादृश एव तिष्ठति। न कदाचित् विपरिणमते, इति भावः।

भावार्थः—पुण्याचरणशील पशु-पक्षियों का भी विश्वास देखा गया है, क्योंकि सज्जनों के परोपकारी स्वभाव होने से (उनका) स्वभाव नहीं बदलता॥ ८६॥

किञ्च—साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम्।
न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया॥ ८७॥

अन्वयः—प्रकोपितस्य अपि साधोः मनः विक्रियाम् न आयाति, सागराम्भः तृणोल्कया तापयितुम् न हि शक्यम्, (भवति)।

व्याख्या—प्रकोपितस्य = उत्पादितरोषस्य, साधोः = सज्जनस्य, मनः = चित्तम्, विक्रियाम् = विकारभावम्, न आयाति = न समधिगच्छति, हि=यतः, सागराम्भः=

समुद्रसलिलम्, तृणोल्कया = तृणाग्निना, तापयितुम् = सन्तप्तं कर्तुम्, न शक्यम् = न क्षमम् ॥

टिप्पणी—सागराम्भः = सागरस्य, अम्भस्तत् (ष० त०), तृणोल्कया=तृणस्य उल्का तया (ष० त०), यथा समुद्रजलम्, तृणपुञ्जाग्निना, उष्णं कर्तुं न शक्यते, तद्वत् क्रोधानलेन सत्पुरुषस्वभावोऽपि न विपरिणमते, यादृशोऽस्ति तादृश एव तिष्ठतीति भावः ।

भाषार्थः—प्रकुपित भी साधु का मन विकृत नहीं होता; क्योंकि तृण की मंद आग से समुद्र का जल तपाया नहीं जा सकता ॥ ८७ ॥

हिरण्यको ब्रूते—'चपलस्त्वम्, चपलेन सह स्नेहः सर्वथा न कर्तव्यः'।

व्याख्या—हिरण्यकः = मूषिकराजः, ब्रूते = वदति, चपलः = चञ्चलः, त्वम् = भवान्, चपलेन = चञ्चलेन, सह = साकम्, स्नेहः = प्रेमा, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, न कर्तव्यः = नानुष्ठेयः ।

भाषार्थः—हिरण्यक कहता है—तुम चञ्चल हो, चञ्चल के साथ स्नेह बिलकुल नहीं करना चाहिए ।

तथा चोक्तं—मार्जारो महिषो मेषः काकः कापुरुषस्तथा ।
विश्वासात् प्रभवन्त्येते विश्वासस्तत्र नो हितः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—मार्जारः महिषः मेषः काकः तथा कापुरुषः एते विश्वासात् प्रभवन्ति, तत्र विश्वासः न हितः ।

व्याख्या—मार्जारः = बिडालः, महिषः = कासरः, 'लुलायो महिषो, वाहद्विषत् कासरसैरिभाः, इत्यमरः । मेषः = उरणः; काकः = वायसः, कापुरुषः = नराधमः, एते = इमे, विश्वासात् = विश्रम्भात्, प्रभवन्ति = स्वकार्यसाधनसमर्थाः भवन्ति । तत्र = तेषु, पूर्वोक्तमार्जारादिषु, विश्वासः = विश्रम्भः, न हितः = हितकारको न भवति ।

टिप्पणी—मार्जारमहिषकाकमेषनराधमानां विश्वासो न कर्तव्यः, तेषु विश्वासे कृतेऽहितकारकत्वमेव सिद्ध्येदिति भावः ।

भाषार्थः—बिलाव, भैंसा, भेड़, कौआ तथा कायर पुरुष ये विश्वास करने से ही (अपने कार्यसाधन में) प्रबल होते हैं । अतः इन पर विश्वास हितकारक नहीं होता है ॥ ८८ ॥

किञ्चान्यत्-'शत्रुपक्षो भवानस्माकम् । शत्रुणा सन्धिर्न विधेयः' ।

व्याख्या—किञ्च = किमपि, अन्यत् = अपरम्, भवान् = त्वम्, अस्माकम् = मूषिकाणाम्, शत्रुपक्षः = शत्रोः, पक्षः शत्रुपक्षः, वैरिदलीयः, शत्रुणा = रिपुणा, सह, सन्धिः = पणबन्धः, न विधेयः = न कर्तव्यः ।

भाषार्थः—कुछ और भी—आप हमारे शत्रुओं के दल के हैं। अतः शत्रु से मेल नहीं करना चाहिए।

उक्तञ्चैतत्—शत्रुणा न हि सन्दध्यात् संश्लिष्टेनाऽपि सन्धिना।
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ॥ ८९ ॥

अन्वयः—सुश्लिष्टेन अपि सन्धिना शत्रुणा न हि सन्दध्यात्, सुतप्तम् अपि पानीयं पावकम् शमयति, एव।

व्याख्या—सुश्लिष्टेन = सुदृढेन, अपि, सन्धिना = पणबन्धेन, शत्रुणा = रिपुणा, 'सह', न सन्दध्यात् = नैव सम्मिलेत्, तदेव दृष्टान्तेन दृढयति–सुतप्तम् अपि = अत्युष्णमपि, पानीयम् = सलिलम्, पावकम् = अनलम्, शमयति = निर्वापयति, एव = नूनम् ॥

टिप्पणी—सुश्लिष्टेन = सुष्ठुश्लिष्टः, सुश्लिष्टस्तेन (गतिसमासः), सुतप्तम् = सम्यक् तप्तम्, सुतप्तम् (गतिसमासः), शत्रुणा सह सुदृढतया सन्धिकरणेऽपि तस्य विश्वासः कदापि न करणीयः। यतः अत्युष्णम् अपि जलम्, अग्निशान्त- कारको भवति, इति भावः।

भाषार्थः—स्थायी संधि होने पर भी शत्रु के साथ मेलजोल नहीं करना चाहिए क्योंकि खूब तपाया हुआ भी पानी आग को बुझाता ही है ॥ ८९ ॥

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ ९० ॥

अन्वयः—विद्यया अलङ्कृतः सन् अपि दुर्जनः परिहर्तव्यः, मणिना भूषितः असौ सर्पः किम्, भयङ्करः, न (भवति)।

व्याख्या—विद्यया = शास्त्रीयज्ञानेन, अलङ्कृतः = युक्तः सन् अपि, दुर्जनः = दुष्टजनश्चेत्, तदा सः, परिहर्तव्यः = त्यक्तव्यः। तथाहि—मणिना = शिरोरत्नेन, भूषितः = अलङ्कृतः, असौ = अयम्, सर्पः = नागः, किम् = इति प्रश्ने (त्वां पृच्छामि), भयङ्करः = भयावहः, न = न भवति, अर्थात् भवत्येव।

टिप्पणी—विद्यावानपि दुर्जनः त्यागयोग्य एव। कुतः ? मणिधरात् सर्पात् को न बिभेति, सर्वेषां भयं ददात्येव।

भाषार्थः—विद्या (ज्ञान) से अलंकृत होने पर भी दुर्जन छोड़ देने लायक है। मणि (रत्न) से भूषित वह साँप क्या भयङ्कर नहीं होता ? ॥ ९० ॥

यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शक्यमेव तत्।
नोदके शकटं याति न च नौर्गच्छति स्थले ॥ ९१ ॥

अन्वयः—यत् अशक्यम् तत् शक्यम् न, यत् शक्यम्, तत् शक्यम् एव। शकटं उदके न यान्ति, नौः स्थले न गच्छति।

व्याख्या—यत् = यत्कार्यम्, अशक्यम् = असाध्यम्, तत् = कार्यम्, शक्यम् = साध्यम्, न=न भवति। यत्=कार्यम्, शक्यम्=साध्यम्, तत्=कार्यम्, शक्यम् एव= निश्चयेन साध्यम्, भवति शकटम् = अनः, उदके=अगाधजले, न याति=न गच्छति, नौः = तरी, नौका, स्थले = भूतले, न गच्छति = न याति।

टिप्पणी—अशक्यम् = न शक्यम्, तत् (नञ् त०), असम्भावितं कार्यं कदापि भवितुं न शक्नोति। यत् सम्भावितम् तद् भवितुं शक्नोति, यथा, शकटमगाधजले न गच्छति, नौका स्थले न गच्छति, इति भावः।

भावार्थः—जो कार्य नहीं होने वाला है वह नहीं हो सकता। जो होने वाला है वह होता ही है। गाड़ी पानी में नहीं चलती और नौका भी जमीन पर नहीं चलती है ॥ ९१ ॥

अपरञ्च—महताऽप्यर्थसारेण यो विश्वसिति शत्रुषु।
भार्यासु च विरक्तासु तदन्तं तस्य जीवनम् ॥ ९२ ॥

अन्वयः—यः महता अपि अर्थ सारेण शत्रुषु विश्वसिति, विरक्तासु भार्यासु च 'विश्वसिति' तदन्तम्, तस्य जीवनम्।

व्याख्या—यः = जनः, महता अपि = गुरुणा अपि, अर्थसारेण = इमे मे वञ्चनं कदापि न करिष्यन्ति इति भावनया, शत्रुषु = रिपुषु, विरक्तासु = स्नेहहीनासु, भार्यासु = पत्नीषु, विश्वसिति = विश्वासं करोति, तस्य = विश्वस्तजनस्य, जीवनम्= प्राणधारणम्, तदन्तम् = विश्वासान्तम्, 'भवतीति शेषः'।

टिप्पणी—अर्थसारेण = अर्थस्य सारस्तेन (ष० त०), तदन्तम् = तेन (विश्वासेन), अन्तः नाशः, यस्य तत। (व्य० बहु०)। यः पुरुषः 'इमे मां कदापि न प्रतारयिष्यन्तीति विश्वासेन शत्रुषु, वा स्नेहहीनासु, आत्मनः पत्नीषु, विश्वासं करोति, विश्वस्तजनस्य जीवनघातकः विश्वास एवास्ति, इति भावः।

भावार्थः—जो कोई व्यक्ति बहुत बड़े प्रयोजन से या धनादि के लाभ से शत्रुओं में और विरक्त रहनेवाली स्त्रियों में विश्वास करता है उसका जीवन उसी से (विश्वास से) नष्ट हो जाता है ॥ ९२ ॥

लघुपतनको ब्रूते—'श्रुतं मया सर्वं, तथाऽपि ममैतावानेव सङ्कल्पः यत् त्वया सह सौहृद्यम् अवश्यं करणीयमिति। अन्यथा अनाहारेणाऽऽत्मानं तव द्वारि व्यापादयिष्यामीति'।

व्याख्या—लघुपतनकः = तन्नामकः काकः, ब्रूते=वदति—मया=काकेन, सर्वम्= अखिलम्, श्रुतम् = आकर्णितम्, तथापि = तेन प्रकारेणापि (सर्वस्मिन् श्रुतेऽपि), मम = काकस्य, एतावानेव = इयानेव, संकल्पः = मनोरथः यत्; त्वया = मूषिकेण, सह, सौहृद्यम् = मित्रत्वम्, अवश्यम् = नूनम्, करणीयम् = विधातव्यम्, अन्यथा =

यदि मैत्रीं न करिष्यसि तदा, तव = भवतः, द्वारि = द्वारे, अनाहारेण = अनशनेन, उपवासादिना, आत्मानम् = स्वशरीरम्, व्यापादयिष्यामि = नाशयिष्यामि ॥

भावार्थः—लघुपतनक कहता है—'मैंने सब सुना, फिर भी मेरा इतना ही संकल्प है कि आपके साथ मित्रता अवश्य करनी चाहिए। नहीं तो, आपके दरवाजे पर, अनशन करके प्राणों को त्याग दूंगा' ॥

तथा हि—मृद्धटवत् सुखभेद्यो दुःसन्धानश्च दुर्जनो भवति ।
सुजनस्तु कनकघटवद् दुर्भेद्यश्चाशु सन्धेयः ॥ ९३ ॥

अन्वयः—दुर्जनः मृद्धटवत् , सुखभेद्यः दुःसन्धानश्च भवति, सुजनः तु, कनकघटवत् , दुर्भेद्यः आशु सन्धेयः ।

व्याख्या—दुर्जनः = दुष्टप्रकृतिकः, मृद्धटवत् = मृत्तिकाकलशतुल्यम्, सुखभेद्यः = क्लेशमन्तरेणभङ्क्तुमर्हः; दुःसन्धानश्च = दुर्लभसंयोगश्च, भवति । सुजनस्तु = सज्जनस्तु, कनकघटवत् = सुवर्णकलश इव, दुर्भेद्यः = महताऽऽयासेन भेत्तुं योग्यः, आशु = तूर्णम्, सन्धेयः = संयोज्यः, भवति ॥

टिप्पणी—मृद्धटवत् = मृदो घटः मृद्धटः (ष० त०), मृद्धटेन तुल्यं मद्धटवत्, मृद्धट + वतिः । दुःसन्धानः = दुष्करं सन्धानं यस्य सः (बहु०), दुष्टो जनः दुर्जनः (गतिसमासः), शोभनो जनः सुजनः (गति स०), कनकस्य घटः कनकघटः (ष० त०), तेन तुल्यम्, कनकघट + वतिः । सुखेन भेद्यः सुखभेद्यः (तृ० त०), दुःखेन भेद्यः दुर्भेद्यः (तृ० त०), सन्धातुं शक्यः सन्धेयः । दुर्जनः मृत्तिकाघट इव अनायासेन भेत्तुं योग्यः सन् दुःखेन संयोज्यो भवति, सज्जनस्तु सुवर्णकलश इव, दुःखेन, भेत्तुं योग्यः सत्वरं संयोज्यो भवतीति भावः ।

भावार्थः—दुर्जन मिट्टी के घड़े की भांति सुख से फूटने वाला और दुःख से जुड़ने वाला होता है। किन्तु सज्जन सुवर्ण के घड़े की तरह दुर्भेद्य (दुःख से भेदन किया जाने वाला) और शीघ्र ही जोड़ दिया जाने वाला होता है ॥ ९३ ॥

किञ्च—द्रवत्वात् सर्वलोहानां निमित्ताद् मृगपक्षिणाम् ।
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां सङ्गतं दर्शनात् सताम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—सर्वलोहानां द्रवत्वात् , मृगपक्षिणां निमित्तात् , मूर्खाणाम् भयात्, लोभात्, च सताम् दर्शनात् सङ्गतम् 'भवति' ।

व्याख्या—सर्वलोहानाम् = रजतकाञ्चनादिधातूनाम्, द्रवत्वात् = द्रवीकरणात् , (सङ्गतम् = मेलनम् भवति), मृगपक्षिणाम् = तिरश्चाम्, निमित्तात् = कस्माच्चिद्धेतोः, मूर्खाणाम् = मूढानाम्, भयात् = भीतेः, लोभात् = लोलुपत्वात् , सताम् = सज्जनानाम्, दर्शनात् = मिथोऽवलोकनात् , सङ्गतं = सम्मेलनम् भवति ॥

टिप्पणी—द्रवस्य भावः द्रवत्वं तस्मात् , द्रव + त्व । सर्वे च ते लोहाः सर्व-

लोहास्तेषां (क० धा०), मृगाश्च पक्षिणश्च, मृगपक्षिणस्तेषाम् (द्वन्द्वः), समस्ततैजसपदार्थानां सम्मेलनम् भवति, तिरश्चाम् (पशुपक्षिणाम्) कस्माच्चिद्धेतोः सम्मेलनम् भवति, मूर्खाणाम्, भीत्या, लोभाद्वा, सज्जनानां मिथोऽवलोकनादेव सम्मेलनम् भवति ॥

भावार्थः—सब धातुओं (सुवर्ण, चाँदी इत्यादि) का पिघलाने से, सम्मिलन होता है और पशुपक्षियों का किसी निमित्त से मिलन होता है; मूर्खों का भय अथवा लोभ से तथा सज्जनों का दर्शनमात्र से मिलाप होता है ॥ ९४ ॥

किञ्च—नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाऽऽकारा बहिरेव मनोहराः ॥ ९५ ॥

अन्वयः—हि सुहृज्जनाः, नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते, अन्ये बदरिकाकाराः, बहिः एव मनोहराः 'दृश्यन्ते' ।

व्याख्या—सुहृज्जनाः = सज्जनाः, नारिकेलसमाकाराः = लाङ्गलीतुल्याकृतयः, 'नालिकेरस्तु लाङ्गली' इत्यमरः । अन्ये = दुर्जनाः बदरिकाकाराः = बदरीफलाकृतयः, बहिरेव = बाह्यभाग एव, मनोहराः = मृदुलाः, अन्तस्तले कठोराः, दृश्यन्ते = अवलोक्यन्ते ॥

टिप्पणी—सुहृज्जनाः = सुहृदश्च ते जनाः (क० धा०), नारिकेलसमाकाराः = नारिकेलेन समः नारिकेलसमः (तृ० त०), नारिकेलसमः (अन्तः मृदुः, बहिः कठोरः) आकारः येषां ते (बहु०), बदरिकाकाराः = बदरिकाया आकार इव आकारो (बहिर्मृदुलः, अन्त कठोरः) येषां ते (बहु०), मनसः हराः मनोहराः (ष० त०), सज्जनाः, अन्तः मृदुलाः, बहिः कठोराः, नारिकेलसदृशाः, एवं दुर्जनाः बहिरेव मृदुलाः अन्तस्तु कठोराः बदरीफलसदृशाः अवलोक्यन्ते, इति भावः ॥

भावार्थः—सज्जन पुरुष नारियल के फल की तरह (बाहर से कठोर परन्तु अन्दर से कोमल) दिखाई देते हैं अन्य लोग (दुर्जन लोग) बेर के फल की तरह बाहर से ही मनोहर दिखाई पड़ते हैं ॥ ९५ ॥

अन्यच्च—स्नेहच्छेदेऽपि साधूनां गुणा नाऽऽयान्ति विक्रियाम् ।
भङ्गेऽपि हि मृणालानामनुबध्नन्ति तन्तवः ॥ ९६ ॥

अन्वयः—साधूनाम्, स्नेहच्छेदे अपि गुणाः विक्रियाम् न आयान्ति, हि, मृणालानाम् भङ्गे अपि तन्तवः अनुबध्नन्ति ॥

व्याख्या—साधूनाम् = सज्जनानाम्, स्नेहच्छेदेऽपि = प्रेमभङ्गेऽपि, गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः, विक्रियाम् = अन्यथा भावम्, नायान्ति = न प्राप्नुवन्ति । हि = यतः, मृणालानाम् = कमलनालानाम्, भङ्गेऽपि = छेदेऽपि, तन्तवः = तदन्तस्थ-सूक्ष्मसूत्राणि, अनुबध्नन्ति = सुश्लिष्टा एव तिष्ठन्ति ॥

टिप्पणी—स्नेहच्छेदे = स्नेहस्य छेदः; तस्मिन्, (ष० त०), विक्रियाम् = विरुद्धा क्रिया, विक्रिया ताम् (गतिसमासः), 'सज्जनानां दयादाक्षिण्यादि- गुणाः प्रेमन्यूनत्वेऽपि विकारभावं न प्राप्नुवन्ति, यथा कमलनालानां भङ्गेऽपि तदन्तस्थसूक्ष्मसूत्राणि, संश्लिष्टा एव तिष्ठन्तीति भावः ॥

भाषार्थः—सज्जनों के गुण प्रेम के विनाश होने पर भी विकार भाव को प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि कमल-नाल टूट जाने पर भी (उसके अन्दर के सूक्ष्म) तन्तु परस्पर मिले हुए ही रहते हैं ॥ ९६ ॥

अन्यच्च—शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः ।
दाक्षिण्यञ्चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥ ९७ ॥

अन्वयः—शुचित्वम्, त्यागिता, शौर्यम्, सुखदुःखयो सामान्यम्, दाक्षिण्यम्, अनुरक्तिः च सत्यता च सुहृद्गुणाः 'सन्ति' इति शेषः ।

व्याख्या—शुचित्वम् = पवित्रता, त्यागिता = दानम्, शौर्यम् = शूरता, सुख- दुःखयोः = आनन्दे कष्टे च, सामान्यम् = समानता, दाक्षिण्यम् = उदारता, अनु- रक्तिः = अनुरागः, सत्यता = तथ्यता, एते पूर्वोक्ताः सुहृद्गुणाः = मित्रगुणाः 'भवन्तीति' शेषः ।

टिप्पणी—शुचेर्भावः शुचित्वम्, शुचि + त्व । त्यागः, अस्यास्तीति त्यागी, त्याग + इनिः । तस्य, त्यागिनो भावः, त्यागिता, त्यागिन् + तल्, शूरस्य भावः शौर्यम्, शूर + ष्यञ् । सुखदुःखयोः = सुखं च दुःखं च सुखदुःखे तयोः (द्वन्द्वः), सामान्यम् = समानस्य भावः, समान + ष्यञ् । दाक्षिण्यम् = दक्षिणस्य भावः दाक्षिण्यम्, दक्षिण + ष्यञ्, सत्यस्य भावः सत्यता, सत्य + तल् । सुहृदो गुणाः सुहृद्गुणाः (ष० त०), निष्कपटत्वदानशूरतासुखदुःखसमानतोदारताऽनुराग- सत्यताः, इमे मित्रगुणाः सन्तीति भावः ।

भाषार्थः—पवित्रता, दान, शूरता, सुख और दुःख में समानता, उदारता, अनुराग (प्रेम) और सत्यता (सच्चाई) ये मित्र के गुण हैं ॥

'एतैर्गुणैरुपेतो भवदन्यो मया कः सुहृत् प्राप्तव्यः ?' इत्यादि तद्वचन- माकर्ण्य हिरण्यको बहिः निःसृत्याऽऽह—'आप्यायितोऽहं भवतामेतेन वचनामृतेन'।

व्याख्या—एतैः = एभिः, गुणैः = शुचित्वादिभिः, उपेतः = युक्तः, भवदन्यः = त्वद्भिन्नः, कः सुहृत् = को नाम मित्रम्, मया = लघुपतनकेन, प्राप्तव्यः = आसादनीयः, इत्यादि । तद्वचनम् = काकोक्तिम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, हिरण्यकः = मूषिकराजः, बहिः = विवराद् बाह्यप्रदेशे, निःसृत्य = निष्क्रम्य, आह = वदति—अहम् = हिरण्यकः,

भवताम् = युष्माकम्, अनेन, एतेन, वचनामृतेन = वाक्यसीधुना, आप्यायितः = सन्तोषितः, 'अस्मीति शेषः' ।

टिप्पणी—भवदन्यः = भवतः अन्यः भवदन्यः (पं० त०), तस्य वचनं तद्वचनम् तत् (ष० त०), वचनामृतेन = वचनं, अमृतमिव, इति वचनामृतं तेन (उपमितसमासः)।

भाषार्थः—'इन (पूर्वोक्त पवित्रतादि) गुणों से युक्त आपके सिवा मुझे कौन मित्र प्राप्त करने योग्य है?' इत्यादि, उस कौवा के वचन को सुनकर हिरण्यक बाहर निकल करके बोला—'मैं आपके इस वचनामृत से सन्तुष्ट हूँ'।

तथा चोक्तं—घर्मार्तं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं न मुक्तावली,
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम्।
प्रीत्यै सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः.
सद्युक्त्या च परिष्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम् ॥ ९८ ॥

अन्वयः—सद्युक्त्या परिष्कृतम्, सुकृतिनाम् आकृष्टिमन्त्रोपमम् च सज्जनभाषितम् यथा चेतसः प्रीत्यै प्रायः प्रभवति, तथा घर्मातम् (कर्म), सुशीतलजलैः (करण का०), स्नानम् (कर्तृ) न सुखयति, मुक्तावली न सुखयति, प्रत्यङ्गम् अर्पितम् श्रीखण्डविलेपनम् अपि न सुखयति ।

व्याख्या—सद्युक्त्या = उत्तमदृष्टान्तादिना, परिष्कृतम् = संस्कृतम्, सुकृतिनाम् = पुण्यवताम्, आकृष्टिमन्त्रोपमम् = वशीकरणमन्त्रतुल्यम् च, सज्जनभाषितम्, महापुरुषवचनम्, यथा = यादृक्, चेतसः मनसः, प्रीत्यै = हर्षोत्पादनाय, प्रायः = बाहुल्येन, प्रभवति = समर्थम् भवति । तथा = तादृक् घर्मार्तम्, आतपपीडितम्, सुशीतलजलैः = शिशिरसलिलैः, स्नानम् = मज्जनम्, न सुखयति = सुखं न ददाति, मुक्तावली = मुक्तामाला, (अपि न सुखं ददाति), प्रत्यङ्गम् = देहस्य प्रत्यवयवम्, अर्पितम् = आरोपितम्, श्रीखण्डविलेपनम् = चन्दनलेपनम्, (अपि न सुखयति)।

टिप्पणी—सद्युक्त्या=सती चासौ युक्तिः सद्युक्तिः तया (क० धा०), आकृष्टिमन्त्रोपमम् = आकृष्ट्यै मन्त्रम् (च० त०), तत्, उपमा यस्य तत्, आकृष्टिमन्त्रोपमम् (बहु०), सज्जनभाषितम् = सन् चासौ जनः सज्जनः (क० धा०), सज्जनस्य भाषितम्; सज्जनभाषितम् (ष० त०), घर्मार्तम् = घर्मेण आर्तस्तम् (तृ० त०), सुशीतलजलैः = शीतलानि तानि जलानि, शीतलजलानि (क० धा०), शोभनानि शीतलजलानि, तैः ('गतिस०), प्रत्यङ्गम् = अङ्गमङ्गं प्रतीति प्रत्यङ्गम् (अव्ययीभावः), श्रीखण्डविलेपनम् = श्रीखण्डस्य विलेपनम्, तत् (ष० त०)। शार्दूलविक्रीडितं नामच्छन्दः। उत्तमयुक्त्या संस्कृतम्, पुण्यशील-

जनानाम्, वशीकरणमन्त्रतुल्यम् सज्जनभाषणं यथा चित्तं प्रसन्नं कर्तुं समर्थं भवति तथा आतपपीडितजनाय अतिशीतलजलैः स्नानम् न सुखं ददाति, एवं मुक्तानां माला, देहस्य प्रत्यङ्गे विलेपितं चन्दनमपि न सुखं ददातीति भावः ॥

भावार्थः—सत् युक्तियों (उत्तम दृष्टान्तादि) से संस्कार किया हुआ एवं पुण्यशील जनों के वशीकरण मन्त्र के समान सज्जन का भाषण जिस प्रकार चित्त की प्रसन्नता के लिए प्रायः उपयुक्त होता है, उस तरह घाम से पीड़ित प्राणी को शीतल जल से स्नान नहीं सुख देता, मोतियोंकी माला नहीं सुख देती तथा देह के प्रत्येक अवयव में पोता हुआ चन्दन भी सुख नहीं देता है ॥ ९८ ॥

अन्यच्च—रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् ॥ ९९ ॥

अन्वयः—रहस्यभेदः याच्ञा, नैष्ठुर्यम्, चलचित्तता, क्रोधः, निःसत्यता, द्यूतम्, एतत् मित्रस्य दूषणम् ॥

व्याख्या—रहस्यभेदः=गुप्तप्रकाशनम्, याच्ञा = अभ्यर्थना, धनादेः, नैष्ठुर्यम्= क्रूरता, चलचित्तता = अस्थिरमानसता, क्रोधः = कोपः, निःसत्यता = असत्यता, मिथ्यावादित्वम्, द्यूतम् = अक्षक्रीडनम्, एतत् = पूर्वोक्तम् सर्वम्, मित्रस्य=सुहृदः, दूषणम् = दोषः, अस्तीति शेषः ।

टिप्पणी—रहस्यभेदः = रहस्यस्य भेदः सः (ष० त०), निष्ठुरस्य भावः। निष्ठुर + ष्यञ्, चलचित्तता = चले च तत् चित्तं चलचित्तं तस्य भावः तत्ता। (क० धा०), भावार्थकतल्प्रत्ययः । निःसत्यता = निर्गतं सत्यं यस्मात् सः निःसत्यः (बहु०), तस्य भावः, निःसत्य + तल् । गुप्तमन्त्रप्रकाशनं धनादि याचना, क्रूरता चित्तस्य, अस्थिरता, क्रोधः, मिथ्याभाषित्वं, द्यूतक्रीडा च, एतत् मित्रस्य दूषणम् वर्तते ।

भावार्थः—गुप्त बात को प्रकट करना, धनादि की याचना, निष्ठुरता, चित्त की चञ्चलता, क्रोध, झूठ बोलना और जूआ खेलना, ये सब मित्र के अवगुण (दोष) हैं ॥ ९९ ॥

अनेन वचनक्रमेण तत् एकमपि दूषणं त्वयि न लक्ष्यते ।

व्याख्या—अनेन = पूर्वोक्तेन, तव वचनक्रमेण = उक्तिपरिपाट्या, त्वयि=भवति, एकमपि = एकसंख्यमपि, दूषणम् = दोषः, न लक्ष्यते, न दृश्यते ।

भावार्थः—इस (पूर्वकथित) बातचीत के क्रम से आप में एक भी वह दोष नहीं दिखाई दे रहा है ॥

यतः—पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुद्ध्यते ।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणाऽवगम्यते ॥ १०० ॥

अन्वयः—पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुद्ध्यते अस्तब्धत्वम् अचापल्यम्, प्रत्यक्षेण अवगम्यते ।

व्याख्या—पटुत्वम् = नैपुण्यम्, सत्यवादित्वम् = तथ्यभाषित्वम्, कथायोगेन = वार्ताप्रसङ्गेन, बुद्ध्यते = ज्ञायते, अस्तब्धत्वम् = अजाड्यम्, अचापल्यम् = स्थिरत्वम्, प्रत्यक्षेण = इन्द्रियजन्यज्ञानेन, अवगम्यते = ज्ञायते ॥

टिप्पणी—पटुत्वम् = पटोर्भावः पटुत्वम्, पटु + त्व, सत्यवादित्वम् = सत्यं वदतीति तच्छीलः, सत्य + वद् + णिनिः (उपपदसमासः), सत्यवादिनो भावः सत्यवादित्वम्, सत्यवादिन् + त्व, कथायोगेन = कथायाः योगस्तेन (ष० त०), अस्तब्धत्वम् = स्तब्धस्य भावः स्तब्धत्वम्, स्तब्ध + त्व । न स्तब्धत्वम्, अस्तब्धत्वम् (नञ् , त०), अचापल्यम्, चपलस्य भावः चापल्यम्, चपल + ष्यञ् , न चापल्यम्, अचापल्यम् (नञ् , त०), अक्ष्णोरभिमुखम्, प्रत्यक्षम्, (अव्ययीभावः), समासान्तः, अच् । वाक्चातुर्यं सत्यभाषणशीलता, इमे, वार्तालापेन प्रतीयेते, अजाड्यम् = चपलताभावश्च, प्रत्यक्षेणैव ज्ञायते, इति भावः ।

भावार्थः—चतुरता और सचाई वार्तालाप से प्रतीत होती है, लेकिन उत्साह और धीरता ये दोनों प्रत्यक्ष देखने से ही मालूम हो जाते हैं ॥ १०० ॥

अपरञ्च—अन्यथैव हि सौहार्दं भवेत् स्वच्छान्तरात्मनः ।
प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहतचेतसः ॥ १०१ ॥

अन्वयः—स्वच्छान्तरात्मनः सौहार्दम्, अन्यथा, एव भवेत्, शाठ्योपहतचेतसः वाणी अन्यथा प्रवर्तते ॥

व्याख्या—स्वच्छान्तरात्मनः = निर्मलान्तःकरणस्य, सौहार्दम् = मित्रता, अन्यथैव = अन्यप्रकारेणैव, भवेत् = स्यात् । शाठ्योपहतचेतसः = धूर्तताव्याप्तचित्तस्य, वाणी = वार्तालापः, अन्यथा = अन्यप्रकारेण, प्रवर्तते = प्रकटी भवति ॥

टिप्पणी—स्वच्छः अन्तरात्मा यस्य सस्तस्य (बहु०), सुहृदो भावः सौहार्दम् = सुहृद् + अण् । शाठ्येन उपहतं = शाठ्योपहतम् (तृ० त०), शाठ्योपहतं चेतो यस्य सस्तस्य (बहु०), निर्मलान्तःकरणवतः मित्रतायाः प्रकारः भिन्नो भवति । एतद्विपरीतः शठतादूषितचित्तयुक्तजनस्य वार्तालापस्य प्रकारः भिन्नोऽस्ति इति भावः ॥

भावार्थः—निर्मल अन्तःकरण वाले की मित्रता दूसरे प्रकार की होती है । इसके विपरीत शठता से दूषित चित्त वाले की वाणी दूसरे ही रूप की होती है ॥ १०१ ॥

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥ १०२ ॥

अन्वयः—दुरात्मनाम् मनसि, अन्यत् वचसि अन्यत्, कर्मणि, अन्यत्। महात्मनाम् मनसि एकम्, वचसि एकम्, कर्मणि एकम्, (भवतीति शेषः) ॥

व्याख्या—दुरात्मनाम् = दुष्यन्तःकरणानाम्, मनसि = चित्ते, अन्यत् = अपरम्, वचसि = वचने, अन्यत् = अपरम्, मनोभिन्नम्, कर्मणि = कार्ये, अपरम् = मनोवाग्भिन्नम्, भवति; महात्मनाम् = महापुरुषाणाम्, मनसि = चित्ते, एकम् = समानत्वम्, वचसि = वचने, एकम् = नापरम्, कर्मणि; कार्ये, एकम् = मनोवाक सदृशम्, 'भवतीति शेषः ॥

टिप्पणी--दुरात्मनाम् = दुष्टः आत्मा येषां ते दुरात्मानस्तेषां (बहु०), महात्मनाम् = महान् आत्मा येषां ते महात्मानस्तेषां (बहु०), दुष्टान्तःकरणाः जना यन्मनसि विचारयन्ति, तत् वाचा न वदन्ति। यच्च वाचा वदन्ति, तन्न कुर्वन्ति। ये च महापुरुषाः = यद् विचारयन्ति, तदेव वदन्ति, आचरन्ति च तदेव। दुष्टानां मनोवाक् कायव्यापाराः मिथो भिन्नाः, महात्मनां तु व्यापारसाम्यं वर्तते इति भावः।

भाषार्थः—दुरात्माओं के मन में दूसरा, वचन में कुछ दूसरा और कर्म में कुछ और ही दृष्टिगोचर होता है परन्तु महात्माओं के मन में एक, वचन में एक तथा कर्म (कार्य) में भी एक भाव रहता है ॥ १०२ ॥

'तद्भवतु भवतः अभिमतमेव' इत्युक्त्वा हिरण्यको मैत्र्यं विधाय भोजनविशेषैर्वायसं सन्तोष्य विवरं प्रविष्टः। वायसोऽपि स्वस्थानं गतः। ततः प्रभृति तयोः अन्योऽन्याहारप्रदानेन कुशलप्रश्नैः विश्रम्भालापैश्च कियत्कालोऽतिवर्तते। एकदा लघुपतनको हिरण्यकमाह—'सखे! वायसस्य कष्टतरलभ्याहरमिदं स्थानम्। तदेतत् परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तुमिच्छामि'। हिरण्यको ब्रूते—

व्याख्या—तत् = तस्माद्धेतोः भवतः = काकस्य, अभिमतम् = अभिलषितम्, भवतु = अस्तु, इत्युक्त्वा = इत्थमभिधाय, हिरण्यकः = मूषिकराजः, मैत्र्यम् = सौहार्दम्, विधाय = कृत्वा; भोजनविशेषैः = उत्तमभक्ष्यपदार्थैः वायसम् = काकम्, सन्तोष्य = सन्तुष्टं कृत्वा, विवरम् = बिलम्, प्रविष्टः = प्रविवेश; वायसोऽपि = काकोऽपि, स्वस्थानम् = निजकुलायम्, गतः = यातः। ततः प्रभृति = तस्मात् कालादारभ्य, तयोः=मूषिककाकयोः, अन्योन्याहारप्रदानेन=परस्परभोज्यवितरणेन, कुशलप्रश्नैः = क्षेमप्रश्नैः, विश्रम्भालापैश्च=विश्वासाभाषणैः, कियत्कालः = कश्चित्, समयः, अतिवर्तते = व्यत्येति, एकदा = एकस्मिन् समये, लघुपतनकः = काकः, हिरण्यकम् = मूषिकराजम्, आह = ब्रूते, सखे! मित्र! वायसस्य = काकस्य, कष्टतरलभ्याहारम् = अत्यायासप्राप्यभोजनम्, इदम् = एतत्, स्थानम् = स्थलम्,

वनमिति वा, तत्=तस्मात् कारणात्, एतत्=इदम्, स्थानम्=स्थलम्, परित्यज्य=विहाय, स्थानान्तरम्=अन्यत् स्थानम्, गन्तुम्=यातुम्, इच्छामि=वाञ्छामि, हिरण्यकः=मूषिकराजः, ब्रूते=कथयति ।

टिप्पणी—भोजनविशेषैः=भोजनानां विशेषास्तैः (ष० त०), स्वस्थानम्=स्वस्य स्थानम् तत् (ष० त०), अन्योन्याहारप्रदानेन=आहारस्य प्रदानम्, आहारप्रदानम् (ष० त०), अन्योन्यस्मै आहारप्रदानम् तेन (च० त०), विश्रम्भस्य, आलापाः, विश्रम्भालापाः, तैः (ष० त०), कुशलप्रश्नैः=कुशलस्य-प्रश्नास्तैः (ष० त०), कियत्कालः=कियाँश्चासौ कालः सः (क० धा०), कष्टतर-लभ्याहारम्=अतिशयेन कष्टं कष्टतरम्, कष्ट+तरप्, कष्टतरेण लभ्यः कष्ट-तरलभ्यः (तृ० त०), तादृशः आहारो यस्मिन् तत् तथोक्तम् (बहु०)।

भाषार्थः—'अच्छा, आपकी इच्छानुसार ही हो'—ऐसा कहकर, हिरण्यक मित्रता करके विशेष प्रकार के भोज्य पदार्थों से कौआ को तृप्त करके बिल में घुस गया। कौआ भी अपने निवास स्थान को चला गया। उस समय से लेकर उन दोनों का परस्पर आहार-वितरण से, कुशल-प्रश्नों से और विश्वासपूर्वक बातचीत से कुछ समय (दिन) बीतता है। एक दिन लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा—'मित्र, इस स्थान पर कौआ के लिये भोजन अतिकष्ट से मिलता है। अतः इस स्थान को त्याग कर दूसरे स्थान पर (मैं) जाना चाहता हूँ'। हिरण्यक कहता है—

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥ १०३ ॥

अन्वयः—दन्ताः केशाः, नखाः, नराः, स्थानभ्रष्टाः (सन्तः) न शोभन्ते। मतिमान् इति विज्ञाय स्वस्थानम्, न परित्यजेत्।

व्याख्या—दन्ताः=दशनाः, केशाः=कचाः, नखाः=करजाः, नराः=पुरुषाः, स्थानभ्रष्टा=निजनिवासस्थानच्युताः (सन्तः), न शोभन्ते=न रोचन्ते। मतिमान्=बुद्धिमान्, इति=अस्माद्धेतोः, विज्ञाय=सम्यग् विविच्य, स्वस्थानम्=निजवसतिम्, न परित्यजेत्=नो विमुञ्चेत्।

टिप्पणी—स्थानभ्रष्टाः=स्थानाद् भ्रष्टाः, ते, (पं० त०), मतिमान्=मतिः विद्यतेऽस्येति मतिमान्, मति+मतुप्। निजनिवासं विहाय, अन्यत्र गताः, दन्तकेशनखनराः शोभां न समधिगच्छन्ति, अतः धीमता स्वस्थानं न त्यक्तव्यम्, इति भावः॥

भाषार्थः—दाँत, केश, नख (नाखून) और नर (मनुष्य) ये स्थान भ्रष्ट होने पर नहीं शोभते हैं, यह विचार कर बुद्धिमान् आदमी अपना स्थान न छोड़े ॥ १०३ ॥

काको ब्रूते—'मित्र ! कापुरुषस्य वचनमेतत्'।

व्याख्या—काक इति। काकः = लघुपतनकः, ब्रूते = वदति, मित्र ! = सखे हिरण्यक !, कापुरुषस्य = भीरुपुरुषस्य, एतत्=इदम्, वचनम् = कथनम्।

भावार्थः—कौआ कहता है—'मित्र ! यह कायर पुरुष का वचन है।'

यतः—स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः॥ १०४॥

अन्वयः—सिंहाः सत्पुरुषाः, गजाः स्थानम् उत्सृज्य गच्छन्ति। काकाः कापुरुषाः मृगाः तत्र एव निधनम् यान्ति।

व्याख्या—सिंहाः=पञ्चाननाः, सत्पुरुषाः=सज्जनाः, विद्वज्जनाः, गजाः= हस्तिनः, स्थानम्=निजनिकेतनम्, उत्सृज्य=त्यक्त्वा, गच्छन्ति=प्रयान्ति, (जीविकार्थं, अन्यत्रेति शेषः), काकाः=वायसाः, कापुरुषाः=निर्बलजनाः, अनुत्साहिताः, मृगाः=हरिणाः, तत्रैव = निजनिवासभूमावेव, निधनम्=मृत्युम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति॥

टिप्पणी—सत्पुरुषाः=सन्तश्च ते पुरुषाः (क० धा०), कापुरुषाः=कुत्सिताः पुरुषाः कापुरुषाः 'कुगतिप्रादयः इति त० पु० समासः। सिंहसज्जनहस्तिनः जीविकार्थं, जीवननिर्वाहाय स्वस्थानं परित्यज्य अन्यत्र गच्छन्ति, परन्तु काक-कुत्सितनरमृगाः स्वस्थान एव लयं यान्तीति भावः।

भावार्थः—सिंह, सत्पुरुष और हाथी (ये अपने निवास) स्थान को छोड़कर (जीवन निर्वाह के लिए अन्यत्र) जाते हैं। लेकिन, कौआ, कायर पुरुष और मृग वहीं पर (अपने ही स्थान में) मरते हैं॥ १०४॥

अन्यच्च—को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः स्मृतः
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।
यत् दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः॥ १०५॥

अन्वयः—मनस्विनः वीरस्य स्वविषयः कः, विदेशो वा कः स्मृतः ? (सः), यम् देशम् श्रयते तम् एव बाहुप्रतापार्जितम् कुरुते, दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहः, यत् वनं गाहते, तस्मिन् एव हतद्विपेन्द्ररुधिरैः आत्मनः तृष्णाम् छिनत्ति।

व्याख्या—मनस्विनः = उत्साहशक्तिसम्पन्नस्य, वीरस्य = शूरस्य, स्वविषयः = निजदेशः, कः=को नाम ? वा = अथवा, विदेशः = परदेशः कः, स्मृतः = कथितः। (सः वीरः) यं देशम्=यं विषयं, श्रयते=आश्रयति, तं देशम्=तं विषयं, बाहुप्रतापार्जितम् = भुजबलस्वाधिकृतम्, कुरुते = विदधाति, यत्=यतः, दंष्ट्रानख-

लाङ्गूलप्रहरणः = दन्तपङ्क्तिकरजपुच्छायुधः, सिंहः=केसरी, यत् वनम्=अरण्यानीम्, अवगाहते = तदन्तः निःशङ्कं निविशते, तस्मिन् एव = पूर्वोक्तमहदरण्य एव, हतद्विपेन्द्ररुधिरैः = स्वेनैव व्यापादितगजेन्द्ररक्तैः, आत्मनः = स्वस्य, तृष्णाम् = पिपासाम्, छिनत्ति = नाशयति ।

टिप्पणी—स्वविषयः = स्वस्य विषयः (ष० त०), बाहुप्रतापार्जितम् = बाह्वोः प्रतापः = बाहुप्रतापः (ष० त०), तेन अर्जितस्तम् (तृ० त०), दंष्ट्रानखलाङ्गुल-प्रहरणः = दंष्ट्राश्च, नखाश्च लाङ्गुलं च एषां समाहारः, दंष्ट्रानखलाङ्गुलम्, (समाहारे द्वन्द्वः एकवद्भावश्च), दंष्ट्रानखलाङ्गुलं प्रहरणं यस्य सः (बहु०), हतद्विपेन्द्र-रुधिरैः = द्विपेषु इन्द्राः द्विपेन्द्राः (स० त०), हताश्च ते द्विपेन्द्राः हतद्विपेन्द्रा (क० धा०), तेषां रुधिराणि तैः (ष० त०) । उत्साहशक्तिसम्पन्नस्य वीरपुरुषस्य कृते स्वदेशपरदेशयो र्नोच्चावचत्वम्, स तु यं देशं गच्छति तमेव देशम् निजबाहु-बलेन स्वाधीनं करोति । दशनपङ्क्तिनखरपुच्छादिकमायुधमादाय सिंहः यत् महारण्यं प्रविशति तत्रैव गजेन्द्रान् हन्ति, तेषां रुधिरपानेन स्वीयां पिपासां निवारयति, इति भावः ।

भावार्थः—मनस्वी वीर का अपना देश कहाँ ? अथवा विदेश कहाँ कहा गया है ? (वह तो) जिस देश में आश्रय लेता है उसी को अपने बाहु के बल से अर्जित करता है । दाँत, नख और पूँछ का आघात करने वाला सिंह जिस वन में घुसता है उसी में मदोन्मत्त हाथियों को मार कर (उनके) खून से अपनी प्यास (भूख) मिटाता है ॥ १०५ ॥

हिरण्यको ब्रूते—मित्र ! क्व गन्तव्यम् ?

व्याख्या—हिरण्यक इति । हिरण्यकः—मूषिकः, ब्रूते = कथयति, मित्र ! क्व = कुत्र, गन्तव्यम् = चलितव्यम् ।

भावार्थः—हिरण्यक कहता है—मित्र, कहाँ जाना चाहिये ।

तथा चोक्तम्—चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।
नाऽसमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥ १०६ ॥

अन्वयः—बुद्धिमान्, एकेन पादेन चलति, एकेन तिष्ठति, परम् स्थानम् असमीक्ष्य पूर्वम्, आयतनम् न त्यजेत् ॥

व्याख्या—बुद्धिमान् = मतिमान्, एकेन = प्रथमेन, पादेन = चरणेन, चलति = गच्छति, एकेन=अपरेण, तिष्ठति = अवस्थानं करोति, परम् = अग्रिमम्, स्थानम् = स्थलम्, असमीक्ष्य = अविचार्य, पूर्वम् = प्राक्तनम्, आयतनम्=स्थानं, न त्यजेत्=न मुञ्चेत् ।

टिप्पणी—बुद्धिमान् नरः एकेन पादेन गच्छति, अपरेण तिष्ठति, द्वितीयस्थान-मनवलोक्य प्रथमं न त्यजेदिति भावः ।

भाषार्थः—बुद्धिमान् पुरुष एक पैर से चलता है, दूसरे से ठहरता है, दूसरे स्थान का विचार न करके प्रथम स्थान का त्याग न करे ॥ १०६ ॥

वायसो ब्रूते—'मित्र ! अस्ति सुनिरूपितं स्थानम् ।' हिरण्यकोऽवदत्—'किं तत् ?' वायसः कथयति—'अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराभिधानं सरः। तत्र चिरकालोपार्जितः प्रियसुहृन्मे मन्थराऽभिधानः कूर्मः सहजधार्मिकः प्रतिवसति । पश्य, मित्र !—

व्याख्या—वायसः = काकः ब्रूते = कथयति—मित्र ! = सखे !, सुनिरूपितम् = सम्यक् परीक्षितं, स्थानम् = स्थलम्, अस्ति = विद्यते । हिरण्यकः = मूषिकः, अवदत् = अब्रवीत् । किम् = किमभिधानम्, तत् = स्थानम्, वायसः = काकः, कथयति = वदति । दण्डकारण्ये = दण्डकनामवने, कर्पूरगौराभिधानम् = कर्पूरगौरनामकम्, सरः = सरोवरम्, अस्ति = विद्यते, तत्र = तस्मिन् सरसि, चिरकालोपार्जितः = बहुकालसंग्रहीतः, मे = मम, सुहृत् = मित्रम्, सहजधार्मिकः=स्वाभाविक धर्माचरणशीलः, मन्थराभिधानः = मन्थरनामकः, कूर्मः = कच्छपः, प्रतिवसति = निवासं करोति, मित्र ! = सखे !, पश्य = विलोकय ।

टिप्पणी—दण्डकारण्ये = दण्डकं च तत् अरण्यं, दण्डकारण्यम्, (क० धा०), (पुरा दण्डको नाम, इक्ष्वाकुवंशीयो राजा शुक्राचार्यस्य कन्यां बलान्नीतवान्, ततः स कुपितवशिष्टशापेन, भृत्यकलत्रवाहनादिसहितः तत्र विनष्टः राज्यं च अरण्यं जातम् । तत आरभ्य दण्डकारण्यम् नाम आसीदिति, वा० रा० कथा ।) सुनिरूपितम् = सम्यक् निरूपितम् (गतिसमा०), कर्पूरगौराभिधानम् = कर्पूरगौरं अभिधानं यस्य तत् (बहु०), चिरकालोपार्जितः = चिरं चासौ कालः (क० धा०), चिरकालात् उपार्जितः (पं० त०), प्रियसुहृत् = प्रियश्चासौ, सुहृत् (क० धा०), मन्थराभिधानः = मन्थरः अभिधानं यस्य सः (बहु०), सहजधार्मिकः = सहजश्चासौ धार्मिकः (क० धा०) ।

भाषार्थः—कौआ कहता है—मित्र ! अच्छी तरह से विचारा हुआ स्थान है। हिरण्यक ने कहा—वह कौन सा (स्थान) है ? कौआ कहता है—'दण्डक वन में 'कर्पूरगौर' नाम का सरोवर है। वहाँ बहुत पुराना मेरा प्रिय मित्र स्वाभाविक धर्मात्मा मन्थर नाम का कछुआ रहता है । देखो, मित्र !—

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित् तु महात्मनः ॥ १०७ ॥

अन्वयः—सर्वेषाम् नृणाम् परोपदेशे पाण्डित्यम् सुकरम् , कस्यचित् तु महात्मनः धर्मे स्वीयम् अनुष्ठानम् ।

व्याख्या—सर्वेषाम् = अखिलानाम् , नृणाम् = मनुष्याणाम् , परोपदेशे = अन्यो-

पदेशे, पाण्डित्यम् = वैदुष्यम्, सुकरम् = सुलभम्। कस्यचित् तु = विरलस्य, महात्मनः = महापुरुषस्य, धर्मे = पुण्यकृत्ये, अनुष्ठानम् = आचरणम्, भवतीति शेषः॥

टिप्पणी—परोपदेशे = परस्मै उपदेशस्तस्मिन् (च० त०), पण्डितस्य भावः पाण्डित्यम्, पण्डित + ष्यञ्। महात्मनः = महान् आत्मा यस्य सस्तस्य (बहु०), परस्मै, उपदेशदानं सर्वेषां नराणां सुलभम्, परन्तु पुण्यकार्ये निजाचरणन्तु विरलस्यैव महानुभावस्य भवतीति भावः।

भावार्थः—सब मनुष्यों का दूसरों को उपदेश देने में पाण्डित्य सहज है किन्तु विरले ही महात्माओं का धर्म में अपना आचरण होता है ॥ १०७ ॥

स च भोजनविशेषैर्मां संवर्धयिष्यति। हिरण्यकोऽप्याह—तत्किमत्राऽवस्थाय मया कर्तव्यम्?

व्याख्या—सः च = मन्थरश्च, भोजनविशेषैः = भिन्नभिन्नभक्ष्यपदार्थैः, माम् = लघुपतनकम्, संवर्धयिष्यति = ससम्मानं पालयिष्यति। हिरण्यकोऽपि = मूषिकराजोऽपि, आह = ब्रवीति। तत् = तस्मात् कारणात्, मया = हिरण्यकेन, अत्र = अस्मिन् स्थाने, अवस्थाय = स्थितिं विधाय, किं कर्तव्यम् = किंकरणीयम्॥

भावार्थः—वह कछुवा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से मुझे पालन-पोषण करेगा। हिरण्यक ने कहा—तब मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा॥

यतः—यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥ १०८॥

अन्वयः—यस्मिन् देशे, सम्मानः न, वृत्तिः न, बान्धवः न, कश्चित् विद्यागमः न, तम् देशम् परिवर्जयेत्।

व्याख्या—यस्मिन् = यत्र, देशे = जनपदे, सम्मानः = प्रतिष्ठा, न = नास्ति, वृत्तिः = जीविका न, बान्धवः = बन्धुः न, कश्चित् = कोऽपि, विद्यागमः = विद्यालाभः न, तं देशम् = उक्तं विषयम्, परित्यजेत् = विजह्यात्॥

टिप्पणी—विद्यागमः = विद्यायाः आगमः (ष० त०), यस्मिन् देशे, सम्मानवृत्तिबान्धवविद्यागमाः न सन्ति तस्य देशस्य त्याग एव श्रेयस्करो भवतीति भावः।

भावार्थः—जिस देश में सन्मान नहीं, जीविका नहीं, बान्धव नहीं, तथा विद्या का लाभ नहीं है, उस देश को परित्याग दे॥ १०८॥

अपरञ्च—धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत्॥ १०९॥

अन्वयः—धनिकः श्रोत्रियः राजा, नदी, पञ्चमः वैद्यः, यत्र पञ्च न विद्यन्ते, तत्र वासम् न कारयेत् ॥

व्याख्या—धनिकः = वित्तवान्, श्रोत्रियः = वेदाध्येता, राजा = नृपः, नदी = सरित्, पञ्चमः = उक्तसंख्यकः, वैद्यः = भिषक्, इमे पञ्च, यत्र = यस्मिन् स्थाने, न विद्यते = न वर्तंते, तत्र = तस्मिन् स्थले, वासम् = निवासम्, न कारयेत्, न विदध्यात्।

टिप्पणी—यस्मिन् देशे नगरे वा धनिकः, वैदिकः, ब्राह्मणः प्रजापालो नृपः पञ्चमो वैद्यः नदी। इमे पञ्च न निवसन्ति तत्र न वासः कार्य, इति भावः।

भाषार्थः—धनिक, वैदिक ब्राह्मण, राजा, नदी और पाँचवाँ वैद्य—ये पाँच जहाँ न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ॥ १०९ ॥

अपरञ्च—लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम् ॥ ११० ॥

अन्वयः—यत्र लोकयात्रा, भयम्, लज्जा, दाक्षिण्यम्, त्यागशीलता, पञ्च न विद्यन्ते तत्र संस्थितिम् न कुर्यात्।

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् देशे, लोकयात्रा = जनजीवननिर्वाहोपायः, भयम् = भीतिः, लज्जा = त्रपा, दाक्षिण्यम् = निपुणत्वम्, त्यागशीलता = दातृत्वम्, इमे पञ्च = एते पञ्चसंख्यकाः, न विद्यन्ते = न वर्तन्ते; तत्र = तस्मिन् स्थाने, संस्थितिम् = निवासम्, न कुर्यात् = न विदधीत।

टिप्पणी—लोकयात्रा = लोकानां यात्रा (ष० त०), त्यागशीलता = शीलस्य भावः शीलता, शील+तल्, त्यागस्य शीलता (ष० त०)। यत्र जनजीवनस्योपायः भयम्, लज्जा, निपुणता, त्यागशीलता (दातृत्वम्), इमे पञ्चसंख्यकाः न वर्तन्ते तत्र न निवासं कुर्यादिति भावः।

भाषार्थः—जहाँ लोगों के जीवन निर्वाह का कोई उपाय, भय, लज्जा, उदारता (और) त्यागशीलता ये पाँच नहीं है, वहाँ स्थायी निवास न करे ॥ ११० ॥

अन्यच्च—तत्र मित्र! न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्।
ऋणदाता च वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥ १११ ॥

अन्वयः—मित्र! यत्र ऋणदाता, वैद्यः, श्रोत्रियः सजला नदी च एतत् चतुष्टयम् नास्ति तत्र न वस्तव्यम् ॥

व्याख्या—मित्र! सखे! यत्र=यस्मिन् देशे, ऋणदाता=उत्तमर्ण, वैद्यः=भिषक्, श्रोत्रियः = वेदाध्येता, सजला = सलिलपूर्णा, नदी = सरित्, एतत्, चतुष्टयम् = चतुःसंख्यकम्, नास्ति = न विद्यते, तत्र=तस्मिन् स्थले, न वस्तव्यम् = निवासो न करणीयः।

टिप्पणी—ऋणदाता = ऋणस्य दाता (ष० त०), सजला = जलेन सह वर्तमाना। (तुल्ययोग बहु०), यत्र ऋणदाता, वैद्यः वेदाध्येता, सजला नदी च, एतत् चतुष्टयम् नास्ति तत्र वासो न कार्यः, इति भावः।

भाषार्थः—हे मित्र ! जहाँ कोई कर्ज देने वाला, वैद्य, वैदिक ब्राह्मण, जलसहित नदी ये चार (वस्तुएँ) नहीं है वहाँ नहीं रहना चाहिए ॥ १११ ॥

अतो मामपि तत्र नय। वायसोऽवदत्—'एवमस्तु'। अथ वायसस्तेन मित्रेण सह विचित्रालापसुखेन तस्य सरसः समीपं ययौ। ततो मन्थरो दूरादेव लघुपतनकम् अवलोक्य उत्थाय यथोचितमातिथ्यं विधाय मूषिकस्याऽप्यतिथिसत्कारं चकार।

व्याख्या—अतः = अस्माद्धेतोः, मामपि = मूषिकमपि, तत्र = कूर्मस्थले, नय = प्रापय। वायसः = काकः, अवदत् = अब्रवीत्, एवमस्तु = त्वदुक्तं भवतु। अथ = अनन्तरम्, वायसः = काकः, तेन = पूर्वोक्तेन, मित्रेण = सुहृदा (मूषिकेण), सह = साकम्, विचित्रालापसुखेन = विविधवार्ताजन्यानन्देन, तस्य = पूर्वनिर्दिष्टस्य, कर्पूरगौराख्यस्य, सरसः = सरोवरस्य, समीपम् = सन्निकटम्. ययौ = जगाम, तत् = तदनन्तरम्, मन्थरः = कूर्मः, दूरादेव = विप्रकृष्टादेव, लघुपतनकम् = एतन्नानककाकम्, अवलोक्य = वीक्ष्य, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, यथोचितम् = यथायोग्यम्, आतिथ्यम् = अतिथिसत्कारम्, विधाय = कृत्वा, मूषिकस्यापि = हिरण्यकस्यापि, अतिथिसत्कारम् = अभ्यागतसम्मानम्, चकार = कृतवान्।

टिप्पणी—विचित्रालापसुखेन = विचित्राश्च ते आलापाः ते (क० धा०), तेषां सुखम् तेन (ष० त०). यथोचितम = उचितमनतिक्रम्य, (अव्ययीभावः), अतिथिसत्कारम् = अतिथेः सत्कारः, तम् (ष० त०)।

भाषार्थः—इसलिये मुझे भी वहाँ ले चलो। कौआ बोला—'ऐसा ही हो'। इसके बाद कौआ उस मित्र (चूहे) के साथ अनेक प्रकार की बातों से सुख पूर्वक उस सरोवर के समीप गया। इसके बाद मन्थर ने दूर से ही लघुपतनक (कौवा) को देखकर, उठा तथा यथोचित अतिथि-सत्कार करके मूषिक (चूहे), का भी अतिथि सत्कार किया।

यतः—बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वत्राऽभ्यागतो गुरुः ॥ ११२ ॥

अन्वयः—गृहम् आगतः बालः वा, यदि वा वृद्धः, युवा वा, तस्य पूजा विधातव्या, अभ्यागतः सर्वत्र गुरुः।

व्याख्या—गृहम्=निजालयम्, आगतः=आयातः, बालः=कुमारः, यदि वा=अथवा वृद्धः=स्थविरः, युवा = तरुणवयुवावस्थः, तस्य = पूर्वोक्तबालादेः, पूजा=अपचितिः,

विधातव्या = करणीया, सर्वत्र = सर्वस्मिन्, आश्रमचतुष्के, अभ्यागतः=आगन्तुकः, गुरुः = गुरुवत् पूजनीयः।

टिप्पणी—निजगृहं समागतः अतिथिः बालो युवा वृद्धो वा तस्य पूजनम् (सत्कारः) करणीयः। अतिथेः सत्कारस्याश्रयचतुष्टयेऽपि गुरुवत् सत्कारदर्शनात्।

भावार्थः—घर में आया हुआ बालक हो या यदि बूढ़ा हो अथवा जवान हो, उसकी पूजा होनी चाहिए। क्योंकि अभ्यागत (अतिथि) सब में गुरु (श्रेष्ठ) है ॥ ११२ ॥

तथा—गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राऽभ्यागतो गुरुः ॥ ११३ ॥

अन्वयः—द्विजातीनाम् अग्निः गुरुः, ब्राह्मणः वर्णानां गुरुः, स्त्रीणां एकः पतिः गुरुः, सर्वत्र अभ्यागतः गुरुः।

व्याख्या—द्विजातीनाम् = त्रिवर्णानाम्, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानाम्, अग्निः = अनलः, गुरुः = गुरुवत् पूज्यः। वर्णानाम् = चतुर्वर्णानाम्, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य-शूद्राणाम्, ब्राह्मणः = भूदेवः, गुरुः = पूज्यः। स्त्रीणाम् = नारीणाम्, एकः = केवलम्, पतिः = भर्ता, गुरुः = पूज्यः, अभ्यागतः = अतिथिः, सर्वत्र = आश्रमचतुष्टयस्य, गुरुः = पूज्यः, भवतीतिशेषः।

टिप्पणी—ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यानामग्निः पूजनीयः। वर्णचतुष्कस्य ब्राह्मणः पूजनीयः स्त्रिभिस्तु केवलं स्वपतिरेव पूजनीयः, अतिथिस्तु, सर्वैरेव पूजनीयो भवतीति भावः।

भावार्थः—द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का अग्नि गुरु होता है, समस्त वर्णों का ब्राह्मण गुरु है तथा स्त्रियों का केवल उन का पति ही गुरुः है और अतिथि तो सभी में गुरु के समान सत्कार योग्य है ॥ ११३ ॥

अपरञ्च—उत्तमस्याऽपि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥ ११४ ॥

अन्वयः—उत्तमस्य अपि वर्णस्य गृहम् आगतः नीचः अपि यथायोग्यम् पूजनीयः, (यतः) अतिथिः सर्वदेवमयः 'अस्ति'।

व्याख्या—उत्तमस्य = श्रेष्ठस्य, वर्णस्य = ब्राह्मणादेः, गृहम् = आलयम्, आगतः = आयातः, नीचोऽपि = हीनोऽपि, यथायोग्यम् = योग्यतानुसारम्, पूजनीयः = अर्च्यः। अतिथिः = अभ्यागतः, सर्वदेवमयः=अखिलदेवतारूपः।

टिप्पणी—यथायोग्यम् = योग्यमनतिक्रम्य (अव्ययीभावः), सर्वदेवमयः = सर्वे च ते देवाः (क० धा०), ते स्वरूपं यस्य सः सर्वदेव+मयट् स्वरूप अर्थ में।

ब्राह्मणगृहं समागतः निकृष्टोऽपि जनः योग्यतानुसारमर्चनीयः। अतिथेः सर्वदेवमयत्वात्, अतिथौ सर्वे देवा निवसन्ति तस्य पूजा, सर्वदेवपूजा।

भावार्थः—घर में आया हुआ नीच भी उत्तम वर्ण वालों के लिए भी यथायोग्य पूजनीय है, (क्योंकि) अतिथि सर्वदेवमय (सब देवताओं का अंश) है ॥ ११४ ॥

वायसोऽवदत्—'सखे! मन्थर! सविशेषपूजामस्मै विधेहि, यतोऽयं पुण्यकर्मणां धुरीणः कारुण्यरत्नाकरो हिरण्यकनामा मूषिकराजः, एतस्य गुणस्तुतिं जिह्वासहस्रद्वयेनाऽपि यदि सर्पराजः कदाचित् कर्तुं समर्थः स्यात्' इत्युक्त्वा चित्रग्रीवोपाख्यानं वर्णितवान्। ततो मन्थरः सादरं हिरण्यकं सम्पूज्याऽऽह—'भद्र! आत्मनो निर्जनवनागमनकारणम् आख्यातुमर्हसि।' हिरण्यकोऽवदत्—'कथयामि श्रूयताम्—

व्याख्या—वायसः = काकः, अवदत् = अब्रवीत्, सखे! = मित्र! मन्थर! = कच्छप! अस्मै = हिरण्यकाय, सविशेषपूजाम् = विशिष्टसत्कारम्, विधेहि = कुरु। यतः = यस्मात् कारणात्, अयं = हिरण्यकः, पुण्यकर्मणाम् = सुकृतिनाम्, धुरीणः = अग्रेसरः, हिरण्यकनामा = हिरण्यकाख्यः, मूषिकराजः = आखुनायकः, कारुण्यरत्नाकरः = दयासागरः, एतस्य = अस्य, गुणस्तुतिम् = दयादाक्षिण्यादिश्लाघाम्, यदि = चेत्, शर्पराजः = शेषः, जिह्वासहस्रद्वयेन = द्विसहस्ररसनाभिः, कर्तुम् = विधातुम्, समर्थः = शक्तः, स्यात् = भवेत्। इत्युक्त्वा = इत्थमभिधाय, चित्रग्रीवोपाख्यानम् = कपोतराजकथानकम्, वर्णितवान् = कथयामास। ततः = तदनन्तरम्, मन्थरः = कूर्मः, सादरम् = आदरसहितम्, हिरण्यकम् = मूषिकराजम्, संपूज्य = प्रार्च्य, आह = ब्रूते, भद्र! हे कल्याण! आत्मनः = स्वस्य, निर्जनवनागमनकारणम् = जनशून्यारण्यप्राप्तिहेतुम्, आख्यातुम् = वक्तुम्, अर्हसि = योग्योऽसि। हिरण्यकः = मूषिकः, अवदत् = अब्रवीत्, कथयामि = वदामि, श्रूयताम् = श्रवणं कुरु।

टिप्पणी—सविशेषं = विशेषेण सह वर्तमानं यथास्यात् (तुल्ययोगबहु०), तथा पूजाम् = सत्कारम्, अस्मै = हिरण्यकाय। विधेहि = वि + धा + लोट्। पुण्यकर्मणाम् = पुण्यं कर्म येषां ते पुण्यकर्माणस्तेषां (बहु०), कारुण्यरत्नाकरः = कारुणस्य रत्नाकरः (ष० त०), हिरण्यकनामा = हिरण्यकं नाम यस्य सः। (बहु०), मूषिकराजः = मूषिकाणां राजा (ष० त०), 'समासान्तः' टच्। गणस्तुतिम् = गुणानां स्तुतिस्ताम् (ष० त०), जिह्वासहस्रद्वयेन = जिह्वानां सहस्रं (ष० त०), तस्य द्वयं तेन (ष० त०), सर्पाणां राजा, सर्पराजः (ष० त०), सर्पराजः = मूषिकराजवत्, चित्रग्रीवोपाख्यानम् = चित्रग्रीवस्य उपाख्यानम्, (ष० त०), सादरम् = आदरेण सह वर्तमानम् (तुल्ययोगबहु०), निर्जन-

वनागमनकारणम् = निर्जनं च तत् वनम् (क० धा०), तस्मिन् आगमनम् (ष० त०), तस्य कारणम् (ष० त०)।

भाषार्थः—कौआ ने कहा—'मित्र! मन्थर! विशेष रूप से इस (हिरण्यक) की पूजा करो, क्योंकि यह पुण्य कर्म करने वालों में धुरन्धर, दया का सागर हिरण्यक नामवाला मूषिकों (चूहों) का राजा है। इनके गुणों की प्रशंसा अपनी दो हजार जिह्वावों से करने के लिए सर्पराज (शेष जी), शायद समर्थ हो जाय। इस प्रकार कहकर चित्रग्रीव की कहानी सुना दी। इसके बाद आदरपूर्वक हिरण्यक का सन्मान करके मन्थर ने कहा—'महोदय! अपना निर्जनवन में आने का कारण कहने योग्य हो' हिरण्यक ने कहा—'कहता हूँ, सुनिये—

४. हिरण्यककथा

अस्ति चम्पकाऽभिधानायां नगर्यां परिव्राजकाऽऽवसथः। तत्र चूडाकर्णो नाम परिव्राजकः प्रतिवसति। स च भोजनाऽवशिष्टभिक्षान्नसहितं भिक्षापात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य स्वपिति, अहं च तदन्नम् उत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्षयामि। अनन्तरं तस्य प्रियसुहृद् वीणाकर्णोनाम परिव्राजकः समायातः, तेन सह नानाकथाप्रसङ्गाऽवस्थितो मम त्रासार्थं जर्जरवंशखण्डेन चूडाकर्णो भूमिमताडयत्। तं तथाविधं दृष्ट्वा वीणाकर्ण उवाच—'सखे किमिति मम कथाविरक्तोऽन्यासक्तो भवान्?'

व्याख्या—चम्पकाभिधानायाम् = तन्नाभिकायाम्, नगर्याम् = पुरि, परिव्राजकाऽवसथः = संन्यासिनाम् आश्रम, अस्ति = वर्तते। तत्र = आश्रमे, चूडाकर्णोनाम = चूडाकर्णाख्यः, परिव्राजकः = संन्यासी; प्रतिवसति = निवसति। सः च = चूडाकर्णश्च, भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितम् = भक्षणावशेषयाचितान्नयुक्तम्, भिक्षापात्रम् = काष्ठकपालात्मकं भिक्षाभाजनम्, नागदन्तके = हस्तिदशनाग्रभागसदृशे, गृहभित्तौ प्रोथिते दारुमयकीलके, अवस्थाप्य = निधाय, स्वपिति = शेते, अहम् = मूषिकः, तदन्नम् = अवशिष्टान्नम्, उत्प्लुत्य = उत्प्लुत्य, भूयो भूय उत्पतनं कृत्वा, प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्, भक्षयामि = अद्मि। अनन्तरम् = ततः, तस्य = चूणाकर्णस्य, प्रियसुहृद् = अभीष्टमित्रं, वीणाकर्णोनाम = एतन्नामकः, परिव्राजकः = संन्यासी, समायातः = समागतः, तेन = प्रियमित्रेण, सह=साकम्, नानाकथाप्रसङ्गाऽवस्थितः= बहुविधवार्तालापावसरस्थः, अपि मम = मूषिकस्य, त्रासार्थम् = भयार्थम्, जर्जरवंशखण्डेन = जीर्णवेणुशकलेन, चूडाकर्णः = तन्नामकः, सन्यासी, भूमिम् = भुतलम्, अताडयत् = ताडितवान्। तं = चूणाकर्णं, तथाविधं=भूमिं ताडयन्तम्, अन्यमनस्कं दृष्ट्वा = विलोक्य, वीणाकर्णः = तत्प्रियसुहृत्, अपरः सन्यासी, उवाच=जगाद, सखे!

मित्र ! किमिति = केन कारणेन, भवान् = त्वम्, मम = मित्रस्य कथाविरक्तः वार्तालापे विरक्तियुक्तः, अन्यासक्तः = विषयान्तरव्यापृतः, 'संजातः' इति शेषः ।

टिप्पणी—चम्पकाभिधानायाम् = चम्पकाः, अभिधानं यस्याः सा तस्यां (बहु०), परिव्राजकावसथः = परिव्राजकानां आवसथः (ष० त०), भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितम् = भिक्षायाः अन्नम् तत् (ष० त०), भोजनात् अवशिष्टं तत् (पं० त०), भोजनावशिष्टं च तत् भिक्षान्नं तत (क० धा०), तेन सहितम् (तृ० त०), भिक्षापात्रम् = भिक्षाया पात्रम्, तत् (ष० त०), प्रत्यहम् = अहनि, अहनि, तत् (अव्ययीभावः), प्रियसुहृत् = प्रियश्चासौ सुहृत् (क० धा०), नानाकथाप्रसङ्गावस्थितः = नानाविधायाः कथाः (क० धा०), तासां प्रसङ्गः (ष०त०), तस्मिन् अवस्थितः स तथोक्तः (स० त०), त्रासार्थम् = त्रासाय इदम् (च० त०), जर्जरवंशखण्डेन = जर्जरश्चासौ वंशः (क० धा०), तस्य खण्डस्तेन (ष० त०), कथाविरक्तः=कथायां विरक्तः (स०त०), अन्यासक्तः=अन्यस्मिन् आसक्तः (स०त०)।

भाषार्थः—चम्पका नाम की नगरी में संन्यासियों का मठ है। उसमें चूड़ाकर्ण नाम का संन्यासी रहता है। वह भोजन करने के बाद बचे हुए भिक्षान्न सहित भिक्षापात्र को खूंटी पर लटका कर सो जाता है। मैं उस अन्न को उछल-उछल कर प्रतिदिन खाता था। इसके बाद उसका (चूणाकर्ण का) प्रियमित्र वीणाकर्ण नाम का संन्यासी आया। उसके साथ अनेक प्रकार की कथाओं के प्रसंग में लगा हुआ चूड़ाकर्ण मुझे डराने के लिये पुराने बांस के टुकड़े से भूमि को पीटता था। उसे ऐसा करते देखकर वीणाकर्ण ने (चूड़ाकर्ण से) कहा—'मित्र ! क्या कारण है कि आप मेरी कथा से विरक्त होकर अन्य में आसक्त हो गये हैं ?' ॥

यत—मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः कथाऽनुरागो मधुरा च वाणी ।
स्नेहोऽधिकः सम्भ्रमदर्शनञ्च सदानुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ॥११५॥

अन्वयः—मुखम् प्रसन्नम्, दृष्टिः च विमला कथानुरागः वाणी च मधुरा, स्नेहः अधिकः सम्भ्रमदर्शनं च सदा अनुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ॥

व्याख्या—मुखम् = आननम्, प्रसन्नम् = प्रसादयुक्तम्, दृष्टिः = अवलोकनम्, विमला = निर्मला, भ्रूभङ्गादिक्रूरताशून्येत्यर्थः। कथानुरागः = वार्तालापप्रीतिः, वाणी = वाक्, मधुरा = कटुशून्या, मनोरञ्जनी, स्नेहः = प्रेमा, अधिकः = प्रचुरः, सम्भ्रमदर्शनम् = त्वरयावलोकनं च, सदा = सततम्, अनुरक्तस्य = अनुरागयुक्तस्य, जनस्य = पुरुषस्य, लक्ष्म = लक्षणं, भवतीति शेषः ।

टिप्पणी—कथानुरागः = कथायां अनुरागः (स० त०), विमला = विगतं मलं यस्या सा (बहु०), सम्भ्रमदर्शनम् = सम्भ्रमेण दर्शनम् तत् (तृ०त०), सदाऽनुरागयुक्तस्य जनस्य, 'एतत् लक्षणम् भवति—यत्, मुखे प्रसन्नता, दृष्टौ निर्मलता,

भ्रूभङ्गादिविकाराभावः, वार्तालापे प्रीतिः, वाचि माधुर्यम्, स्नेहस्य प्राचुर्यम्, इतिभावः।

भावार्थः—मुख प्रसन्न हो, दृष्टि निर्मल हो, कथा में अनुराग हो, वाणी मधुर हो, स्नेह अधिक हो और (मित्र के) दर्शन में उतावलापन हो (यह) सदा अनुरक्त रहने वाले पुरुष का लक्षण (चिह्न) है ॥ ११५ ॥

अदृष्टिदानं कृतपूर्वनाशनममाननं दुश्चरिताऽनुकीर्तनम्।
कथाप्रसङ्गेन च नामविस्मृतिर्विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ॥ ११६ ॥

अन्वयः—अदृष्टिदानम्, कृतपूर्वनाशनम्, अमाननम्, दुश्चरितानुकीर्तनम्, कथाप्रसङ्गेन नाम्न विस्मृतिः, विरक्तभावस्य, जनस्य, लक्षणम्।

व्याख्या—अदृष्टिदानम् = अवीक्षणम्, कृतपूर्वनाशनम् = कृतपूर्वोपकारानङ्गीकरणम्, अमाननम् = सत्काराभावः, दुश्चरितानुकीर्तनम् = दुराचारचर्चा, कथाप्रसङ्गेन = वार्तालापावसरेण, नामविस्मृतिः = नामधेयविस्मरणम्, 'एतत् सर्वम्' विरक्तभावस्य = विरक्तेः, लक्षणं = चिह्नम्, भवतीति शेषः।

टिप्पणी—अदृष्टिदानम् = दृष्टेः दानम्, तत्र (ष० त०), न दृष्टिदानम् तत् (नञ् त०), कृतपूर्वनाशनम् = पूर्वं कृतमिति कृतपूर्वम् (अव्ययीभावः); तस्य नाशनम् (ष० त०), अमाननम् = न माननम्, अमाननं (नञ्० त०), दुश्चरितानुकीर्तनम् = दुश्चरितस्य, अनुकीर्तनम् = तत् (ष० त०), कथाप्रसङ्गेन = कथायाः प्रसङ्गः (ष० त०), तेन, नामविस्मृतिः = नाम्नः विस्मृतिः (ष० त०), विरक्तभावः = विरक्तश्चासौभावस्तस्य (क० धा०), मानवविरक्तेरिदं चिह्नम् = अवलोकनम्, पूर्वकृतोपकारानङ्गीकरणम्, दुराचारकथनम्, कथाप्रसङ्गेन नामस्मरणाभावः, अमाननं = अवमाननम्, अवज्ञाकरणम्, इतिभावः।

भावार्थः—दृष्टि न देना, किये हुए उपकार को नाश करना, अपमान करना, दुराचार को पीछे में प्रकाशित करना, और वार्ताप्रसङ्ग में नाम को भी भूलना (ये पांच) मनुष्यों के विरक्त भाव के लक्षण है ॥ ११६ ॥

चूड़ाकर्णेन उक्तम्—'भद्र ! नाहं विरक्तः, किन्तु पश्य, अयं मूषिको ममाऽपकारी सदा पात्रस्थं भिक्षान्नमुत्प्लुत्य भक्षयति'। वीणाकर्णो नागदन्तमवलोक्याह—'कथमयं मूषिकः स्वल्पबलोऽप्येतावद् दूरमुत्पतति ? तदत्र केनाऽपि कारणेन भवितव्यम्।'

व्याख्या—चूड़ाकर्णेन = तन्नामसंन्यासिना, उक्तम् = अभिहितम्, भद्र ! = महाशय, ! अहम् = चूड़ाकर्णः, विरक्तः=विरक्तियुक्तः, न=नास्मि, परन्तु, अयम्=एषः, मूषिकः = आखुः, मम = चूड़ाकर्णस्य, अपकारी = अपकारकर्ता, सदा = अजस्रम्, पात्रस्थम्, भाजननिहितम्, भिक्षान्नम् = याचनान्नम्, उत्प्लुत्य = उत्प्लुतिं कृत्वा,

भक्षयति = अत्ति । वीणाकर्णः = तत्प्रियसुहृत्, एतन्नामकः परिव्राट्; नागदन्तम् = कुड्यपोथितकीलम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, आह = ब्रूते। अयम् = एषः, मूषिकः = आखुः, स्वल्पबलः अपि, न्यूनशक्तिरपि, कथम् = केन प्रकारेण, एतावद्दूरम् = इयद्विप्रकृष्टम्, उत्पतति = उत्पतनं करोति। तत् = तस्मात् कारणात्, अत्र = अस्मिन् विषये, केनापि = अज्ञातेनापि, कारणेन = हेतुना, भवितव्यम् = भाव्यम् ।

टिप्पणी—पात्रस्थम् = पात्रं तिष्ठतीति पात्रस्थम्, पात्र + स्था + कः (उपपद-समासः), भिक्षान्नम् = भिक्षायाः, अन्नम् (ष० त०), स्वल्पबलः = स्वल्पं बलं यस्य सः (बहु०)।

भावार्थः—चूड़ाकर्ण ने कहा—'महाशय! मैं विरक्त नहीं हूँ, परन्तु देखिये, मेरा अपकारी यह चूहा, हमेशा पात्र में रक्खे हुए भिक्षान्न को उछल कर खाता है'। वीणाकर्ण ने खूंटी को देखकर कहा—'बहुत थोड़े बल वाला भी यह चूहा इतनी दूर कैसे उछल जाता है? अतः इसमें कोई भी कारण होना चाहिए'॥

क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तम्—'कारणञ्चात्र धनबाहुल्यमेव प्रतिभाति।'

व्याख्या—क्षणम् = किञ्चित्कालम्, विचिन्त्य = विचार्य, परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परिव्राजकस्तेन, परिव्राजकेन = संन्यासिना, उक्तम् = कथितम्, अत्र = अस्मिन् विषये, कारणम् = निदानम्, धनबाहुल्यमेव = धनस्य बाहुल्यं, तत् (ष० त०), प्रतिभाति = प्रतीयते ॥

भावार्थः—क्षणभर विचार करके संन्यासीजी (वीणाकर्ण) ने कहा—'इस में कारण धन की अधिकता ही प्रतीत होती है।'

यतः—धनवान् बलवांल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते ॥ ११७ ॥

अन्वयः—सर्वः धनवान् लोके सर्वत्र, सर्वदा बलवान् हि, राज्ञाम् अपि प्रभुत्वं धनमूलम् उपजायते ॥

व्याख्या—सर्वः = सकलः, धनवान् = वित्तवान् जनः, लोके = संसारे, सर्वत्र = स्वदेशे, परदेशे वा, सर्वदा = समस्तसमये, दुर्भिक्षे = सुभिक्षे वा, बलवान् = सर्वशक्तिसम्पन्नः, भवतीति = शेषः। हि = यतः, राज्ञामपि = नृपाणामपि, प्रभुत्वम् = स्वामित्वम्, आधिपत्यम्, धनमूलम् = वित्तहेतुकम्, उपजायते = उत्पद्यते।

टिप्पणी—धनवान् = धनमस्यास्तीति धनवान्, धन + मतुप्, बलवान् = बलमस्यास्तीति बलवान्, बल = मतुप्। धनमूलम्=धनं मूलं यस्य तत् (बहु०)। समस्ता धनवन्तो जनाः संसारे, स्वदेशे परदेशे वा, दुर्भिक्षे सुभिक्षे वा, सर्वशक्तिसम्पन्नाः भवन्ति। यतः नृपाणामपि प्रभुत्वस्य निदानं धनमेव। अन्यथा निर्धनं नृपं प्रजाः, त्यजन्तीति भावः।

भावार्थः—सब धनवान् संसार में सब समय सब जगह बलवान् हैं। क्योंकि राजाओं के प्रभुत्व का भी धन ही मूल उपजता है ॥ ११७ ॥

ततः खनित्रमादाय तेन परिव्राजकेन विवरं खनित्वा चिरसञ्चितं मम धनं गृहीतम्। ततः प्रभृति प्रत्यहं निजशक्तिहीनः सत्त्वोत्साहरहितः स्वाहारमप्युत्पादयितुमक्षमः सत्रासं मन्दम् उपसर्पन् चूडाकर्णेनाऽवलोकितः। ततस्तेनोक्तम्—

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, खनित्रम्=भूमिखनन-यन्त्रम्, आदाय=गृहीत्वा, तेन=पूर्वनिर्दिष्टेन, परिव्राजकेन = संन्यासिना, विवरम् = बिलम्, खनित्वा=विदार्य, चिरसञ्चितम् = बहुकालोपार्जितम्, मम = हिरण्यकस्य, धनम् = द्रव्यम्, अन्नादि, गृहीतम् = आदत्तम्, ततः प्रभृति = तदारभ्य, प्रत्यहम् = प्रतिदिनम् , निजशक्तिहीनः = स्वसामर्थ्यशून्यः, सत्त्वोत्साहरहितः = मनोऽध्यवसायशून्यः स्वाहारमपि= निजभोज्यपदार्थमपि, उत्पादयितुम् = उत्पादनं कर्तुम्, अक्षमः = अशक्तः। सत्रासं = सभयम्, मन्दम् = शनैः, उसर्पन् = उपगच्छन् , 'अहम्' चूडाकर्णेन = इति नामकेन संन्यासिना, अवलोकितः = दृष्टः। ततः = तस्मात् , तेन=संन्यासिना, उक्तम् = कथितम् ॥

टिप्पणी—चिरसञ्चितम् = चिरेण सञ्चितम्, (तृ० त०), प्रत्यहं = अहः अहः प्रति, इति प्रत्यहम् (अव्ययीभावः), निजशक्तिहीनः = निजस्य शक्तिः (ष०त०), तया हीनः (तृ० त०), सत्त्वोत्साहरहितः = सत्त्वस्य उत्साहः (ष० त०), तेन रहितः (तृ० त०), स्वाहारम् = स्वस्य, आहारस्तम् (ष० त०), सत्रासम् = त्रासेन सह वर्तमानम् (तुल्ययोगबहु०)।

भावार्थः—इसके बाद खनती को लेकर उस संन्यासी (वीणाकर्ण) ने बिल खोदकर चिर संचित (बहुत समय से इकट्ठे किये हुए), मेरे धन को ले लिया। उसी समय से प्रतिदिन अपने बल से हीन, मन के उत्साह से शून्य, अपने आहार भी इकट्ठा करने में असमर्थ एवं भय युक्त होकर धीरे से जाते हुए मुझे चूडाकर्ण ने देखा। तब उसने कहा—

धनेन बलवांल्लोको धनाद्भवति पण्डितः।
पश्यैनं मूषिकं पापं स्वजातिसमतां गतम् ॥ ११८ ॥

अन्वयः—लोकः धनेन बलवान् भवति, धनात् एव पण्डितः 'भवति' स्वजातिसमताम् गतम्, पापम् एनं मूषिकम्, पश्य।

व्याख्या—लोकः = जनः, धनेन = वित्तेन, बलवान् = शक्तिमान् , भवति। धनात् = वित्तात् , पण्डितः = विद्वान् च भवति। स्वजातिसमताम् = आत्मजाति-

तुल्यताम्, दरिद्रताम्; गतम् = प्राप्तम्, पापम् = सत्यपि द्रव्ये पराज्ञापहरणात्मक-पापाचारिणम्, एनम् = इमम्, मूषिकं, पश्य = विलोकय।

टिप्पणी—स्वजातिसमताम् = स्वस्य जातिः (ष० त०), तस्याः समता ताम् (ष० त०), जनस्य बलवत्त्वं वैदुष्यञ्च धनमूलकमेव। भोः आखुजातितुल्य-दरितां प्राप्तः सत्यपि द्रव्ये पराज्ञापहारो, अयम् आखुः दृश्यताम्।

भावार्थः—व्यक्ति धन से बलवान् और धन से ही पण्डित होता है। इस धन के बिना अपनी जाति की बराबरी (दरिद्रता) में पहुँचा हुआ पापी इस मूषिक (चूहे) को देखो ॥ ११८ ॥

किञ्च—अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याऽल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ ११९ ॥

अन्वयः—अर्थेन तु विहीनस्य, अल्पमेधसः पुरुषस्य, यथा ग्रीष्मे कुसरितः तथा सर्वाः क्रियाः विनश्यन्ति।

व्याख्या—अर्थेन = धनेन, विहीनस्य = रहितस्य, अल्पमेधसः = क्षुद्रबुद्धेः, पुरुषस्य = नरस्य, सर्वाः = सकलाः, क्रियाः = कार्याणि, ग्रीष्मे = निदाघे, कुसरितः = स्वल्पजलाः, नद्यः, यथा, नश्यन्ति = शुष्यन्ति, तथा विनश्यन्ति = विनाशं गच्छन्ति।

टिप्पणी—अल्पमेधसः = अल्पा मेधा यस्य सस्तस्य (बहु०), कुसरितः = कुत्सिता सरितः कुसरितः, (गतिसमासः)। द्रव्यरहितस्य, बुद्धिहीनस्य जनस्य सर्वाणि कार्याणि तथैव नश्यन्ति यथा ग्रीष्मकाले क्षुद्रनद्यः शुष्कजलाः, भवन्ति इति भावः।

भावार्थः—द्रव्यरहित, अल्प बुद्धि वाले मनुष्य की सब क्रियाएँ (सभी कार्यविधियाँ) नष्ट हो जाती हैं जैसे, गर्मी के दिनों में स्रोत विहीन छोटी नदियाँ विनष्ट हो जाती हैं (सूख जाती हैं) ॥ ११९ ॥

अपरञ्च—यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥ १२० ॥

अन्वयः—लोके यस्य अर्थाः तस्य मित्राणि, यस्य अर्थाः तस्य बान्धवाः, यस्य अर्थाः सः पुमान्, यस्य अर्थाः स हि पण्डितः।

व्याख्या—लोके = संसारे, यस्य = जनस्य, अर्थाः = धनानि, सन्ति, तस्य = जनस्य, मित्राणि 'भवन्ति' यस्य = जनस्य, अर्थाः = धनानि, तस्य = पूर्वनिर्दिष्टस्य, बान्धवाः = बन्धवः, 'भवन्ति', यस्य = जनस्य, अर्थाः = धनानि, सः लोके, पुमान् = पुरुषः, यस्य = जनस्य, अर्थाः = धनानि, स हि, पण्डितः = विद्वान्, 'भवति'।

टिप्पणी—लोके मित्रबन्धुगणः धनिन एव भवति, पुरुषपदवाच्यता पाण्डित्यं च धनिन एव भवतीति भावः।

भावार्थः—संसार में जिसके पास धन है उसी के मित्र हैं, जिसके पास धन हैं उसी के बान्धव सब बनते हैं। जिसके पास द्रव्य हैं वह पुरुष गिना जाता है। जिसके पास द्रव्य है वही पण्डित माना जाता है ॥ १२० ॥

अपरञ्च—अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च।
मूर्खस्य च दिशः शून्याः सर्वशून्या दरिद्रता ॥ १२१ ॥

अन्वयः—अपुत्रस्य सन्मित्ररहितस्य च गृहम् शून्यम्, मूर्खस्य दिशः शून्याः दरिद्रता सर्वशून्या।

व्याख्या—अपुत्रस्य = सन्ततिरहितस्य; सन्मित्ररहितस्य = सुसुहृद्शून्यस्य, गृहम्=आलयः, शून्यम्=रिक्तम्, मूर्खस्य=विद्याविहीनस्य, दिशः=पूर्वादिसर्वा दिशः, शून्याः = रिक्ताः, न क्वापि सन्मानं लभते। दरिद्रता = दुर्गतता, सर्वशून्या=सकलरिक्तता, दरिद्रतायां सत्यां सर्वं शून्यप्रायं प्रतीयते, इति भावः।

टिप्पणी—अपुत्रस्य = अविद्यमानः पुत्रो यस्य सः (नञ् बहु० उ० प० लोपश्च), सन्मित्ररहितस्य = सच्च तत् मित्रं सन्मित्रम् (क० धा०), तेन रहितम्, तत् (तृ० त०), सर्वशून्या = सर्वं शून्यं यस्यां सा (बहु०), दरिद्रता = दरिद्रस्य भावः दरिद्र + तल् + स्त्रीत्वम्। सत्ररहीतं गृहं शून्यमिव प्रतीयते उत्तममित्ररहितस्य, मूढस्य च सर्वाः दिशः शून्याः प्रतीयन्ते, दरिद्रतायां सर्वं शून्यं प्रतीयते, इति भावः।

भावार्थः—पुत्र हीन और उत्तम मित्र से रहित पुरुष का घर शून्य लगता है तथा मूर्ख जन की समस्त दिशाऐं शून्य-सी प्रतीत होती हैं। दरिद्रता सब तरह से शून्य है। अर्थात् निर्धनता में तो सब अन्धकारमय प्रतीत होता है ॥ १२१ ॥

अपरञ्च—दारिद्र्यान्मरणाद्वाऽपि दारिद्र्यमवरं स्मृतम्।
अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमतिदुःसहम् ॥ १२२ ॥

अन्वयः—दारिद्र्यात्, अपि वा मरणात् 'अनयोः', दारिद्र्यम् अवरम् स्मृतम्। 'यतः' मरणम्, अल्पक्लेशेन, दारिद्र्यम् अतिदुःसहम् ॥

व्याख्या—दरिद्र्यात् = दुर्गतत्वात्, निर्धनाद्वा, मरणात्=निधनात्, 'अनयोर्मध्ये' दारिद्र्यम् = निर्धनत्वम्, अवरम् = निकृष्टम्, स्मृतम् = कथितम्, यतः कारणात्, मरणम् = निधनम्, अल्पक्लेशेन = स्तोकदुःखेन, दारिद्र्यम् = निर्धनत्वम्, अतिदुःसहम् = सोढुमशक्यम्, 'भवतीति' शेषः।

टिप्पणी—अल्पक्लेशेन = अल्पश्चासौ क्लेशस्तेन (क० धा०), अतिदुःसहम्= अत्यन्तं दुःसहम् (गतिसमास०)। दरिद्रतामरणयोर्मध्ये निर्धनता न समीचीना, मरणदुःखन्तु, सकृत् भवति, असकृद्दुःखदायिनी दरिद्रता भवतीति भावः ॥

भावार्थः—दरिद्रता या मरण से (तुलना करने पर) दरिद्रता घटिया कही गयी है। (क्योंकि), मरण अल्प क्लेश से होता है लेकिन दरिद्रता अति दुःख से सहन होती है ॥ ११२ ॥

अन्यच्च—तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
ह्यन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ १२३ ॥

अन्वय—अविकलानि तानि इन्द्रियाणि, तदेव नाम, अप्रतिहता सा बुद्धिः तदेव वचनम्, हि, अर्थोष्मणा विरहितः सः एव पुरुषः क्षणेन अन्यः भवति, इति एतत् विचित्रम् ॥

व्याख्या—अविकलानि=स्वकार्ये समर्थानि वा काणत्वादिदोषशून्यानि, तानि= प्रसिद्धानि, इन्द्रियाणि = चक्षुरादिकरणानि, यानि धनिकदशायां सन्ति तान्येव, नाम = अभिधा, तदेव = यः पूर्वमासीत्, अप्रतिहता = अकुण्ठिता, बुद्धिः=प्रज्ञा सा, एव = पूर्वतनीना, वचनम् = कथनम्, तदेव=पूर्ववदेव, पुरुषः=मानवः, स एव=यः धनिकदशायामासीत्। किं अर्थोष्मणा = धनगर्वेण, विरहितः = शून्यः 'सन्', क्षणेन=क्षणात्मककालेन, अन्यः = अन्यादृशः, भवति = संजायते, एतत् = इदम्, विचित्रम् = परमाश्चर्यम्, अस्तीति शेषः ॥

टिप्पणी—अविकलानि = न विकलानि (नञ्० त०), अप्रतिहता = न प्रतिहता (नञ्० त०), अर्थोष्मणा = अर्थस्य, ऊष्मा, तेन (ष० त०)। पुरुषस्य यादृशानि, इन्द्रियाणि, यन्नाम या कुशाग्रा बुद्धिः यादृशः वार्तालापः यश्च पुरुषः स्वयं यादृशः धनत्वदशायामासीत निर्धनदशायामपि, सर्वं वस्तु तादृशमेव किन्तु, अन्यादृशमिव प्रतीयते लोके, इति परमाश्चर्यमस्तीति भावः।

भावार्थः—जो अपने कार्य में समर्थ हैं वे ही इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, जो कुण्ठित नहीं है वही बुद्धि है, वही वचन है। परन्तु धन की गर्मी से रहित (धन हीन) वही पुरुष, क्षण भर में दूसरा ही (कहाँ से कहाँ) हो जाता है यही विचित्र (लगता है) ॥ १२३ ॥

एतत्सर्वमाकर्ण्य मयाऽलोचितं-'ममाऽत्रावस्थानमयुक्तमिदानीम्'।

व्याख्या—एतत् = इदम्, सर्वम् = सम्पूर्णम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, आलोचितम् = विचारितम्, इदानीम् = अधुना, मम = हिरण्यकस्य, अत्र=अस्मिन् स्थाने, अवस्थानम् = स्थितिः, अयुक्तम् = उचितं नास्ति।

भावार्थः—यह सब सुनकर मैंने विचार किया—'मेरा यहाँ ठहरना इस समय उचित नहीं है।' वैसा ही कहा है—

तथा चोक्तम्—अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरुषे ।
मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत् कुतः सुखम् ॥ १२४ ॥

अन्वयः—दैवे अत्यन्तविमुखे (सति), यत्ने पौरुषे च व्यर्थे (सति), मनस्विनः दरिद्रस्य वनात् अन्यत् सुखम् कुतः ।

व्याख्या—दैवे = भाग्ये, अत्यन्तविमुखे = अतिपराङ्मुखे, यत्ने=उद्यमे, पौरुषे= पुरुषकारे, व्यर्थे = विफले, 'सति', मनस्विनः = प्रशस्तमनसः, दरिद्रस्य = दुर्गतस्य, वनात् = अरण्यात् , अन्यत् = अतिरिक्तम्, सुखम् = आनन्दः, कुतः = क्व: ।

टिप्पणी—अत्यन्तविमुखे = अत्यन्तं विमुखस्तस्मिन् (सुप्सुपा), इति समासः । व्यर्थे = विगतः अर्थो यस्मात् स·, तस्मिन् (बहु०), पौरुषे = पुरुषस्य, अयम्, पौरुषस्तस्मिन् , पुरुष + अण् । मनस्विनः = प्रशस्तं मनः, अस्यास्तीति मनस्वी, तस्य, मनस् + विनिः । भाग्येऽत्यन्तं वैपरीत्यं गते, पुरुषार्थे, यत्ने च विफले सति धनशून्यमनुजस्यारण्यादतिरिक्तस्थाने कुत्रापि सुखं नास्तीति भावः ।

भावार्थः—भाग्य के अत्यन्त विपरीत हो जाने पर तथा पुरुषार्थ और उद्योग भी व्यर्थ होने पर मनस्वी दरिद्र का वन से अतिरिक्त सुख कहां है ? ॥ १२४ ॥

अन्यच्च—मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति नाऽनलो याति शीतताम् ॥ १२५ ॥

अन्वयः—मनस्वी कामम् म्रियते न तु कार्पण्यं गच्छति, अनलः निर्वाणम्, आयाति शीततां न याति ।

व्याख्या—मनस्वी = तेजस्वी वा स्वाभिमानीजनः, कामम्=यथेष्टम्, म्रियते= प्राणान् त्यजति, कार्पण्यम् = दीनत्वम्, न तु गच्छति=न हि लभते, अनलः=अग्निः, निर्वाणम् = विनाशम्, आयाति = प्राप्नोति, शीतताम् = अनुष्णताम्, न याति = न गच्छति ॥

टिप्पणी—कार्पण्यम् = कृपणस्य भावः, कृपण + ष्यञ् , मनस्वी = प्रशस्तं मनः, अस्यास्तीति मनस्वी, मनस् + विनिः । तेजस्वी पुरुषः मरणमभ्युपैति, दीनतां नेच्छति, अग्निः विनश्यति परन्तु शीतलतां, न प्राप्नोति, इति भावः ।

भावार्थः—मनस्वी स्वेच्छा से मर जाता है परन्तु कृपणता (दीनभाव) को नहीं चाहता है । अग्नि भले ही बुझ जाती है लेकिन शीतलता को प्राप्त नहीं होती है ॥ १२५ ॥

किञ्च—कुसुमस्तबकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः ।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद्विशीर्येत वनेऽथवा ॥ १२६ ॥

अन्वयः—मनस्विनः तु कुसुमस्तबकस्य इव द्वे वृत्ती 'भवतः' । सर्वेषाम् मूर्ध्नि तिष्ठेत् वा वने विशीर्येत ।

व्याख्या—मनस्विनः=तेजस्विनः जनस्य, कुसुमस्तवकस्य=पुष्पगुच्छस्य, इव=यथा, द्वेवृत्ती=द्विविधे, एव=वृत्ती व्यापारौ, स्तः, सर्वेषाम=सकलानाम्, मूर्ध्नि=शिरसि, तिष्ठेत्=वर्तेत, अथवा=यद्वा, वने=अरण्येव एव, विशीर्येत=विनश्येत्।

टिप्पणी—कुसुमस्तवकस्य=पुष्पगुच्छस्य, कुसुमानां स्तवकः तस्य. (ष० त०), तेजस्विपुरुषस्य द्वावेव व्यापारौ, भवतः। सर्वेषां मस्तके वर्त. वन एव वा विनश्येदिति भावः।

भावार्थः—फूलों के गुच्छे की तरह मनस्वी पुरुष की दो ही गतियाँ (वृत्तियाँ) होती हैं, सब के मस्तक पर रहे या वन में ही (अपने उद्गम स्थान पर ही) सूख जाय ॥ १२६ ॥

यच्चान्यस्मै एतद्वृत्तान्तकथनम्, तदप्यनुचितम्।

व्याख्या—यच्च, अन्यस्मै=अपरस्मै, एतत=इदम, वृत्तान्तकथनम्=वृत्तान्तस्य कथनम्=उदन्तप्रतिपादनम् (ष० त०), तदपि, अनुचितम्=अयोग्यम्।

भाषार्थः—जो कि दूसरे से इस वृत्तान्त को कहना, वह भी अनुचित है।

यतः—अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १२७ ॥

अन्वयः—मतिमान्, अर्थनाशनम्, मनस्तापम्, गृहे, दुश्चरितानि च वञ्चनं च अपमानं च न प्रकाशयेत ॥

व्याख्या—मतिमान्=बुद्धिमान्, अर्थनाशम्=वित्तक्षयम्, मनस्तापम्=अन्तःकरणदुःखम्, गृहे=गेहे, दुश्चरितानि=दुराचाराणि, वञ्चनम्=परकृतं स्वप्रतारणम्, अपमानम्=परकृताम्, स्वावज्ञाम्, न प्रकाशयेत=परस्मै न कथयेत् ॥

टिप्पणी—मतिमान्=मतिर्विद्यतेऽस्येति मतिमान्, मति+मतुप्, अर्थनाशम्=अर्थस्य नाशस्तम् (ष० त०), मनस्तापम=मनसः तापस्तम् (ष० त०), दुश्चरितानि=दुष्टानि चरितानि (गतिसमासः), बुद्धिमान् जनः स्वस्य वित्तक्षयं, मनः सन्तापं गृहे यानि परस्मै प्रकाशायोग्यानि दुराचाराणि परकृतं स्वप्रतारणं परकृतां स्वावज्ञां परस्मै न कथयेदिति भावः ॥

भाषार्थः—बुद्धिमान्, अपने धन का नाश तथा मन का दुःख, अपने घर में हुए दुराचार, वचना (ठगाना) और अपमान इनको न प्रकट करे ॥ १२७ ॥

यच्चाऽत्रैव याञ्चया जीवनं, तदप्यतीव गर्हितम्।

व्याख्या—यत् च, अत्रैव=अस्मिन् स्थान एव, याञ्चया=भीक्षया, जीवनम्=प्राणधारणम्, तत् अपि, अतीव=अत्यन्तं, गर्हितम्=निन्दितम्, अस्तीति शेषः।

भाषार्थः—जो कि यहीं पर भीख मांग कर जीवन का निर्वाह करना, वह भी तो बहुत ही निन्दित है ॥

यतः—वरं विभवहीनेन प्राणैः सन्तर्पितोऽनलः ।
नापचारपरिभ्रष्टः कृपणः प्रार्थ्यते जनः ॥ १२८ ॥

अन्वयः—विभवहीनेन, प्राणैः अनलः सन्तर्पितः इति वरम् । परन्तु उपचारपरिभ्रष्टः कृपण जनः न प्रार्थ्यते ।

व्याख्या—विभवहीनेन=वैभवशून्येन, जनेन, प्राणैः=असुभिः, अनलः=अग्निः, सन्तर्पितः=तृप्तिम् नीतः, इति, वरम्=श्रेष्ठम्, परन्तु, उपचारपरिभ्रष्टः=सत्काररहितः, कृपणः=कदर्यः, जनः=मनुष्यः, न प्रार्थ्यते=नो याच्यते ॥

टिप्पणी—विभवहीनेन=विभवेन हीनस्तेन (तृ० त०), उपचारपरिभ्रष्टः= उपचारेण परिभ्रष्टः सः (तृ० त०) सम्पत्तिरहितस्य जनस्याग्नौ प्रवेशः मनाक् प्रियो भवति परन्तु सत्काररहितमानवात्, याचन मीषदपि प्रियं न भवतीति भावः ॥

भावार्थः—विभव हीन द्वारा अपने प्राणों से अग्नि को तृप्त करना अच्छा है परन्तु सेवा-सत्कार हीन कृपण जन से प्रार्थना करना अच्छा नहीं है ॥ १२८ ॥

अन्यच्च—दरिद्रयाद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्त्वात् परिभ्रश्यते
निस्सत्त्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो ! निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥ १२९ ॥

अन्वयः—दारिद्र्यात्, ह्रियम्, एति, ह्रीपरिगतः सत्त्वात् परिभ्रश्यते, निःसत्त्वः परिभूयते परिभवात् निर्वेदम् आपद्यते, निर्विण्णः शुचम्, एति, शोकपिहितः बुद्ध्या परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयम् एति, अहो निधनता, सर्वापदाम् आस्पदम्, भवतीति शेषः ॥

व्याख्या—दारिद्र्यात्=निर्धनत्वात्, ह्रियम्=लज्जाम्, एति=याति, ह्रीपरिगतः=त्रपायुक्तः, सत्त्वात्=पराक्रमात्, परिभ्रश्यते=परिभ्रष्टो भवति, निःसत्त्वः= निर्बलः, परिभूयते तिरस्क्रियते, परिभवात्=तिरस्कारात्, निर्वेदम्=वैराग्यम्, आपद्यते=आप्नोति, निर्विण्णः=वैराग्ययुक्तः, शुचम्=शोकम्, एति=प्राप्नोति, शोकपिहितः=शुचाक्रान्तः, बुद्ध्या=धिया, परित्यज्यते=परिहीयते, निर्बुद्धिः= मतिशून्यः, क्षयम्=नाशम्, एति=प्राप्नोति, अहो=आश्चर्यम्, निधनता= निर्धनता, सर्वापदाम्=सकलापत्तीनाम्, आस्पदम्=स्थानम्, अस्तीति शेषः ।

टिप्पणी—ह्रीपरिगतः=ह्रिया परिगतः (तृ० त०), निर्गतं सत्त्वं यस्मात् सः (बहु०), शोकपिहितः=शोकेन पिहितः (तृ० त०), निर्बुद्धिः=निर्गता बुद्धिर्यस्मात् सः (बहु०), सर्वापदाम्=सर्वाश्च ताः, आपदस्तासाम् (क० धा०) । कर्णमालालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः । लज्जितो भवति मानवः दारिद्र्यात् ।

लज्जितत्वान्निर्बलः। निर्बलत्वात्, तिरस्कृतो भवति। तिरस्कृतत्वात्, विरक्तो भवति। विरक्तत्वात्, आपन्नशोको भवति, आपन्नशोकत्वात्, निर्बुद्धिर्भवति निर्बुद्धिः विनश्यति। आश्चर्यमिदम्। यतः निर्धनता सकलापत्तीनां हेतुर्भवति।

भावार्थः—दरिद्रता से लज्जा आती है, लज्जालु व्यक्ति निर्बल होता है, निर्बल पुरुष तिरस्कार पाता है, तिरस्कार से वैराग्य पैदा होता है। विरक्त (दुःख होने पर) शोक करता है, शोकाकुल बुद्धि से वंचित होता है और निर्बुद्धि विनष्ट हो जाता है। आश्चर्य है कि निर्धनता ही सारी विपत्तियों की जड़ है ॥ १२९ ॥

किञ्च—वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राऽभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि,
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनाऽऽस्वादनसुखम् ॥ १३० ॥

अन्वयः—मौनम् कार्यम् (इति) वरम्, यत् अनृतम् वचनम् उक्तम्, तत् न वरम्। पुंसाम् क्लैब्यम् वरम्, यत् परकलत्राभिगमनम्, तत् न वरम्, प्राणत्यागः वरम्, या, पिशुनवाक्येषु अभिरुचिः, (न वरा), भिक्षाशित्वम्, यत्, परधनास्वादनसुखम्, तत् न वरम्।

व्याख्या—मौनम्=तूष्णीभावत्वम्, कार्यम्=कर्तव्यम्, इति वरम्=किञ्चित्प्रियम्, यत्, अनृतम्=असत्यम्, वचनम्=वचः, उक्तम्=अभिहितम्, तत् न वरम्=किञ्चिदपि न प्रियम्। पुंसाम्=जनानाम्, क्लैब्यम्=षण्ढत्वम्, यत् परकलत्राभिगमनम्=अन्यस्त्रीसंभोगः, तत् न वरम्, न किञ्चिदपि प्रियम्, प्राणत्यागः=जीवहानिः, वरः=मनाक् प्रियः, परन्तु पिशुनवाक्येषु=खलोक्तिषु, या, अभिरुचिः=अभिप्रीतिः, सा न वरा=न किञ्चिपि प्रिया। भिक्षाशित्वम्=भिक्षाया-प्राप्तान्नभोजनम्, वरम्=ईषत्प्रियम्, यत् परधनास्वादनसुखम्=अन्यवित्तोपभोगा-नन्दः, तन्न वरम्=नेषदपि प्रियम्, 'भवती'ति सर्वत्र योज्यम्।

टिप्पणी—परकलत्राभिगमनम्=परस्य कलत्रम् (ष० त०), तस्मिन् अभि-गमनम् (स० त०), प्राणत्यागः=प्राणानां त्यागः, सः (ष० त०), पिशुन-वाक्येषु=पिशुनानां वाक्यानि तेषु (ष०त०), पिशुनो दुर्जनः खलः इत्यमरः। भिक्षाशित्वम्, अश्नातीति तच्छीलो भिक्षाशी, भिक्षा+अश+णिनिः (उप० स०), भिक्षाशिनो भावः भिक्षाशित्वम्, भिक्षाशि+त्वं, नपुं०। परधनास्वादनसुखम्= परस्य धनम् (ष० त०), तस्य आस्वादनम् (ष० त०), तस्य सुखम् (ष० त०), जोषमास्यस्थितिस्तथा, परन्तु अनृतभाषणं नोचितम्। नपुंसकत्वं युक्तम्, अन्य-नारिसंभोगः नोत्तमः। दुर्वचनापेक्षया, मरणं प्रशस्तम्, भिक्षया जीवननिर्वाहः श्रेष्ठः, नहि अन्यवित्तोपभोगानन्दः श्रेष्ठः, इत्याशयः। शिखरिणीछन्दः।

भावार्थः—मौन (चुपचाप) रहना अच्छा है पर झूठ बोलना अच्छा नहीं है; पुरुषों का नपुंसक होना ठीक है लेकिन परायी स्त्री के साथ व्यभिचार करना अच्छा नहीं है। प्राणत्याग करना अच्छा है परन्तु दुष्टों की बातों में रुचि रखना ठीक नहीं; मांग कर भोजन करना अच्छा है परन्तु पराये धन में सुख मानना अच्छा नहीं है ॥ १३० ॥

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः।
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाऽधिपपुरे
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥ १३१ ॥

अन्वयः—शून्या शाला वरम्, दुष्टवृषभः न वरः खलु, वेश्या पत्नी वरम्, पुनः अविनीता कुलवधूः न। अरण्ये वासः वरम्, पुनः अविवेकाधिपपुरे न। प्राणत्यागः वरम्, पुनः अधमानानाम् उपगमः न।

व्याख्या—शून्या = रिक्ता, शाला = गोशाला, वरम् = मनाक्प्रियम्, दुष्टवृषभः= दोषयुक्तबलीवर्दः, न वरः=श्रेष्ठो न भवति। वेश्या = व्यभिचारिणी, पत्नी = भार्या, वरम् = मनाक्प्रियम्, पुनः = भूयः, अविनीता = विनयरहिता, कुलवधूः = कुलीना स्त्री, न वरा = न श्रेष्ठा। अरण्ये = कानने, वासः स्थितिः वरम् = किञ्चित् प्रियम्, पुनः = भूयः, अविवेकाधिपपुरे = विवेकशून्यस्वामिनगरे, वासः न वरः = न श्रेष्ठः। प्राणत्यागः = जीवहानिः, वरम् = मनाक् प्रियम्, पुनः = भूयः, अधमानाम्=नीचानाम्, उपगमः = समीपगमनम्, न वरम् = किञ्चिदपि न प्रियम् ॥

टिप्पणी—दुष्टवृषभः = दुष्टश्चासौ वृषभः सः (क० धा०), अविनीता = न विनीता (नञ् त०), कुलवधूः = कुलस्य वधूः (ष० त०), अविवेकाधिपपुरे = अविद्यमानो विवेको यस्य सः (नञ् बहु० उत्त० लो०), सश्चासौ अधिपः (क० धा०), तस्य पुरम् तस्मिन् (ष० त०), प्राणानां त्यागः प्राणत्यागः (ष० त०), गवादिरहितं गोष्ठं वरम् , तस्मिन् दुष्टो वृषो न वरः। व्यभिचारिणी भार्या किञ्चित् प्रिया; पुनः विनयरहिता सुवंशोत्पन्ना स्त्री किंचिदपि न प्रिया। वननिवासः श्रेष्ठः, पुनः निर्विवेकस्वामिनगरे निवासः, न वरः। प्राणानां त्यागः श्रेष्ठः, नीचानां संगतिः न श्रेष्ठेति भावः। शिखरिणी वृत्तम्।

भावार्थः—गोशाला खाली रहे अच्छा, परन्तु उसमें दुष्ट (मरखाह) बैल रहना अच्छा नहीं (अथवा घर सूना रहना अच्छा, पर दुष्ट पुरुषों वाला घर अच्छा नहीं है।), वेश्या पत्नी अच्छी है परन्तु क्रूर स्वभाव वाली कुलवधू अच्छी नहीं। वन में निवास अच्छा, परन्तु अविवेकी राजा के नगर में रहना अच्छा नहीं। प्राण त्याग देना अच्छा है, परन्तु नीचों के पास में जाना अच्छा नहीं है ॥ १३१ ॥

अपि च—सेवेव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥ १३२ ॥

अन्वयः—सेवा, अखिलम् मानम् इव, ज्योत्स्ना तम इव, जरा लावण्यम् इव, हरिहरकथा दुरितम् इव, अर्थिता गुणशतम् अपि हरति ॥

व्याख्या—सेवा = शुश्रूषा, अखिलम् = समस्तम्, मानम् = गौरवम् इव = यथा, ज्योत्स्ना = चन्द्रिका, तमः = अन्धकारम्, इव=यथा, जरा = वृद्धत्वम्, लावण्यम् = सौन्दर्यम्, इव, हरिहरकथा = विष्णुशिवगुणानुवादः, दुरितम् = पापम्, इव = यथा, तथैव, अर्थिता = याचकता, गुणशतम् = शतसंख्यगुणान् , हरति = निवारयति ।

टिप्पणी—हरिहरकथा = हरिश्चहरश्च हरिहरौ (द्वन्द्वः), तयोः कथा (ष० त०), गुणशतम् = गुणानां शतम्, (ष० त०), यथा सेवा सम्पूर्णं सन्मानं ज्योत्स्नाऽन्धकारं वृद्धावस्था सौन्दर्यं विष्णुशिवगुणानुवादः पापं हरति तथैव याचकता शतगुणान् अपहरतीति भावः ।

भाषार्थः—जैसे सेवा (नौकरी) समस्त प्रतिष्ठा को, चाँदनी अन्धकार को, बुढ़ापा सुन्दरता को, विष्णु एवं शिव की कथा समस्त पाप को नाश करती है उसी तरह याचना (भिखमंगी) सैकड़ों गुणों को नाश कर देती है ॥ १३२ ॥

तत् किमहं परपिण्डेन आत्मानं पोषयामि ? कष्टं भोः ! तदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम् ।

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात् , अहम् = हिरण्यकः, किम् = किमर्थम्, आत्मानम् = स्वम्, परपिण्डेन = अन्यान्नपिण्डेन, पोषयामि = पोषणं करोमि । कष्टम् = दुःखम्, भोः = सम्बोधने, तदपि = परपिण्डेनात्मपोषणमपि, द्वितीयम् = अपरम्, द्वारम्=प्रतीहारः । परस्य पिण्डस्तेन, परपिण्डेन (ष० त०), मृत्युद्वारम्= मृत्योः द्वारम् (ष० त०) ।

भाषार्थः—इस कारण से, मैं क्यों दूसरे के अन्न से अपना पोषण करूँ ? अजी, बड़ा कष्ट है । वह भी दूसरा मृत्यु का द्वार है ॥

अन्यच्च—रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ १३३ ॥

अन्वयः—रोगी, चिरप्रवासी, परान्नभोजी, परावसथशायी यत् जीवति तत् मरणम्, यत् मरणम् सः अस्य विश्रामः ।

व्याख्या—रोगी = रुग्णः चिरप्रवासी = बहुकालं परदेशनिवासी, परान्नभोजी = अन्यान्नभोक्ता, परावसथशायी = परगृहशयनशीलः । 'तादृशः जनः' यत् जीवति = प्राणान् दधाति, तत् = जीवनम्, शरणम् = मृत्युः । यत् मरणम् = निधनम्, सः = प्राणत्यागः, अस्य = पूर्वोक्तजनस्य, विश्रामः = विश्रान्तिः ।

टिप्पणी—चिरप्रवासी = चिरं प्रवासी (सुप् सुपा), इति समासः, परान्नभोजी = परस्य अन्नम् तत् (ष० त०), तत् भुङ्क्ते तच्छीलः। परान्न + भुज् + णिनिः (उप० स०), परावसथशायी = परस्य अवसथः (ष० त०), तस्मिन् शेते तच्छीलः, परावसथ + शी + णिनिः (उप० स०)। आर्याछन्दः। रुग्णः, बहुकालपर्यन्तं परदेशे निवासकर्ता, परान्नादः, परगृहशयनप्रकृतिकः, यत् जीवति, तत् मरणं, यत् मरणं स अस्य विश्रांतिः।

भावार्थः—रोगी, लम्बे अर्से तक परदेश में रहने वाला, दूसरे का अन्न खाने वाला, दूसरे के घर में सोने वाला जो जीवन जीता है, वह मरण है और जो मरण है वह विश्राम है ॥ १३३ ॥

इत्यालोच्याऽपि लोभात् पुनरपि तदीयमन्नं ग्रहीतुं ग्रहमकरवम्।

व्याख्या—इत्यालोच्याऽपि=इत्थं विचार्यापि, लोभात् = लोलुपत्वात् पुनरपि= भूयोऽपि, तदीयमन्नम = तस्य संन्यासिनः अन्नम्, ग्रहीतुम् = आदातुम्, ग्रहम् = आग्रहम्, अकरवम् = कृतवान्।

भावार्थः—ऐसा विचार कर भी मैंने लोभ से फिर उस संन्यासी के अन्न ग्रहण करने के लिये आग्रह किया।

तथा चोक्तं—लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥ १३४ ॥

अन्वयः—बुद्धिः लोभेन चलति, लोभः तृषाम् जनयते, तृषार्तः मानवः इह परत्र च दुःखम् आप्नोति।

व्याख्या—बुद्धिः = मतिः, लोभेन = लिप्सया, चलति = विचलिता, भवति, लोभः = लिप्सा, तृषाम = तृष्णाम्, जनयते = उत्पादयति, तृषार्तः = तृष्णापीडितः मानवः = मनुष्यः, इह = अस्मिन् लोके, परत्र = परलोके, दुःखम् = कष्टम्, आप्नोति = प्राप्नोति।

टिप्पणी—तृषार्तः = तृषया आर्तः (तृ० त०)। लोभः बुद्धिं विचलितां करोति, तृष्णामुत्पादयति, तृष्णाकुलः जनः, अस्मिन् लोके वा परलोके कष्टमनुभवतीति भावः।

भावार्थः—लोभ से बुद्धि विचलित होती है, लोभ तृष्णा को बढ़ाता है, तृष्णा से पीडित पुरुष यहाँ और परलोक में दुःख पाता है ॥ १३४ ॥

ततोऽहं मन्दं मन्दमुपसर्पस्तेन वीणाकर्णेन जर्जरवंशखण्डेन ताडितश्चाऽचिन्तयम्—'लुब्धो ह्यसन्तुष्टो नियतम् आत्मद्रोही भवति'।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम्, अहम् = हिरण्यकः, मन्दं मन्दम् = शनैः शनैः, उपसर्पन् = उपगच्छन्, तेन = पूर्वोक्तेन, वीणाकर्णेन = तन्नामकसंन्यासिना, जर्जरवंशखण्डेन = जीर्णवेणुशकलेन, ताडितः = आहतः, अचिन्तयम् = विचारितवान्,

लुब्धः = लोभपरवशः 'जनः', असन्तुष्टः = सन्तोषरहितः, नियतम्=नूनम्, आत्मद्रोही = आत्मध्रुक्, भवति=जायते।

भाषार्थः—इसके बाद मैं धीरे-धीरे जा रहा था तो उस चीर्णाकर्ण संन्यासी ने पुराने बाँस के टुकड़े से मुझे मारा तब मैंने विचार किया कि लोभी एवं असन्तुष्ट व्यक्ति अवश्य ही आत्मद्रोही होता है।

तथा च—धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रियः।
सर्वा एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम्॥ १२५॥

अन्वयः—यस्य मानसं न तुष्टं 'तादृशः' धनलुब्धः, असन्तुष्टः, अनियतात्मा, अजितेन्द्रियः, तस्य सर्वाः एव आपदः 'भवन्ति'।

व्याख्या—यस्य = जनस्य, मानसम्=मनः, न तुष्टम्=सन्तोषशून्यम्, 'तादृशः, धनलुब्धः = अर्थलोलुपः, असन्तुष्टः = सतृष्णः, अनियतात्मा = अवशीकृतचित्तः, अजितेन्द्रियः = अवशीकृतहृषीकः, 'भवति', तस्य = पूर्वोक्तस्य जनस्य, सर्वाः = सकलाः एव; आपदः = विपत्तयः, अभिभवन्ति।

टिप्पणी—धनलुब्धः = धने लुब्धः (स० त०), असन्तुष्टः = न सन्तुष्टः (नञ्, त०), अनियतात्मा = न नियतः (नञ्, त०), तादृशः आत्मा यस्य (बहु०), अजितेन्द्रियः = न जितानि अजितानि (नञ्, त०), अजितानि इन्द्रियाणि यस्य सः, (बहु०)। यस्य मनसि सन्तोषो नास्ति तादृशः यः सन्तोषशून्यः, अर्थलोलुपः, तृष्णासहितः इन्द्रियाधीनः पुरुषोऽस्ति तं सकलाः, विपत्तयः सम्पीडयन्तीति भावः।

भाषार्थः—जिस पुरुष का मन सन्तुष्ट नहीं है, वह धनलोभी, असन्तुष्ट, चंचल मन वाला, अजितेन्द्रिय होता है, उसको सारी विपत्तियाँ सताती हैं॥ १२५॥

सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥ १२६॥

अन्वयः—यस्य मानसम्, सन्तुष्टम्, तस्य सर्वाः सम्पत्तयः ननु, उपानद्गूढपादस्य, भूः चर्मावृता इव।

व्याख्या—यस्य = पुरुषस्य, मानसम् = मनः, सन्तुष्टम्, सन्तोषसहितम्, 'अस्ति', तस्य = जनस्य, सर्वाः=सकलाः, सम्पत्तयः=सम्पदः 'भवन्ति', उपानद्गूढपादस्य = चर्मपादुकावृतचरणस्य, भूः = अशेषा धरा, चर्मावृता=अजिनसंवृता इव, ननु = निश्चितमेतत्।

टिप्पणी—उपानद्गूढपादस्य = उपानद्भ्याङ्गूढौ (तृ० त०), तादृशौ पादौ यस्य तस्य (बहु०), चर्मावृता = चर्मण आवृता (तृ० त०)। चर्मपादुकायुक्त-

चरणस्य पुरुषस्य अशेषा धरा यथा चर्म्माच्छादिता भवति तथैव सन्तुष्टमनसः, जनस्य, सर्वाः सम्पत्तयः समापतन्तीति भावः ।

भाषार्थः—जिसका मन सन्तुष्ट है, उसी की सारी सम्पत्तियाँ भी हैं। जैसे जूते पहन कर चलने वाले पुरुष को समस्त भूतल चमड़े से ढका हुआ प्रतीत होता है ॥ १३६ ॥

अपरञ्च—सन्तोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ १३७ ॥

अन्वयः—सन्तोषामृततृप्तानाम् शान्तचेतसाम्, यत् सुखम् 'भवति', इतश्च, इतश्च धावताम् धनलुब्धानाम् तत् कुतः ?

व्याख्या—सन्तोषामृततृप्तानाम् = तृष्णाभावसुधाऽऽप्लावितानाम्, शान्तचेतसाम् = स्थिरान्तःकरणानाम्, यत् = यादृशम्, सुखम्=आनन्दः 'भवति', इतश्च एतश्च = समन्तात् ; प्रदेशान्तरे, धावताम् = परिभ्रमताम्, धनलुब्धानाम् = द्रव्यलोलुपानाम्, तत् = तादृशं सुखम्, कुतः = कस्माद्धेतोः स्यात्, इत्यर्थः ।

टिप्पणी—सन्तोषामृततृप्तानाम् = सन्तोषः अमृतमिव, सन्तोषामृतः (उपमितसमासः), तेन तृप्तास्तेषाम् (तृ० त०), शान्तचेतसाम् = शान्तानि चेतांसि येषां ते, तेषां (बहु०), धन लुब्धानाम् = धने लुब्धास्तेषाम् (स० त०) । तृष्णा विरहपीयूषाप्लावितस्वान्तानाम्, अनूर्मिमन्मनसां जनानामिति शेषः । यादृशं सुखं वर्तते, तादृशं सुखं द्रव्यलोलुपतया समन्तात् परिभ्रमतां कस्माद्धेतोः स्यादिति भावः ।

भाषार्थः—सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त शान्त चित्त वालों के (मन में) जो सुख है वह धन के लोभ में पड़े हुए इधर-उधर दौड़ने वालों को कहाँ ? ॥ १३७ ॥

किञ्च—तेनाऽधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाऽऽशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ १३८ ॥

अन्वयः—येन, आशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यम् अवलम्बितम्, तेन सर्वम् अधीतम्, 'सर्वं' श्रुतम्; 'सर्वं' अनुष्ठितम् ।

व्याख्या—येन = जनेन, आशाः = अभिलाषान् ; पृष्ठतः = पश्चात्, कृत्वा = विधाय, 'विहायेत्यर्थः' नैराश्यम् = निराशभावः, अवलम्बितम् = आश्रितम्, तेन; पुरुषेण, 'सकलं शास्त्रम्, अधीतम् = पठितम्, सर्वम् = सकलं शास्त्रं, श्रुतम् = आकर्णितम्, सर्वम् = शास्त्रीयं सकलं कर्म, अनुष्ठितम् = आचरितम् ॥

टिप्पणी—नैराश्यम्=निर्गता आशा यस्मात् स निराशस्तस्य भावः नैराश्यम्, निराश + ष्यञ् । येन पुरुषेणाऽऽशां विहाय निराशभाव आश्रितस्तेन सर्वशास्त्राणि पठितानि श्रुतानि च, सर्वाणि शास्त्रीयकर्माणि आचरितानीति भावः ।

भावार्थः—जिसने आशाओं को त्याग कर निराशा का अवलम्बन किया है उसने सब (शास्त्र) पढ़ लिया, सब सुन लिया और सभी कर्मों को कर लिया ॥ १३८ ॥

अपि च—असेवितेश्वरद्वारमदृष्टविरहव्यथम् ।
अनुक्तक्लीबवचनं धन्यं कस्यापि जीवनम् ॥ १३९ ॥

अन्वयः—असेवितेश्वरद्वारम्, अदृष्टविरहव्यथम्, अनुक्तक्लीबवचनम्, कस्यापि जीवनम् धन्यम् ॥

व्याख्या—असेवितेश्वरद्वारम् = अनाश्रितधनिकप्रतिहारम्, अदृष्टविरहव्यथम् = अनवलोकितवियोगदुःखम्, अनुक्तक्लीबवचनम् = अकथितदीनवाक्यम्, कस्यापि= कस्यचिद् विरलस्यैव, जीवनम् = प्राणधारणम्, धन्यम् = प्रशस्यतरम्, 'भवतीति शेषः' ।

टिप्पणी—असेवितेश्वरद्वारम्=न सेवितम्, असेवितम् (नञ्, त०), ईश्वरस्य द्वारम्, ईश्वरद्वारम् (ष० त०), असेवितं ईश्वरद्वारं यस्मिंस्तत्, अदृष्टविरहव्यथम्; न दृष्टा, अदृष्टा (न० त०), विरहस्य व्यथा (ष० त०), अदृष्टा विरहव्यथा यस्मिंस्तत् (बहु०), अनुक्तक्लीबवचनम् = न उक्तम्, अनुक्तम् (नञ्, त०), अनुक्तं क्लीबवचनं यस्मिंस्तत् (बहु०), येन पुरुषेण स्वजीवने धनिकस्य द्वारं नाश्रितं तथा वियोगार्तिरपि नानुभूता, एवं कदापि दीनवचनं नोच्चारितमेतादृशं जीवनं कस्यचित् विरलस्यैव महाभागस्य भवति ॥ १३९ ॥

भावार्थः—जिसने धनी पुरुष के द्वार का सेवन नहीं किया, तथा वियोग के दुःख का अनुभव नहीं किया एवं दीन वचन कभी नहीं कहा, ऐसा जीवन किसी विरले ही महाभाग का होता है ॥ १३९ ॥

यतः—न योजनशतं दूरं बाह्यमानस्य तृष्णया ।
सन्तुष्टस्य करप्राप्तेऽप्यर्थे भवति नादरः ॥ १४० ॥

अन्वयः—तृष्णया बाह्यमानस्य, 'जनस्य' योजनशतम् दूरं न । सन्तुष्टस्य, पुरुषस्य, करप्राप्तेऽपि अर्थे आदरः, न ।

व्याख्या—तृष्णया = धनगर्धया, बाह्यमानस्य=आकृष्यमाणस्य, योजनशतम् = शतयोजनपरिच्छिन्नप्रदेशोऽपि, दूरं न = विप्रकृष्टो न प्रतीयते, सन्तुष्टस्य = सन्तोषयुक्तस्य, अर्थतृष्णारहितस्य, पुरुषस्य, करप्राप्ते = हस्ततलयोर्मध्ये आसादितेऽपि, अर्थे = द्रव्ये, आदरः = आस्था, न = भवति ॥

टिप्पणी—योजनशतम् = योजनानां शतम् (ष० त०), करं प्राप्तः तस्मिन् (द्वि० त०), धनतृष्णया प्रेरिताय पुरुषाय शतयोजनदूरोऽपि प्रदेशः विप्रकृष्टत्वेन

न प्रतीयते। परन्तु सन्तोषयुक्तस्य जनस्य हस्ततलं प्राप्तेऽपि द्रव्ये समादरो न भवतीति भावः।

भाषार्थः—तृष्णा से आकर्षित पुरुष के लिए सौ योजन दूर नहीं है। सन्तुष्ट व्यक्ति का हाथ में आये हुए धन में भी आदर नहीं होता (अर्थात् उस धन के प्रति आकर्षण नहीं रहता)॥ १४०॥

तदत्र अवस्थोचितकार्यपरिच्छेदः श्रेयान्।

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात्, अत्र = अस्मिन् समये, अवस्थोचितकार्य-परिच्छेदः = दशायोग्यकार्यनिर्धारणम्, श्रेयान् = प्रशस्यतरः॥

टिप्पणी—अवस्थोचितकार्यपरिच्छेदः = अवस्थाया उचितम् = (ष० त०), अवस्थोचितं च तत् कार्यं (क० धा०), तस्य परिच्छेदः (ष० त०)।

भाषार्थः—इसलिए अब अपनी स्थिति के अनुकूल कार्य करने का निर्णय करना ही उचित है॥

को धर्मो ? भूतदया, किं सौख्यं ? नित्यमरोगिता जगति।
कः स्नेहः ? सद्भावः, किं पाण्डित्यं ? परिच्छेदः॥ १४१॥

अन्वयः—जगति कः धर्म, भूतदया, किं सौख्यम्, नित्यम् अरोगिता, कः स्नेह, सद्भावः, किं पाण्डित्यं, परिच्छेदः।

व्याख्या—जगति = संसारे, कः = कतमः, धर्मः = पुण्यम् (धर्मस्य), किं स्वरूपम्, भूतदया = प्राणिषु करुणा, सौख्यम् = सुखम्, किम् = किं स्वरूपम्, (सुखस्य किं स्वरूपम्), नित्यम् = सदा, अरोगिता = अरुग्णत्वम्, स्नेहः = प्रेमा, कः = कतमः (स्नेहस्य किं स्वरूपम्), सद्भावः = सर्वप्राणिषु सुखदुःखसमभावः, किं=कतमत्, पाण्डित्यम्=वैदुष्यं, च किं स्वरूपम्, परिच्छेदः=विचारः, निर्धारणम्, कार्याकार्ययोरिति शेषः।

टिप्पणी—भूतदया = भूतेषु दया (स० त०), अरोगिता = न रोगिता (नञ् त०), सद्भावः = सँश्चासौ भावः (क० धा०), पाण्डित्यम् = पण्डितस्य भावः, पण्डित + ष्यञ्। धर्मः कः इति प्रश्ने ह्युत्तरम्, प्राणिषु दया। सुखस्य किं स्वरूपम् इति प्रश्ने, नित्यमनामयता, इत्युत्तरम्, स्नेहस्वरूपं किम्, इति प्रश्ने, सर्वप्राणिषु सुखदुःखसमभावः, इत्युत्तरम्, पाण्डित्यं किं नाम, इति प्रश्ने, कार्याकार्ययोः, निर्धारणम् इत्युत्तरम्, इति भावः।

भाषार्थः—संसार में धर्म क्या है ? प्राणिमात्र पर दया, सुख क्या है ? आरोग्यता (बीमार न होना), स्नेह क्या है ? सब प्राणियों में सद्भाव (साधुता), पाण्डित्य किसे कहते हैं ? कर्तव्य एवं अकर्तव्य का निर्णय करना॥ १४१॥

तथा च—परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः।
अपरिच्छेदकर्तृणां विपदः स्युः पदे पदे ॥ १४२ ॥

अन्वयः—यदा विपत्तयः, आपन्नाः (तदा), परिच्छेदः पाण्डित्यम्, अपरिच्छेदकर्तृणां विपदः पदे पदे, स्युः।

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, विपत्तयः = विपदः; आपन्नाः = प्राप्ताः (तदा), परिच्छेदः = कृत्याकृत्यनिर्धारणम्, पाण्डित्यम् = वैदुष्यम् ॥

टिप्पणी—अपरिच्छेदकर्तृणाम्=परिच्छेदस्य कर्तारः (ष० त०), न परिच्छेदकर्तारस्तेषां (नञ्, त०), यदाऽऽपत्तयः समापतन्ति, तदा कृत्याकृत्यनिर्धारणं पाण्डित्यमस्ति। यतः कृत्याकृत्यनिर्धारणमकुर्वतां जनानां विपदः पदे पदे आयान्ति, इति भावः।

भाषार्थः—जब विपत्तियाँ आ जायं तब (कर्तव्याकर्तव्य) का विचार ही पाण्डित्य है, क्योंकि बिना विचारे कार्य करने वालों को विपदायें पग-पग पर होती हैं ॥ १४२ ॥

तथा हि—त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १४३ ॥

अन्वयः—कुलस्यार्थे एकम् त्यजेत्, ग्रामस्यार्थे कुलम् त्यजेत्, जनपदस्यार्थे ग्रामम् त्यजेत्, आत्मार्थे, पृथिवीम् त्यजेत् ॥

व्याख्या—कुलस्य = वंशस्य, अर्थे = निमित्ते, एकम् = कमप्येकं जनम्, त्यजेत् = मुञ्चेत्, ग्रामस्य = संवसथस्य, 'समौ संवसथग्रामौ' इत्यमरः। अर्थे = प्रयोजने, कुलम् = वंशम्, त्यजेत् = मुञ्चेत्, जनपदस्य = देशस्य, अर्थे = निमित्ते, ग्रामम् = संवसथम्, त्यजेत् = मुञ्चेत्, आत्मार्थे = स्वप्रयोजने, पृथिवीम् = भूमिम्, त्यजेत् = मुञ्चेत्।

भाषार्थः—कुल के (हित के) लिये एक को त्याग दे; गाँव की (भलाई) के लिए कुल को छोड़ देना चाहिए, जनपद (जिला की रक्षा) के लिए गाँव को त्याग दे और अपने लिए अपनी भलाई के लिए) पृथ्वी को त्याग देना चाहिए ॥ १४३ ॥

अपरं च—पानीयं वा निरायासं स्वाद्वन्नं वा भयोत्तरम्।
विचार्य्य खलु पश्यामि तत् सुखं यत्र निर्वृतिः ॥ १४४ ॥

अन्वयः—निरायासम्, पानीयम् वा भयोत्तरम् स्वादु अन्नम् वा, यत्र निर्वृतिः तत् सुखम्, विचार्य पश्यामि खलु।

व्याख्या—निरायासम् = श्रमरहितम्, पानीयम् = जलम्, वा भयोत्तरम् =

पश्चाद्भीतियुक्तम्, स्वादु = मधुरम्, अन्नम् = भक्ष्यपदार्थः, वा। यत्र = यस्मिन्, निर्वृत्तिः = शान्तिः, तत् सुखम् = आनन्दः, इति विचार्य = विमृश्य, पश्यामि = विलोकयामि, खलु = निश्चयेन।

टिप्पणी—निरायासम्=निर्गतः, आयासो यस्मात्, तत् (बहु०), भयोत्तरम्= भयम्, उत्तरम् यस्मिन्, तत् (बहु०), श्रमरहितं जलम्, पश्चाद्भाविभीतियुक्तम्, मधुरमभीष्टमन्नं वा स्यात्। अनयोः यस्मिन् मनसः शान्ति स्यात्, तत् सुखम्, इति, विचार्य पश्यामि, इति भावः।

भाषार्थः—बिना परिश्रम का पानी है लेकिन स्वादु अन्न के पीछे भय है, परन्तु (इन दोनों की प्राप्ति में) जहाँ निवृत्ति (इच्छा का अभाव) है वह (सबसे बढ़िया) सुख है, इसे अच्छी तरह विचार कर देख रहा हूँ ॥ १४४ ॥

इत्यालोच्याऽहं निर्जनवनमागतः।

व्याख्या—इति = एवं, आलोच्य = विचार्य, अहम् = हिरण्यकः, निर्जनवनम्= मनुष्यरहितं वनम्, आगतः = समायातः।

भाषार्थः—ऐसा विचार कर मैं निर्जन वन में आ गया।

यतः—वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयः पत्रफलाम्बुभक्षणम्।
तृणानि शय्या वसनं च वल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥१४५॥

अन्वयः—द्रुमालयः पत्रफलाम्बुभक्षणम्, तृणानि शय्या, वसनम् च वल्कलम् (एतादृशम्), व्याघ्रगजेन्द्रसेवितम् वनम् वरम्, बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्, न वरम्।

व्याख्या—द्रुमालयः = वृक्ष एव गृहम्, पत्रफलाम्बुभक्षणम् = पर्णसस्यजल-भोजनम्, तृणानि = कासकुशघासादीनि, शय्या = शयनस्थानम्, वसनम्, परि-धानम्, च वल्कलम् = वृक्षत्वक् (एतादृशम्), व्याघ्रगजेन्द्रसेवितम् = शार्दूल-करीन्द्राश्रितम्, वनम् = अरण्यम्, वरम् = किञ्चित् प्रियम्; परन्तु 'बन्धुमध्ये = बान्धवसमुदाये, धनहीनजीवनम् = निर्धनो भूत्वा प्राणधारणम्, न = न वरम्।

टिप्पणी—द्रुमालयः = द्रुम एव आलयः (रूपकस०), पत्रफलाम्बुभक्षणम् = पत्राणि च फलानि च अम्बु च, पत्रफलाम्बूनि (द्वन्द्व०); तेषां भक्षणम् (ष० त०), व्याघ्रगजेन्द्रसेवितम् = व्याघ्राश्च गजेन्द्राश्च व्याघ्रगजेन्द्राः (द्वन्द्वः), तैः सेवितम् तत् (तृ० त०), बन्धुमध्ये = बन्धूनां मध्यम् तस्मिन् (ष० त०), धन-हीनजीवनम् = धनेन हीनम् (तृ० त०), तच्च तत् जीवनम् (क० धा०)। बान्धवसमुदाये निर्धनो भूत्वा जीवनयापनापेक्षया शार्दूलनागेन्द्रव्याप्तं वृक्ष एव यत्र आलयः तृणानि शय्या, पत्रफलाम्बुभक्षणम् वृक्षाणां त्वगेव वस्त्रम् एतादृशं यद् वनं तत्र निवासः श्रेष्ठः, इति भावः।

भावार्थः—जंगल ही घर है, जहाँ पत्ते तथा पके हुए फल भोजन हैं और नदी-झीलों का पानी पीना है, घासादि शय्या (बिछौना) है, वृक्षों की छाल ही वस्त्र है, बाघ एवं मदमस्त हाथियों से सेवित वन अच्छा है; परन्तु भाई-बन्धुओं के मध्य में धनहीन जीवन अच्छा नहीं ॥ १४५ ॥

ततः अस्मत्पुण्योदयादनेन मित्रेणाहं स्नेहानुवृत्त्याऽनुगृहीतः। अधुना च पुण्यपरम्परया भवदाश्रयः स्वर्ग एव मया प्राप्तः।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम् , अस्मत् पुण्योदयात् = मद्धर्माभ्युदयेन, अनेन= एतेन, मित्रेण = सख्या, लघुपतनकनामकेन काकेन, अहम् = हिरण्यकः, स्नेहानुवृत्या = प्रेमानुसारेण, अनुगृहीतः = अनुकम्पितः। अधुना च = इदानीं च, पुण्यपरम्परया = धर्मपङ्क्त्या, भवदाश्रयः = त्वदालयः, स्वर्ग एव = सुरलोक एव, मया हिरण्यकेन, प्राप्तः = आसादितः।

टिप्पणी—अस्मत्पुण्योदयेन = अस्माकं पुण्यं (ष० त०), तस्य उदयं, तेन (ष० त०), स्नेहानुवृत्या = स्नेहस्य अनुवृत्तिस्तया (ष० त०), पुण्यपरम्परया = पुण्यानाम् परम्परा तया (ष० त०), भवदाश्रयः = भवतः आश्रयः (ष० त०)।

भावार्थः—इसके बाद हमारे पुण्यों के उदय से इस मित्र (लघुपतनक) ने मुझे स्नेहपूर्वक अनुगृहीत किया। इस समय भी पुण्यों की परम्परा से आपका (कछुआ) का आश्रय (स्थान) जैसे स्वर्ग ही हो मैंने प्राप्त कर लिया है ॥

अतः—संसारविषवृक्षस्य द्वे एव रसवत्फले।
काव्यामृतरसास्वादः सङ्गमः सज्जनैः सह ॥ १४६ ॥

अन्वयः—काव्यामृतरसास्वादः सज्जनैः सह सङ्गमश्च संसारविषवृक्षस्य द्वे एव रसवत्फले 'स्तः'।

व्याख्या—काव्यामृतरसास्वादः = कवितासुधारसास्वादनम् , सज्जनैः = भद्रपुरुषैः, सह = साकम् , सङ्गमः = सङ्गतिश्च, इमे संसारविषवृक्षस्य=प्रपञ्चगरलतरोः= द्वे, एव = द्वितये, एव, रसवत्फले = आस्वादपूर्णसस्ये 'स्तः'।

टिप्पणी—काव्यामृतरसास्वादः=काव्याम् एव अमृतम् (रूपकसमासः), तस्य रसः (ष० त०), तस्य आस्वादः (ष० त०), संसारविषवृक्षस्य = विषस्य वृक्षः विषवृक्षः (ष० त०), संसार एव विषवृक्षस्तस्य (रूपकसमासः), रसवत फले = रसः, अनयो तिष्ठतीति रसवती, रस+मतुप्, रसवती च ते फले, ते, (क० धा०)। अस्य संसारगरलतरोः रसवत् फले द्वे एव, काव्यसुधासेवनं साधुसमागमश्च, इति भावः।

भाषार्थः—काव्यरूप अमृत रस (शृङ्गारादि) का आस्वादन और साधु की सङ्गति ये दो संसाररूपी विष वृक्ष के फल हैं ॥ १४६ ॥

अपरञ्च—सत्सङ्गः केशवे भक्तिर्गङ्गाऽम्भसि निमज्जनम् ।
असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत् ॥ १४७ ॥

अन्वयः—असारे खलु संसारे सत्सङ्गः, केशवे भक्तिः, गङ्गाऽम्भसि निमज्जनम्, (इति) त्रीणि साराणि भावयेत् ॥

व्याख्या—असारे = सारशून्ये, तुच्छे, संसारे = जगति, सत्सङ्गः = साधुसमागमः, गङ्गाऽम्भसि = भागीरथ्यास्तोये, निमज्जनम् = स्नानम्, एतानि, त्रीणि = त्रित्वसंख्यकानि, साराणि = स्थिरफलानि, 'सन्तीति, भावयेत् = चिन्तयेत् ॥

टिप्पणी—असारे = अविद्यमानः सारः यस्मिन्, सः तस्मिन् (नञ् बहु०, उत्तर० लोप०), गङ्गाम्भसि=गङ्गायाः अम्भस्तस्मिन् (ष० त०) । सारशून्यसंसारे, सज्जनसङ्गतिः, परमेश्वरेऽनुरागः एतानि त्रित्वसंख्यायुतानि, स्थिरफलानि चिन्तयेदिति भावः ।

भाषार्थः—निःसार संसार में सज्जनों का संग, केशव (श्रीकृष्ण या विष्णु) में भक्ति, गंगा के जल में डुबकी लगाकर स्नान, इन्हीं तीन तत्वों को चिन्तन करना चाहिए ॥ १४७ ॥

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवन-
मायुष्यं जलबिन्दुलोलचपलं फेनोपमं जीवनम् ।
धर्मं यो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गाऽर्गलोद्घाटनं
पश्चात्तापहतो जरापरिणतः शोकाग्निना दह्यते ॥ १४८ ॥

अन्वयः—अर्थाः पादरजोपमाः यौवनम्, गिरिनदीवेगोपमम्, आयुष्यम्, जललोलबिन्दुचपलम्, जीवनम् फेनोपमम्, यः निश्चलमतिः (सन्), स्वर्गाऽर्गलोद्घाटनम्, धर्मम् न करोति, सः जरापरिणतः पश्चात्तापहतः (सन्), शोकाग्निना, परिदह्यते ॥

व्याख्या—अर्थाः = धनानि, पादरजोपमाः = चरणधूलिसदृशाः, यौवनम् = लावण्यम्, गिरिनदीवेगोपमम् = पर्वतनदीप्रवाहसदृशम्, आयुष्यम्=जीवनकालः, जललोलबिन्दुचपलम् = सलिलचपलपृषतचञ्चलम्, जीवनम् = प्राणधारणम्, फेनोपमम् = डिण्डीरतुल्यम् (एतावतापि), यः = पुरुषः, निश्चलमतिः = स्थिरबुद्धिः (सन्), स्वर्गाऽर्गलोद्घाटनम् = सुरलोकप्रतिबन्धविनाशकम्, धर्मम् = पुण्यं, यागादि, न करोति = नाचरति, सः=पुरुषः, जरापरिणतः = जरठत्वपरिणामं प्राप्तः, पश्चात्तापहतः = मरणसमये वेदना व्याप्तः, शोकाग्निना=दुःखाग्निना, परिदह्यते = सन्तप्यते ॥

टिप्पणी—पादरजोपमाः = पादस्य रजः (ष० त०), स उपमा येषां ते (बहु०), सकारान्त रजस् तथा तमस् नपुंसक लिङ्ग हैं। परन्तु क प्रत्ययान्त पुल्लिङ्ग हैं। 'रजोऽयं रजसा सार्धं स्त्रीपुष्पगुणधूलिषु' इत्यजयकोषः। इसी से, रजोपमा, यहाँ गुणसन्धि साधु है। गिरीनदीवेगोपमम् = गिरेः नदी (ष० त०), तस्या वेगः (ष० त०), सा, उपमा यस्य तत् (बहु०), जललोलबिन्दुचपलम् = लोलश्चासौ बिन्दु, (क० धा०), जलस्य लोलबिन्दुः (ष० त०), स इव चपलं (उपमानपूर्वपदकर्म०), फेनोपमम् = फेन उपमा यस्य तत् (बहु०), निश्चलमतिः = निश्चला मतिर्यस्य सः (बहु०), स्वर्गार्गलोद्घाटनम् = स्वर्गस्य, अर्गला (ष० त०), तस्या उद्घाटनम् (ष० त०), जरापरिणतः = जरया परिणतः (तृ० त०), पश्चात्तापहतः = पश्चात्तापेन हतः (तृ० त०), शोकाग्निना = शोक एव अग्निः तेन (रूपकसमासः), उपमा एवं रूपक = अलङ्कार शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। संसारे धनं पादरज सदृशं, यौवनं पर्वतीयनदीवेगतुल्यम्, अस्थिरं मनुष्यायुः जलबिन्दुसमानं (सद्यः शुष्यति), जीवनं, फेनसदृशम्, आशुविनाशि (एतावतापि), यो नरः स्वर्गकपाटोद्घाटकं यागादि पुण्यं कर्म नाचरति, सः वृद्धावस्थायां पश्चात्तापं कुर्वन् शोकाग्निना परिदह्यते, इति भावः॥

भावार्थः—धन पैर की धूली के समान है, युवावस्था पर्वतीय नदी के वेग (प्रवाह) तुल्य है, आयु जल की चंचल बूंद की तरह क्षणिक है, जीवन फेन (झाग) के समान क्षणभङ्गुर है। फिर भी जो मनुष्य स्वर्ग के दरवाजे को खोलने वाले धर्म (यागादि पुण्य कर्म) को नही करता है, वह पुरुष वृद्धावस्था में पश्चात्ताप करता हुआ शोकरूपी अग्नि से जलता रहता है॥ १४८॥

युष्माभिः अतिसञ्चयः कृतः, तस्यायं दोषः।

व्याख्या—युष्माभिः = भवद्भिः, अतिसञ्चयः = अति धन एकत्रितः तस्य = एकत्रितधनस्य, अयं = एषः, दोषः = दण्डः, दूषणम्।

भावार्थः—तुमने अधिक धन इकट्ठा किया, उसका यह दोष है॥

शृणु—उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाऽम्भसाम्॥ १४९॥

अन्वयः—तडागोदरसंस्थानाम्, अम्भसाम्, परीवाह इव उपार्जितानाम्, वित्तानाम् त्याग एव रक्षणम्॥

व्याख्या—तडागोदरसंस्थानाम = जलाशयगर्भस्थितानाम्, अम्भसाम् = जलानाम्, परीवाहः = बहिर्गतिः, इव = यथा, उपार्जितानाम् = सञ्चितानाम, वित्तानाम = धनानाम्, त्यागः = पात्रे दानम्, एव = निश्चयेन, रक्षणम् = पालनम्, भवतीति शेषः॥

टिप्पणी—तडागोदरसंस्थानाम् = तडागस्य उदरम्, तडागोदरम् (ष० त०), तस्मिन् संस्था येषां तानि तेषाम् (व्य० बहु०), जलाशयस्थजलानां बहिर्गमन-सदृशं, उपार्जितवित्तानां त्याग एव रक्षणमस्तीति भावः।

भाषार्थः—तालाब के पेटा में स्थित जल के बहाव की तरह उपार्जित धन का त्याग ही रक्षण है ॥ १४९ ॥

अन्यच्च—यदधोऽधः क्षितौ वित्तं निचखान मितम्पचः।
तदधो निलयं गन्तुं चक्रे पन्थानमग्रतः ॥ १५० ॥

अन्वयः—मितम्पचः क्षितौ अधः अधः वित्तं यत् निचखान तत् अग्रतः अधो-निलयम् गन्तुम् पन्थानम् चक्रे ॥

व्याख्या—मितम्पचः = कृपणः, क्षितौ = पृथिव्याम्, अधः अधः = भूमेरधोऽधो भागे, वित्तम् = धनम् निचखान = निखातवान्, तत् = निखननम्, अग्रतः = प्रथमतः, अधोनिलयम् = पातालं, नरकं वा, गन्तुम् = यातुम्, पन्थानम् = मार्गम्, चक्रे = कृतवान् ॥

टिप्पणी—यः कदर्यो जनः भूमिं विदार्य यत् वित्तं स्थापयति, तत्खननस्याय-माशयः। तेन (कदर्येण), पातालं नरकं वा गन्तुं स्वमरणपूर्वमेव मार्गो निरमायि, इति भावः।

भाषार्थः—कंजूस ने पृथ्वी में खूब गहरे जो धन गाड़ दिया, वह गड़ा हुआ धन आगे से ही पातालपुरी में (या नरक में) जाने के लिए अपना रास्ता बना लिया ॥ १५० ॥

यतः—निजसौख्यं निरुन्धानो यो धनार्जनमिच्छति।
परार्थभारवाहीव स क्लेशस्यैव भाजनम् ॥ १५१ ॥

अन्वयः—यः निजसौख्यम् निरुन्धानः धनार्जनम् इच्छति। सः परार्थभार-वाही इव क्लेशस्य एव भाजनम् ॥

व्याख्या—यः = जनः, निजसौख्यम् = स्वसुखम्, निरुन्धानः = निवारयन्, धनार्जनम् = द्रव्यसंग्रहम्, इच्छति = वाञ्छति। सः = पुरुषः, परार्थभारवाही = अन्यनिमित्तकाष्ठपाषाणादेः गुरुपदार्थस्य वहनकर्ता, 'रासभः' इव = यथा, क्लेश-भाजनम् भवति तथा द्रव्योपार्जनप्रयासस्य पात्रं भवति, न तु तत् फलं भुङ्क्ते।

टिप्पणी—निजसौख्यम् = निजस्य सौख्यम् तत् (ष० त०), परार्थभारवाही= परस्य अर्थः परार्थः (ष० त०), तस्य भारः (ष० त०), तं वहतीति तच्छीलः परार्थभार + वह + णिनिः (उप० स०), धनार्जनम् = धनस्य अर्जनम् तत् (ष० त०), यः स्वसुखं निरुन्धन् धनोपार्जनमिच्छति, सः परस्य, गुरुभारवाहक, रास-भादिरिव दुःखपात्रमेव भवति, इति भावः।

भाषार्थः—जो पुरुष अपने सुख को रोकते हुए धन के उपार्जन की इच्छा करता है। वह दूसरे के माल को ढोने वाले (बैल या गधा) के समान दुःख का ही पात्र होता है ॥ १५१ ॥

तथा चोक्तं—दानोपभोगहीनेन धनेन धनिनो यदि।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनिना वयम् ॥ १५२ ॥

अन्वयः—दानोपभोगहीनेन, धनेन धनिनः यदि (तर्हि), तेनैव धनेन वयम् धनिनः किं न भवामः।

व्याख्या—दानोपभोगविहीनेन = वितरणसम्भोगरहितेन, धनेन = वित्तेन, धनिनः = धनवन्तः, यदि = चेत् (तर्हि), तेनैव=पूर्वनिर्दिष्टेनैव, धनेन = द्रव्येषु, धनिनः = धनवन्तः, किं न भवामः = किं न स्म, वयमपि।

टिप्पणी—दानोपभोगहीनेन = दानं च उपभोगश्च, दानोपभोगौ (द्वन्द्वः), ताभ्यां हीनं तद तेन (तृ० त०), दानोपभोगरहितधनेन जना यदि धनवन्तो भवन्ति तर्हि तादृशेन धनेन वयमपि किं धनिनो न भवामः (अपि तु भवाम एव)।

भावार्थः—दान या उपभोग इन दोनों से रहित धन से यदि (लोग) धनी होते हैं तो उसी धन से हम सब धनी क्यों नहीं होवें ? ॥ १५२ ॥

यतः—धनेन किं ? यो न ददाति नाऽश्नुते
बलेन किं ? यश्च रिपून् न बाधते।
श्रुतेन किं ? यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मना ? यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥ १५३ ॥

अन्वयः—यः न ददाति न अश्नुते (तस्य), धनेन किम्, यश्च रिपून् न बाधते (तस्य), बलेन किम्, यश्च धर्मम् न आचरेत् (तस्य), श्रवणेन किम्, यो जितेन्द्रियो न भवेत् (तस्य), आत्मना किम्।

व्याख्या—यः = जनः, न ददाति = न वितरति, न अश्नुते = न भुङ्क्ते (तस्य = पुरुषस्य), धनेन = द्रव्येण, दानभोगरहितेनेति शेषः, किं = किं भवति। यश्च = जनः, रिपून् = शत्रून्, न बाधते = न दण्डयति (तस्य), बलेन=शक्त्या, किं = किं भवति। यश्च = जनः, धर्मम् = पुण्यम्, न आचरेत = न कुर्यात (तस्य) श्रुतेन = शास्त्रश्रवणेन, किम् = किं भवति। यश्च = जनः, जितेन्द्रियः = वशीकृत-हृषीकः, न भवेत् = न स्यात, तस्य = पुरुषस्य, आत्मना = शरीरेण, शरीरलाभेने-त्यर्थः. किं भवेत् = न किमपीति भावः।

टिप्पणी—जितेन्द्रियः = जितानि इन्द्रियाणि येन सः (बहु०), वंशस्थः छन्दः। दानोपभोगहीनपुरुषस्य धनं धिक्। रिपुपराभवशून्यस्य बलं धिक्?

धर्माचरणशून्यस्य शास्त्रश्रवणं धिक्, अजितेन्द्रियस्य शरीरलाभं धिक् इति भावः।

भाषार्थः—जो न देता है और न खाता (उपभोग ही करता) है, उसके धन से क्या फल है ? जो शत्रुओं को पीड़ित नहीं करता है उसके बल से क्या लाभ ? जो धर्म का आचरण नहीं करता है, उसके शास्त्र-श्रवण से क्या फल है ? जो इन्द्रियों को वश में करनेवाला न है, उसके शरीर धारण से क्या फल है ? ॥ १५३ ॥

अन्यच्च—असम्भोगेन सामान्यं कृपणस्य धनं परैः।
अस्येदमिति सम्बन्धो हानौ दुःखेन गम्यते ॥ १५४ ॥

अन्वयः—कृपणस्य धनम्, असम्भोगेन, परैः सामान्यम्, हानौ दुःखेन अस्य इदम् इति सम्बन्धः गम्यते।

व्याख्या—कृपणस्य = कदर्यस्य, धनम् = द्रव्यम्, असम्भोगेन = उपभोगशून्येन (अनुपभुक्तत्वादित्यर्थः), परैः = धनरहितैः, सामान्यम् = तुल्यम्, हानौ= चौरादिना धननाशे सति, दुःखेन = कष्टेन, अस्य = कृपणस्य, इदम् = धनम्, इति सम्बन्धः = स्वस्वामिभावरूपः सम्पर्कः, गम्यते = ज्ञायते ॥

टिप्पणी—असम्भोगेन = न सम्भोगस्तेन (नञ् त०), कृपणस्य धनं उपभोगाभावात् अन्येषां धनेन सह सामान्यमस्ति। परन्तु चौरादिना धन नाशे सति कृपणस्य दुःखं दृष्ट्वा, आः ! इदं धनम् अस्य आसीत्, एवं प्रकारकः सम्बन्धः धनेन सह तस्य, अवगम्यते इति भावः।

भाषार्थः—कृपण का धन उपभोग न होने से दूसरों के (धन के) समान है। परन्तु (धन की) हानि होने पर (चौरादि के द्वारा धन का नाश होने पर) 'इसका यह धन है' ऐसा सम्बन्ध जाना जाता है ॥ १५४ ॥

अपि च—न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः ॥ १५५ ॥

अन्वयः—कृपणस्य धनम् देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यः न आत्मने च न अस्ति, परं वह्नितस्करपार्थिवैः याति।

व्याख्या—कृपणस्य = कदर्यस्य, धनम् = द्रव्यम्, देवाय = सुराय न, विप्राय= ब्राह्मणाय न, बन्धुभ्यः = बान्धवेभ्यः न, आत्मने = स्वस्मै च, न = नास्ति। 'परन्तु, वह्नितस्करपार्थिवैः = अनलचोरनृपैः, सह याति = गच्छति, विनश्यतीति भावः'।

टिप्पणी—वह्नितस्करपार्थिवैः = वह्निश्च, तस्करश्च, नृपश्च, ते तैः (द्वन्द्वः), कृपणस्य धनं पद्यनिर्दिष्टदेवादीनां कृते नोपयुज्यते किन्तु वह्नितस्करपार्थिवैः विनाश्यते, इति भावः ॥

भाषार्थ—कञ्जूस का धन न देवता के लिये, न ब्राह्मण वास्ते, न बन्धु के लिए और न अपने ही लिये होता है। किन्तु वह धन अग्नि, चोर, तथा राजा के साथ हो जाता है (अर्थात् आग में जल जाता है या चोर चोरा लेता है अथवा राजा या राष्ट्र ले लेता है) ॥ १५५ ॥

तथा चोक्तं—दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमाऽन्वितं शौर्यम् ।
त्यागसहितञ्च वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥ १५६ ॥

अन्वयः—प्रियवाक्सहितं दानम्, अगर्वम् ज्ञानम्, शौर्यम् क्षमान्वितम्, वित्तम् च एतत् चतुर्भद्रम्, दुर्लभम् (अस्ति)।

व्याख्या—प्रियवाक्सहितम् = मनोहारिवाक्ययुक्तम्, दानम् = वितरणम्, अगर्वम् = दर्पशून्यम्, ज्ञानम् = बोधः। क्षमान्वितम् = तितिक्षायुक्तम्, शौर्यम् = शूरत्वम्, त्यागसहितम् = दानोपेतम्, वित्तम्=धनम्, एतत्=पूर्वोक्तम्, चतुर्भद्रम्= कल्याणचतुष्टयम्, दुर्लभम् = दुष्प्राप्यम्, अस्तीति शेषः।

टिप्पणी—प्रियवाक्सहितम् = प्रिया चासौ वाक् (क० धा०), तया सहितम् (तृ० त०), अगर्वम् = अविद्यमानः गर्वः, यस्मिंस्तत् (नञ् बहु० उत० लो०), क्षमान्वितम् = क्षमया अन्वितम् (तृ० त०), त्यागसहितम् = त्यागेन सहितम् 'तत् (तृ० त०), चतुर्भद्रम् = चतुर्णां भद्राणां समाहारः (समाहारद्विगुसमा०), मधुरवाणीयुक्तम् दानम्, गर्वरहितज्ञानं, सहनशीलतोपेतं शूरत्वं दानोपेतं धनम्। एतत् चतुर्विधं कल्याणं लोके दुर्लभमस्तीति भावः। आर्या छन्दः।

भाषार्थः—प्रियवाणी से युक्त दान, गर्व रहित ज्ञान, सहनशीलतायुक्त वीरता, और दानसहित धन,—ये चार प्रकार के कल्याण लोक में दुर्लभ हैं ॥ १५६ ॥

उक्तञ्च—कर्तव्यः सञ्चयो नित्यं कर्तव्यो नातिसञ्चयः ।
पश्य सञ्चयशीलोऽसौ धनुषा जम्बुको हतः ॥ १५७ ॥

अन्वयः—नित्यम् सञ्चयः कर्तव्यः, अतिसञ्चयः न कर्तव्यः; सञ्चयशीलः असौ जम्बुक धनुषा हतः इति पश्य।

व्याख्या—नित्यम् = प्रत्यहः, सञ्चयः = द्रव्यसंग्रहः, कर्तव्यः = करणीयः, अतिसञ्चयः = अधिकद्रव्यसंग्रहः, न कर्तव्यः = न करणीयः, सञ्चयशीलः = संग्रही असौ = अयम्, जम्बुकः = शृगालः, धनुषा = चापगुणेन, हतः = नाशितः। इति (त्वं) पश्य = विलोकय।

भाषार्थः—नित्य सञ्चय करना चाहिए; परन्तु अति सञ्चय (अधिक संग्रह) नहीं करना चाहिए। देखो, अति सञ्चय करने वाला वह सियार धनुष से मारा गया ॥ १५७ ॥

तावाहतुः—कथमेतत्? मन्थरः कथयति—

व्याख्या—तौ = मूषिक काकौ; आहतुः = उचतुः, कथम् = केन प्रकारेण, एतत् = इदम् वृत्तम्, मन्थरः = कच्छपः, कथयति = वदति।

भावार्थः—वे दोनों (मूषिक और कौआ) बोले—यह कैसे? मन्थर कहता है—

५. व्याधमृगालयोः कथा

आसीत् कल्याणकटकवास्तव्यो भैरवो नाम व्याधः। स चैकदा मांसलुब्धो धनुरादाय मृगमन्विष्यन् विन्ध्याटवीमध्यं गतः। तत्र तेन मृग एको व्यापादितः। ततो मृगमादाय गच्छता तेन घोराकृतिः शूकरो दृष्टः। ततस्तेन मृगं निधाय शूकरः शरेण हतः शूकरेणाप्यागत्य प्रलयघनघोरगर्जनं कुर्वता स व्याधो मुष्कदेशे हतः छिन्नद्रुम इव पपात।

व्याख्या—कल्याणकटकवास्तव्यः = कल्याणकटकदेशवासी, भैरवो नाम = नाम्ना भैरवः, व्याधः = मृगयुः, आसीत् = अभवत्। स च = भैरवश्च, एकदा = एकस्मिन् काले, मांसलुब्धः = आमिषाशनेच्छुः, धनुः = चापम्; आदाय = गृहीत्वा, मृगम् = हरिणम्, अन्विष्यन् = गवेषयन्, विन्ध्याटवीमध्यं = विन्ध्यपर्वतवनमध्यम्, गतः = यातः। तत्र = वनमध्ये, तेन = व्याधेन, एकः = एकत्वविशिष्टः, मृगः = हरिणः, व्यापादितः = हतः। ततः = अनन्तरम्, मृगम् = हरिणम्, आदाय = गृहीत्वा, गच्छता = व्रजता, तेन = व्याधेन, घोराकृतिः = भयङ्कराकारः, शूकरः = वराहः, दृष्टः = विलोकितः। ततः = अनन्तरम्, तेन = व्याधेन, मृगम् = हरिणम्, निधाय = संस्थाप्य, भूमावितिशेषः। तेन = व्याधेन, शरेण = इषुणा, शूकरः = वराहः, हतः = ताडितः। शूकरेण = वराहेन, आगत्य उपसृत्य, प्रलयघनघोरगर्जनम् = संवर्तमेघसदृशभयङ्करगर्जनम्, कुर्वाणेन = कुर्वता, 'शूकरेणापि स व्याधः' मुष्कदेशे = अण्डकोशप्रदेशे, हतः ताडितः, छिन्नद्रुमः = कृन्तवृक्षः, इव = यथा भूमौ, पपात = अपतत्।

टिप्पणी—कल्याणकटकवास्तव्यः = कल्याणकटके वास्तव्यः (स० त०), मांसलुब्धः = मांसे लुब्धः (स० त०), विन्ध्याटवीमध्यम् = विन्ध्यस्य अटवी (ष० त०), तस्य मध्यम् (ष० त०), घोराकृतिः = घोरा आकृतिः यस्य सः (बहु०), प्रलयघनघोरगर्जनं = प्रलयस्य घनः (ष० त०), घोरं च तत्, गर्जनम् (क० धा०), प्रलयघनस्य, इव घोरगर्जनम् तत् (ष० त०), मुष्कदेशे=मुष्कस्य देशस्तस्मिन् (ष० त०), छिन्नद्रुमः = छिन्नश्चासौद्रुमः (क० धा०)।

भावार्थः—कल्याणकटक देश का निवासी भैरव नाम का व्याध (शिकारी) था। एक दिन मांस का लोभी वह व्याध धनुष् लेकर मृग (हिरन) की खोज करता

हुआ विन्ध्याचल पर्वत के वन के मध्य में पहुँचा। वहाँ उसने एक मृग को मारा। इसके बाद मृग को लेकर जाते हुए उस (व्याध) ने भयङ्कर रूप वाला सूअर देखा। देखने के बाद उसने मृग को रखकर बाण से सूअर को मारा। सूअर भी आघात से गुस्सा में आकर प्रलयकारी मेघ के समान भयङ्कर गर्जना करके उसके (व्याध के) अण्डकोश में मार दिया और कटे हुए वृक्ष की भाँति (वह व्याध जमीन पर) गिरपड़ा॥

तथा चोक्तम्—जलमग्निविषं वस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते॥ १५८॥

अन्वयः—देही जलम् अग्निः विषम्, शस्त्रम्, क्षुत्, व्याधिः गिरेः पतनम्, किञ्चित् निमित्तम् आसाद्य प्राणैः विमुच्यते॥

व्याख्या—देही = शरीरी, जलम् = नद्यादीनां जलम्, अग्निः=अनलः, विषम् = गरलम्, क्षुत् = क्षुधा, व्याधिः = रोगः, गिरेः = पर्वतात्, पतनम् = निपतनम्, किञ्चित् = एष्वन्यतमम्, किमपि, निमित्तम् = हेतुम्, आसाद्य = प्राप्य, प्राणैः = असुभिः, विमुच्यते = त्यज्यते॥

टिप्पणी—शरीरधारी जलानलविषशस्त्रक्षुधारोगगिरिपतनेषु, किमपि, अन्यतमम्, निमित्तं प्राप्यासुभिः त्यज्यते, इति भावः।

भावार्थः—देहधारी जल, अग्नि, विष, शस्त्र, भूख, रोग, पर्वत से पतन (गिरना) इनमें से किसी एक को निमित्त बनाकर प्राणों से अलग होता है॥ १५८॥

अथः तयोः पादास्फालनेन एकः सर्पोऽपि मृतः। अत्रान्तरे 'दीर्घरावो' नाम जम्बुकः परिभ्रमन्नाहारार्थी मृतान् तान् मृगव्याधसर्पशूकरानपश्यत् आलोक्याचिन्तयच्च—अहो ! भाग्यम् ! अद्य महद्भोज्यं समुपस्थितम्'।

व्याख्या—अथ = एतदनन्तरम्, तयोः=व्याधशूकरयोः, पादास्फालनेन=चरणताडनेन, एकः = अद्वितीयः, सर्पोऽपि = भुजङ्गोऽपि, मृतः=निधनं गतः। अत्रान्तरे= एतन्मध्ये, दीर्घरावो नाम = नाम्ना दीर्घरावः, जम्बुकः=शृगालः, परिभ्रमन्=पर्यटन्, आहारार्थी = बुभुक्षुः, मृतान् = प्राणैर्वियुक्तान्, तान् = पूर्वोक्तान्, मृगव्याधसर्पशूकरान् = हरिणमृगयुभुजङ्गवराहान्, अपश्यत् = ददर्श। आलोक्य=दृष्ट्वा, अचिन्तयच्च = विचारितवान् च, अहो भाग्यम् = अहो इति हर्षे, भाग्यम् = दैवम्, अद्य = अस्मिन् दिवसे, महद्भोज्यम् = विपुलभक्ष्यवस्तु। समुपस्थितम् = सम्पुलब्धम्॥

टिप्पणी—पादास्फालनेन = पादानां आस्फालनम् तेन (ष० त०), आहारार्थी = आहारं अर्थयते तच्छीलः आहार + अर्थ + णिनिः (उप० स०), मृगव्याधसर्पशूकरान् = मृगश्च सर्पश्च शूकरश्च, मृगव्याधसर्पशूकराः तान् (द्वन्द्वः)।

भाषार्थः—इसके बाद उन दोनों (व्याध और सूकर) के पैरों की रगड़ से एक साँप भी मर गया। इसी बीच में आहार के लिये घूमते हुए दीर्घराव नामक सियार ने मरे हुए उन मृग, व्याध, सर्प, और सूअर को देखा और देखकर विचार किया—अहो! भाग्य है! आज बहुत ज्यादा भोजन उपस्थित हो गया है ॥

अथवा—अचिन्तितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् ।
सुखान्यपि तथा मन्ये दैवमत्रातिरिच्यते ॥ १५९ ॥

अन्वयः—यथैव देहिनाम् अचिन्तितानि दुःखानि आयान्ति तथा सुखानि अपि अत्र दैवम् अतिरिच्यते ।

व्याख्या—यथैव = यद्वदेव, देहिनाम् = शरीरिणाम्, अचिन्तितानि = अतर्कितानि, दुःखानि = कष्टानि, आयान्ति = आगच्छन्ति, तथा = तद्वत् , सुखानि अपि= आनन्दा अपि, आयान्ति = आगच्छन्ति, इति एवं मन्ये=जानामि, अत्र = अस्मिन् , आकस्मिकत्वेन सुखदुःखागमनविषये, दैवम् = भाग्यम्, जन्मान्तरकृतं कर्मेतिभावः । अतिरिच्यते = अतिरिक्तं भवति, मुख्यकारणं भवति, इति भावः ॥

टिप्पणी—अचिन्तितानि = न चिन्तितानि (नञ् त०), यथा शरीरधारिणामाकस्मिकतया दुःखानि आयान्ति तथैव सुखान्यपि, आगच्छन्ति । परन्तु एषु, भाग्यमेव मुख्यं कारणम् भवति ॥

भाषार्थः—देहधारियों के (आगे) जैसे अचिन्तित दुःख आते हैं उसी प्रकार सुख भी आते हैं ऐसा मैं मानता हूँ; परन्तु इनमें भाग्य (पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म) प्रबल है ॥ १५९ ॥

भवतु, एषां मांसैः मासत्रयं ममाधिकं भोजनं मे भविष्यति ।

व्याख्या—भवतु = अस्तु, एषाम् = एतेषाम्, मृगादीनाम्, मांसैः = पललैः, मासत्रयम् = मासत्रितयम्, यावत् , भोजनम् = भक्षणम्, भविष्यति = भविता, मासानां त्रयम् = मासत्रयम् (ष० त०) ।

भाषार्थः—अच्छा, इनके मांसों से मेरा तीन मास से अधिक भोजन होगा ।

मासमेकं नरो याति द्वौ मासौ मृगशूकरौ ।
अहिरेकं दिनं याति अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः ॥ १६० ॥

नरः एकम्, मासम् याति, द्वौ मासौ मृगशूकरौ 'यातः', अहिः एकम् दिनम्, याति, अद्य धनुर्गुणः भक्ष्यः ॥

व्याख्या—नरः = मनुष्यः, व्याधमांसमितिभावः । एकम् = एकसंख्यकम्, मासम्, पक्षद्वयम् यावत् , याति=गच्छति, मद्भोजननाम् इति शेषः । मृगशूकरौ= हरिणवराहौ, हरिणवराहमांसमितिभावः, द्वौ मासौ = पक्षचतुष्टयम् इति यावत् ।

'यातः = गच्छतः ।' एवं च, अहिः = सर्पः, सर्पदेहमासम्, एकं दिनम् = दिवसमेकं यावत् , याति = गच्छति, अद्य = अस्मिन् दिने, धनुर्गुणः = कार्मुकज्या, भक्ष्यः = भक्षणीयः मयेति शेषः ।

टिप्पणी—मृगश्च शूकरश्च मृगशूकरौ (द्वन्द्वः), व्याधदेहमांसं मद्भोजनाय मासमेकं यावत्, चलिष्यति, मृगशूकरयोः मांसेन पक्षचतुष्टयं यावत् भोजनं भविष्यति, सर्पमांसमपि, दिनमेकं यावत् भोजनं भविष्यति, अद्य कार्मुकज्या-भक्षणीयेति भावः ।

भाषार्थः—मनुष्य (व्याध) एक मास तक (भोजन) चलेगा, दो मास तक मृग तथा शूकर मांस चलेंगे। साँप (मांस भी) का एक दिन चलेगा। आज धनुष की डोरी खानी चाहिए ॥ १६० ॥

ततः प्रथमबुभुक्षायामिदं निःस्वादु कोदण्डलग्नं स्नायुबन्धनं खादामि, इत्युक्त्वा तथाऽकरोत् । ततश्छिन्ने स्नायुबन्धने द्रुतम् उत्पतितेन धनुषा हृदि निर्भिन्नः स दीर्घरावः पञ्चत्वं गतः। अतोऽहं ब्रवीमि—'कर्तव्यः सञ्चयो नित्यम्'—इत्यादि ।

व्याख्या—ततः=अनन्तरम्, प्रथमबुभुक्षायाम्=अद्यतनीनायां, भोक्तुमिच्छायां, इदम् = एतत् , निःस्वादु = स्वादरहितम्, कोदण्डलग्नम् = कार्मुकसंसक्तम्, स्नायुबन्धनम् = वल्कलासंयमनम्, खादामि = भक्षयामि । इति = एवम्, उक्त्वा = अभिधाय, तथा = तेन प्रकारेण स्नायुबन्धनादनम्, अकरोत् = कृतवान् , ततः = अनन्तरम्, स्नायुबन्धने = वल्कलाबन्धने, छिन्ने=खण्डिते (सति) द्रुतम् = तूर्णम्, उत्पतितेन = उत्सर्पितेन, धनुषा = कार्मुकेण, हृदि = वक्षस्थले, निर्भिन्नः = ताडितः, सः = शृगालः, पञ्चत्वं गतः = मृतः । अतः = अस्मात् कारणात , अहम् = मन्थरः, ब्रवीमि = वदामि, 'कर्तव्यः सञ्चयोनित्यमित्यादि ॥

टिप्पणी—प्रथमबुभुक्षायाम् = प्रथमा चासौ बुभुक्षा तस्यां (क० धा०), कोदण्डलग्नम् = कोदण्डे लग्नम् (स० त०) स्नायुबन्धनम् = स्नायोः बन्धनम् = (ष० त०) ।

भाषार्थः—'तब पहली भूख में यह स्वादहीन धनुष में लगे हुए तांत के बन्धन को खाता हूँ' यह कहकर उसने वैसा ही किया। तब धनुष की डोरी टूट जानेपर बहुत तेजी से ऊपर की ओर उछलते हुए धनुष से छाती में चोट खाकर वह दीर्घराव (सियार) मर गया। इस लिये मैं ऐसा कहता हूँ—'सञ्चय नित्य करना चाहिए'—इत्यादि ।

तथा च—यद्ददादि यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ।
अन्ये मतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥ १६१ ॥

अन्वयः—यत् ददाति, यत् अश्नाति धनिनः तदेवधनम्, अन्ये मृतस्य दारैः अपि धनैः क्रीडन्ति ।

व्याख्या—यद् = धनम्, ददाति = पात्रे वितरति, यत् = धनम्, अश्नाति = स्वयंभुङ्क्ते, तदेव = दीयमानमुपभुज्यमानमेव, धनिनः = धनवतः पुरुषस्य, धनम् = द्रव्यम् इति सार्थकं भवति । अन्ये = अपरे, मृतस्य = निधनंप्राप्तस्य धनिकजनस्य, दारैः=कलत्रैः अपि, धनैः=द्रव्यैः अपि, क्रीडन्ति=आनन्दमनुभवन्ति ।

टिप्पणी—पुरुषेण यद् धनम् सत्पात्राय दीयते, यच्च स्वयं भुज्यते तत दीयमानमुपभुज्यमानमेव धनिकस्य धनं सार्थकं भवति । धनिके मृते सति, अपरे जनाः, तद्धनैः तद्दारैः, आनन्दमनुभवन्ति, इति भावः ।

भाषार्थः—धनी जो देता है तथा जो उपभोग करता है धनी का वही अपना धन है । (नहीं तो) दूसरे लोग मरे हुए धनी के धन तथा स्त्री से खेलते हैं (आनंद भोगते हैं) ॥ १६१ ॥

किञ्च—यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥ १६२ ॥

अन्वयः—दिने दिने विशिष्टेभ्यः यद्ददासि, यच्च अश्नासि, अहम् तत् वित्तम् ते मन्ये, शेषम् कस्य अपि रक्षसि ।

व्याख्या—दिनेदिने = प्रतिदिवसम्, विशिष्टेभ्यः = सुपात्रेभ्यः, यद् = द्रव्यम्, ददासि = वितरसि, यत् च = द्रव्यम्, अश्नासि = स्वोपभोगार्थं व्ययं नयसि, तत्= द्रव्यम्, ते = तव, अस्तीति, इति अहम्, मन्ये=जानामि, शेषम्=दानाऽशनातिरिक्तं धनम्, कस्यापि = अन्यस्य जनस्योपभोगार्थम्, रक्षसि = संचिनोषि त्वमिति शेषः ।

टिप्पणी—त्वं सुपात्रेभ्य यद् धनं ददासि, यच्च धनं स्वोपभोगार्थं व्ययं करोषि, अहं तत् धनं तव जानामि, दानोपभोगातिरिक्तं तु धनम्, अन्यमनुजस्योपभोगाय संचिनोषीति भावः ।

भाषार्थः—प्रतिदिन सुपात्रों के लिये जो धन देते हो और जो खाते हो (उपभोग करते हो), मैं वह धन तुम्हारा मानता हूँ । बाकी धन तो किसी अन्य के लिये रक्षा करते (बचाते) हो ॥ १६२ ॥

यातु, किमिदानीमतिक्रान्तोपवर्णनेन ।

व्याख्या—यातु = विरमताम्, इदानीम् = अधुना, अतिकान्तोपवर्णनेन = व्यतीतविषयचर्चया, किम् = किं भवति ।

भाषार्थः—जाने दो, अब बीती हुई बात की चर्चा करने से क्या होता है।

यतः—नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः॥ १६३॥

अन्वयः—पण्डितबुद्धयः नराः अप्राप्यम् न अभिवाञ्छन्ति नष्टम् शोचितुम् न इच्छन्ति, आपत्सु अपि न मुह्यन्ति।

व्याख्या—पण्डितबुद्धयः=कृत्याकृत्यनिर्णायिकधीमन्तः नराः जना, अप्राप्यम्=अलभ्यम्, न अभिवाञ्छन्ति=नाभिलाषं कुर्वन्ति, नष्टम्=विनाशं, प्राप्तं 'वस्तु' शोचितुम्, नेच्छन्ति=इच्छां न कुर्वन्ति, आपत्सु अपि=विपत्तिषु च, न मुह्यन्ति=मोहं न प्राप्नुवन्ति।

टिप्पणी—पण्डितबुद्धयः=पण्डिताः, सदसद्विवेचिनी बुद्धिः मतिर्येषां ते, पण्डितबुद्धयः (बहु०)।

भाषार्थः—पण्डित बुद्धि वाले (भले-बूरे का विचार रखने वाले) मनुष्य अलभ्य वस्तु को नहीं चाहते, विनष्ट वस्तु को (लेकर) शोक नहीं करते तथा बड़ी-बड़ी आपत्तियों में भी मोहित नहीं होते हैं॥ १६३॥

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितञ्चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगम्॥ १६४॥

अन्वयः—शास्त्राणि अधीत्य अपि मूर्खाः भवन्ति, यस्तु पुरुषः क्रियावान् स विद्वान्, आतुराणाम् सुचिन्तितम् अपि औषधम् नाममात्रेण अरोगम् न करोति।

व्याख्या—शास्त्राणि=श्रुतिस्मृत्यादीनि, अधीत्य अपि, पठित्वा अपि, मूर्खाः=बालिशाः, भवन्ति=विद्यन्ते, यस्तु पुरुषः=नरः, क्रियावान्=कर्माऽनुष्ठाता, सः विद्वान्=पण्डितः। सुचिन्तितम्=सुविचारितम्, औषधम्=भेषजम्, नाममात्रेण=अभिधानमात्रेण, आतुराणाम्=रोगिणाम्, अरोगम्=रोगनाशनम्, न करोति=नो विदधाति।

टिप्पणी—क्रियावान्=क्रियाविद्यतेऽस्येतिक्रियावान्, क्रिया=मतुप्, अरोगम्=रोगस्यः अभावः (अर्था भावेऽव्ययीभावः)। पुरुषाः शास्त्राणि पठित्वापि तावन्मूर्खा एव तिष्ठन्ति। यावत् शास्त्रोक्तं कर्म ना चरंति यश्च शास्त्रोक्तकर्मानुष्ठाता स विद्वान्। सुविचारितमपि भेषजं नाममात्रेण रोगिभ्यो रोगमुक्तिं न ददातीति भावः।

भाषार्थः—शास्त्रों को पढ़ कर भी मूर्ख रहते हैं। जो पुरुष शास्त्र विहित कर्म (आचरण) करता है वह विद्वान् है; अच्छी तरह से सोचकर दी गई औषधि ही रोगी को रोग-मुक्त करती है केवल नाम मात्र से नहीं, अर्थात् औषधि के नाम लेने से रोग नहीं भागता है॥ १६४॥

अन्यच्च—न स्वल्पमप्यध्यवसायभीरोः करोति विज्ञानविधिर्गुणं हि।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोऽपि प्रकाशयत्यर्थमिह प्रदीपः॥ १६५॥

अन्वयः—विज्ञानविधिः अध्यवसायभीरोः स्वल्पम् अपि गुणं न करोति, हि, इह हस्ततलस्थितः अपि प्रदीपः अन्धस्य अर्थम् प्रकाशयति किम्।

व्याख्या—विज्ञानविधिः=शास्त्रविधानम्, अध्यवसायभीरोः=आचरणशून्यजनस्य, स्वल्पम्=स्तोकमपि, गुणम्=उपकारम्, न करोति=नो विदधाति। हि=यतः, इह=अस्मिन्, लोके हस्ततलस्थितोऽपि=करतलस्थोऽपि, प्रदीपः=दीपकः, अन्धस्य=दर्शनशक्तिशून्यस्य, अर्थम्=पदार्थम्, प्रकाशयति किं=द्योतयति किम्, अपि तु नेति भाव।

टिप्पणी—अध्यवसायभीरोः=अध्यवसायाद् भीरुः तस्य (पं० त०), शास्त्रविधानम्=शास्त्रस्य विधानम् (ष०त०), हस्ततलस्थितः=हस्तस्य तलं (ष०त०), तस्मिन् स्थितः (स० त०), शास्त्रविधानमाचारशून्यजनाय न कमपि गुणमादधाति। यतः अस्मिन् लोके यथा करतलस्थितोऽपि दीपः दर्शनशक्तिहीनपुरुषाय अन्धाय पदार्थान् न प्रकाशयति, इति भावः।

भावार्थः—विज्ञान की विधि उद्योग से डरने वाले का थोड़ा भी लाभ नहीं करती; क्योंकि हाथ में रखा हुआ भी दीपक अंधे की वस्तु को देखा देता है क्या? ॥ १६५॥

तदत्र सखे! दशाऽतिशेषेण शान्तिः करणीया, एतदप्यतिकष्टं त्वया न मन्तव्यम्।

व्याख्या—तत्=तस्माद्धेतोः, सखे!—मित्र! अत्र=मम गृहे, दशातिशेषेण=अवस्थावशेषेण, शान्तिः=सुखस्थितिः, करणीया=कर्तव्या। त्वया=भवता, एतदपि=मद्गृहावस्थानरूपा स्थितिः, अतिकष्टम्=अतिदुःखदा, इति=एवं न मन्तव्यम्=नानुसन्धेयम्॥

टिप्पणी—दशातिशेषेण=दशाया अतिशेषस्तेन (ष० त०), अतिकष्टम्=अत्यन्तं कष्टम् (गतिसमास)।

भावार्थः—इस लिए हे मित्र! यहीं पर अपने शेष उमर को शांति पूर्वक व्यतीत कीजिए, यह भी अतिकष्टकारक है ऐसा तुम्हें नहीं मानना चाहिए।

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥ १६६॥

अन्वयः—आपतितम् सुखम् सेव्यम् तथा आपतितम् दुःखम्, (यतः) दुःखानि च सुखानि च चक्रवत् परिवर्तन्ते।

व्याख्या—आपतितम्, सुखम् = आनन्दः, सेव्यम् = अनुभवनीयम्, तथा तेन प्रकारेण आपतितम् = समुपस्थितम्, दुःखमपि, सेव्यम् = अनुभवनीयम्, सुखानि= आनन्दाः, दुःखानि च = कष्टानि च, चक्रवत्, रथाङ्गस्य गतिरिव परिवर्तन्ते = क्रमशः आयान्ति। आपतितं, समुपस्थितं सुखं दुःखमुभयं सोढुं शक्यम्, कुतः जगति सुखानि, दुःखानि च चक्रवत् परिवर्तन्ते, आयान्ति, यान्ति चेति भावः।

भावार्थः—जैसे आया हुआ सुख सेव्य है वैसे ही आया हुआ दुःख भी सेव्य है क्योंकि सुख और दुःख चक्र (गाड़ी की पहिया) की तरह आते जाते हैं ॥१६६॥

अपरञ्च—निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः ।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्वसम्पदः ॥ १६७ ॥

अन्वयः—मण्डूकाः निपानमिव, अण्डजाः पूर्णम् सरः इव, सर्वसम्पदः विवशाः (सत्यः) सोद्योगम् नरम् आयान्ति।

व्याख्या—मण्डूकाः = भेकाः, निपानम् इव = आहावम्, यथा, अण्डजाः = पक्षिणः, पूर्णम् = सलिलपूरितम्, सरः = सरोवरम्, इव, सर्वसम्पदः = अखिल-सम्पत्तयः, विवशाः = अधीनाः (सत्यः), सोद्योगम् = उद्यमिनम्, नरम् = मानवम्, आयान्ति = आगच्छन्ति।

टिप्पणीः—सोद्योगम् = उद्योगेन सह वर्तमानः, तम्, (तुल्ययोगबहु०), सर्वसम्पदः = सर्वाश्च ता संपदः (क० धा०)। मण्डूकाः यथा पल्वलम् प्रति गच्छन्ति, पक्षिणो यथा, प्रचुरवारियुक्तम्, सरः = सरोवरम्, प्रति गच्छन्ति, तद्वत्, अखिलसंपत्तयः, उद्योगसहितं पुरुषम्, प्रत्यागच्छन्तीति भावः।

भावार्थः—मेंढक जैसे जलाशय की ओर जाते हैं, पक्षिगण जैसे जल से भरे हुए सरोवर की ओर जाते हैं, उसी तरह सारी सम्पत्तियाँ विवश होकर उद्योगी पुरुष के पास चली आती हैं ॥ १६७ ॥

विशेषतश्च— विनाऽप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः ।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयाऽवाप्तिविषयां
द्युतिं सैंहीं श्वा किं घृतकनकमालोऽपि लभते ॥ १६८ ॥

अन्वयः—वीरः अर्थैः विना अपि बहुमानोन्नतिपदम् याति। अर्थैः समा-युक्तोऽपि कृपणः परिभवपदम् याति, श्वा घृतकनकमालोऽपि स्वभावात् उद्भूताम्, गुणसमुदयाऽवाप्तिविषयाम्, सैंहीम् द्युतिम् लभते किम् ?

व्याख्या—वीरः = शूरः, अर्थैः = धनैः, विनापि = ऋतेऽपि, बहुमानोन्नतिपदम्= अधिकसम्मानाभ्युदयस्थानम्, स्पृशति = आमृशति, प्राप्नोति, कृपणः = कदर्यः

अर्थैः = धनैः, समायुक्तोपि = संयुतः सन्नपि, परिभवपदम् = अनादरस्थानम्, याति= प्राप्नोति। श्वा = कुक्कुरः, धृतकनकमालः = परिहितपुरटस्रगपि, स्वभावात् = निसर्गात्, उद्धृताम् = समुत्पन्नाम्, गुणसमुदयाऽवाप्तिविषयाम् = शौर्याद्यनेकगुणप्राप्तिविषयाम्, सैंहीम् = सिंहसम्बन्धिनीम्, द्युतिम् = कान्तिम्, लभते किम् = प्राप्नोति किम्, अर्थात् नो लभते इत्यर्थः॥

टिप्पणी—बहुमानोन्नतिपदम् = बहु मानं यस्मिन् तत् (बहु०), उन्नतेः = पदम्, उन्नतिपदम् (ष० त०), बहुमानं च तत् उन्नतिपदम् तत् (क० धा०), परिभवपदम् = परिभवस्य पदम् (ष० त०), अनादरः परिभवः, परीभावस् तिरस् क्रिया, इत्यमरः। धृतकनकमालः = कनकस्य माला (ष० त०), धृता कनक माला येन सः (बहु०), गुणसमुदयावाप्तिविषयाम् = गुणानां समुदयः (ष०त०), तस्य अवाप्ति (ष० त०), गुणसमुदयावाप्तिः विषयो यस्याः सा ताम् (बहु०), सैंहीम् = सिंहस्य इयं ताम्, सिंह + अण् + ङीप्। दृष्टान्तालङ्कारः। शिखरिणी छन्दः। वीरपुरुषः धनाभावेऽपि प्रचुरसम्मानयुक्तोन्नतिपदं प्राप्नोति। कदर्यः विभवयुक्तोऽपि तिरस्कृतेः पात्रं भवति, सुवर्णमाली कुक्कुरः नैसर्गीम्, शौर्याद्यनेकगुणप्राप्तिविषयिणीम् सिंहसम्बन्धिनीं प्रभां लभते किं, अर्थान्न लभते इति भावः।

भावार्थः—वीर पुरुष धन के न होने पर भी, बहुतों से सम्मानित उच्चपद को प्राप्त कर लेता है, परन्तु धन से परिपूर्ण कञ्जूस पुरुष तिरस्कार का पात्र होता है। सुवर्ण की माला पहने हुए कुत्ता, स्वाभाविक उत्पन्न शौर्यादि अनेक गुणों को आत्मसात् करने वाले सिंह की आभा को प्राप्त करता है क्या? कदापि प्राप्त नहीं कर सकता॥ १६८॥

अपि च—उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदञ्च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥ १६९॥

अन्वयः—लक्ष्मीः निवासहेतोः स्वयम्, उत्साहसम्पन्नम्, अदीर्घसूत्रम्, क्रियाविधिज्ञम् व्यसनेषु, असक्तम्, शूरम्, कृतज्ञम, दृढसौहृदम्, 'पुरुषम्, याति।

व्याख्या—लक्ष्मीः = संपदधिष्ठात्री देवी, निवासहेतोः = निवासार्थम्, स्वयम्= आत्मना, उत्साहसम्पन्नम् = अध्यवसाययुक्तम्, अदीर्घसूत्रम् = क्षिप्रकारिणम्, क्रियाविधिज्ञम् = कर्मविधानवेत्तारम्, व्यसनेषु = मद्यद्यूतमृगयादिषु, आसक्तम् = अनहितमानसम्, शूरम् = वीरम्, कृतज्ञम् = उपकारज्ञातारम्, दृढसौहृदम् = स्थिरमैत्र्यम्, जनमिति शेषः, याति = प्राप्नोति।

टिप्पणी—उत्साहसम्पन्नम् = उत्साहेन सम्पन्नस्तम् (तृ० त०), अदीर्घसूत्रम्= न दीर्घसूत्रस्तम् (नञ् त०), क्रियाविधिज्ञम् = क्रियायाविधिः (ष० त०); तं जानाति; सः क्रियाविधिज्ञस्तम्, क्रियाविधि + ज्ञा + कः (उपपदसमासः);

असक्तम् = न सक्तः, असक्तस्तम् (नञ्० त०), दृढसौहृदम् = दृढं सौहृदं यस्य सं तम् (बहु०), निवासहेतोः = निवासस्य हेतुस्तस्मात् (ष० त०), उपजाति छन्दः। उत्साहशक्तिसम्पन्नस्य, चिप्रकारिणः कर्मविधानवेत्तु द्यूतादिदुर्व्यसन-रहितस्य, शूरस्य उपकृतिज्ञस्य, स्थिरमैत्र्यस्य जनस्य समीपे लक्ष्मीः स्वयं निवास-करणाय, आगच्छतीतिभावः।

भावार्थः—उत्साहसम्पन्न, शीघ्रता से कार्य करने वाले, कर्मविधान के ज्ञाता, दुर्व्यसनों से अलग रहने वाले, वीर, कृतज्ञ, स्थिर-मित्रता वाले (पुरुष) के पास लक्ष्मी निवास करने के लिये चली आती है ॥ १६९ ॥

किञ्च—धनवानिति हि मदस्ते किं गतविभवो विषादमुपयासि।
करनिहतकन्दुकसमाः पातोत्पाता मनुष्याणाम् ॥ १७० ॥

अन्वयः—धनवान् इति ते मदः (आसीत्), गतविभवः विषादम् किं उपयासि, हि मनुष्याणाम्, पातोत्पाताः करनिहतकन्दुकसमाः।

व्याख्या—धनवान् = धनी, इति = एवम्, ते = तव, मदः = गर्वः, 'आसीत्' इति शेषः। साम्प्रतंगतविभवः = नष्टधनः (सन्), विषादम् = खेदम्, किम् = किमर्थम्, उपयासि = प्राप्नोसि। हि = यतः, मनुष्याणाम् = नराणाम्, पातोत्पाताः = उन्नत्यवनतयः, करनिहतकन्दुकसमाः=हस्तताडितकन्दुकसदृशाः 'भवन्तीति' शेषः।

टिप्पणी—धनवान् = धनमस्यास्तीति धनवान्, धन + मतुप्, गतविभवः = गतोविभवो यस्य सः (बहु०), पातोत्पाताः = पाताश्च, उत्पाताश्च (द्वन्द्वः), करनिहतकन्दुकसमाः = करेण निहतः (तृ० त०), सश्चासौ कन्दुकः (क० धा०), तेन समाः (तृ० त०), उपमालङ्कारः। आर्या छन्दः धनवानहमेवंविधस्तव मद आसीच्चेत्, तर्हि नष्टे धने किमर्थं शोचसि। यतः मनुष्याणामवनतय, उन्नतयश्च, हस्तताडितकन्दुकसमानाः, भवन्ति, इमा, आयान्ति, पुनर्यान्ति, अतः शोकं मा कुरु, इति भावः।

भावार्थः—'मैं धनवान् हूँ' ऐसा तुम्हारा गर्व था अब धन के चले जाने पर (तुम मन में) विषाद क्यों लाते हो। क्योंकि मनुष्यों का पतन और उत्थान हाथ से उछाली गयी गेंद के समान हैं। (जैसे गेंद कभी जमीन पर गिरती है फिर जमीन से ऊपर की ओर उछलती है, इसी तरह अवनती और उन्नति हैं) ॥ १७० ॥

अन्यच्च—वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्रवतः स्तनौ ॥ १७१ ॥

अन्वयः—वृत्त्यर्थम् न अतिचेष्टेत हि सा धात्रा एव निर्मिता। जन्तौ, गर्भात् उत्पतिते (सति) मातुः स्तनौ प्रस्रवतः।

व्याख्या—वृत्यर्थम् = जीविकायै, न अतिचेष्टेत = नाधीहेत, हि = यतः, सा = वृत्तिः, धात्रा = जगन्निर्मात्रा, निर्मिता = जन्मनः, पूर्वमेव स्थापिता। दृष्टान्तेन दृढयति—जन्तौ = जीवे, गर्भात् = भ्रूणात्, उत्पतिते = बहिरायाते, जाते, (सति) मातुः = जनन्याः, स्तनौ = कुचौ, प्रस्रवतः क्षरतः।

टिप्पणी—वृत्यर्थम् = वृत्त्यै इदम् (च० त०), जीविकायै विपुला चेष्टा न करणीया तस्या निर्माणन्तु विधात्राऽनुष्ठितमेव, यतः प्राणिनि गर्भात्, बाह्यप्रदेशे, आयात एव तज्जनन्याः स्तनाभ्यां दुग्धं तत्पोषणाय क्षरतीति भावः।

भाषार्थः—जीविका के लिये अधिक चेष्टा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह विधाता से निर्मित है, जीव के गर्भ से बाहर आने पर माता के दोनों स्तन दूध टपकाने लगते हैं ॥ १७१ ॥

अपि च सखे ! शृणु—

व्याख्या—अपि च = अपरञ्च, सखे ! = मित्र ! शृणु = आकर्णय—

भाषार्थः—मित्र ! और भी सुनो—

येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः ।
मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति ॥ १७२ ॥

अन्वयः—येन हंसाः शुक्लीकृताः शुकाश्च हरितीकृताः, येन मयूराः चित्रित स ते वृत्तिम् विधास्यति।

व्याख्या—येन = विधात्रा, हंसाः = मरालाः, शुक्लीकृताः=शुक्लवर्णाः, शुकाश्च= कीराश्च, हरितीकृताः=हरिद्वर्णाः, कृता, मयुराः=शिखण्डिनः, चित्रिताः,=विचित्र-वर्णाः, कृताः=संपादिताः, सः = विधाता, ते=तव, वृत्तिम्=जीविकाम्, विधा-स्यति = समुपस्थापयिष्यति ॥

टिप्पणी—शुक्लीकृताः = अशुक्लाः शुक्लाः यथा सम्पद्यमानाः तथा कृताः शुक्ल + च्वि + कृ + क्त। येन जगन्निर्मात्रा हंसेषु शुभ्रवर्णत्वं शुकेषु हरिद्वर्णत्वं मयूरेषु विचित्रवर्णत्वं व्यधायि, स एव तेऽपि वृत्तिं विधास्यति, इति भावः।

भाषार्थः—जिस विधाता ने हंसों को उजला किया तथा तोताओं (सुग्गों) को हरा बनाया एवं मयूरों को अनेक रंगों में चित्रित किया (अनेक वर्णों से बनाया) वह तेरी जीविका को बनायेगा ॥ १७२ ॥

अपरञ्च सतां रहस्यं शृणु, मित्र !

व्याख्या—अपरंचेति। हे मित्र ! = हे सखे ! अपरंच=अन्यच्च, सतां=साधु-नाम् रहस्यं=गूढभावं, गुप्तचरित्रं वा, शृणु=श्रवणं कुरु।

भाषार्थः—मित्र ! सज्जनों का रहस्य और भी सुनो—

जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु ।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः ॥ १७३ ॥

अन्वयः—अर्थाः अर्जने दुःखं जनयन्ति, विपत्तिषु तापयन्ति, सम्पत्तौ मोहयन्ति च, (अतः) कथं सुखावहाः ॥

व्याख्या—अर्थाः = धनानि, अर्जने = उपार्जने, दुःखम् = कष्टम्, जनयन्ति = उत्पादयन्ति, विपत्तिषु = आपत्सु, तापयन्ति = तापं जनयन्ति, सम्पत्तौ = समृद्धौ सत्याम्, मोहयन्ति = मोहं जनयन्ति, अतः अर्थाः = धनानि, कथम्=केन प्रकारेण, सुखावहाः = सुखोत्पादकाः, न सुखोत्पादकाः इत्यर्थः ।

भावार्थः—धन कमाने में कष्ट देते हैं, विपत्तियों में संताप देते हैं तथा समृद्धि काल में मोह (अविवेक) पैदा करते हैं । अतः धन कैसे सुख देने वाले हैं ? ॥१७३॥

अपरञ्च—धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥ १७४ ॥

अन्वयः—यस्य धर्मार्थम् वितेहा तस्य निरीहता वरम्, हि पङ्कस्य प्रक्षालनात् दूरात् अस्पर्शनम् वरम् ।

व्याख्या—यस्य = जनस्य, धर्मार्थम् = पुण्याचरणाय, वित्तेहा = द्रव्यचेष्टा, तस्य = जनस्य, निरीहता = निश्चेष्टत्वम्, 'एव' वरम्=श्रेष्ठतम् । हि=यतः, पङ्कस्य= कर्दमस्य = प्रक्षालनात् = प्रधावनात् , दूरात् = विप्रकृष्टात् , अस्पर्शनम् = अनामर्शम्, एव वरम् = श्रेष्ठम् ।

टिप्पणी—धर्मार्थम् = धर्माय इदम् (च० त०), वित्तेहा = वित्तस्य ईहा (ष० त०), निरीहता = निर्गता ईहा यस्य सः, निरीहः (बहु०), तस्य भावः निरीह + तल् , टाप् । अस्पर्शनम् (नञ् त०), पुण्यकार्याचरणाय धनार्जनचेष्टापेक्षया निश्चेष्टत्वमेव वरम् । पूर्वं कर्दमे स्पृष्टे पश्चात्तत् प्रक्षालनापेक्षया तस्य प्रथमतः स्पर्शाभाव एव वरीयान् यथा, इति भावः ।

भावार्थः—जिसकी धन की इच्छा धर्म के लिए है उस धन की इच्छा न होना ही अच्छा है; क्योंकि पांक लगाकर धोने की अपेक्षा उसे दूरसे ही (रहकर) न स्पर्श करना ही अच्छा है ॥ १७४ ॥

यतः—यथा ह्यामिषमाकाशे पक्षिभिः श्वापदैर्भुवि ।
भक्ष्यते सलिले मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥ १७५ ॥

अन्वयः—यथा पक्षिभिः आकाशे, श्वापदैः भुवि, मत्स्यैः सलिले, आमिषम् भक्ष्यते तथा वित्तवान् सर्वत्र भक्ष्यते ।

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, पक्षिभिः = विहङ्गमैः, आकाशे = नभसि, श्वापदैः = हिंस्रजन्तुभिः, भुवि = भूमौ, मत्स्यैः = मकरादिभिः, सलिले = जले, आमिषम् = मांसम्, भक्ष्यते = भुज्यते, तथा = तद्वत्, वित्तवान् = धनिकः, सर्वत्र = सर्वस्मिन् स्थाने, भक्ष्यते = दस्युप्रतारकैः हन्यते, प्रतार्यते ।

भाषार्थः—जिस प्रकार मांस आकाश में पक्षियों से, पृथ्वी पर हिंसक जन्तुओं (कुत्ता, सिंह इत्यादि) से और जल में मछलियों से खाया जाता है, उसी प्रकार धनवान् सब जगह खाया (लूटा) जाता है ॥ १७५ ॥

अन्यच्च—राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि ।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ॥ १७६ ॥

अन्वयः—मृत्योः प्राणभृताम् इव अर्थवताम् राजतः सलिलात्, अग्नेः चोरतः स्वजनात् अपि नित्यम् भयम् भवति, इति शेषः ।

व्याख्या—मृत्योः = मरणात्, प्राणभृताम् = असुधारिणाम्, इव = यथा, अर्थवताम् = धनिकानाम्, राजतः = नृपात्, सलिलात् = जलात्, अग्नेः = कृशानोः, चोरतः = पाटच्चरात्, स्वजनात् + आत्मीयबन्धुवर्गात्, अपि नित्यम् = सततम्, भयम् = भीतिः, भवतीति शेषः ।

भाषार्थः—प्राणधारियों की मृत्यु की तरह धनियों को राजा से, जल से, अग्नि से, चोर से तथा अपने सगे-सम्बन्धियों से नित्य भय रहता है ॥ १७६ ॥

यथा हि—जन्मनि क्लेशबहुले किन्नु दुःखमतः परम् ।
इच्छासम्पद् यतो नास्ति यच्चेच्छा न निवर्तते ॥ १७७ ॥

अन्वयः—यतः क्लेशबहुले जन्मनि इच्छासम्पत् न अस्ति, यच्च इच्छा न निवर्तते अतः परम् किन्नु दुःखम् ॥

व्याख्या—यतः = यस्मात् कारणात्, क्लेशबहुले = कष्टप्रचुरे, जन्मनि = जीवयोनौ, इच्छासंपत् = इच्छानुरूपासम्पत्ति = नास्ति, न वर्तते यत् च, इच्छा = वाञ्छा, न निवर्तते = निवृत्ता न भवति, अतः परम् = अस्मादधिकम्, दुःखम् = कष्टम्, किम् नु = किं भवेत् ।

टिप्पणी—क्लेशबहुले = क्लेशाः बहुला यस्मिंस्तत्, तस्मिन् (बहु०), इच्छासम्पत् = इच्छया अनुरूपा (तृ० त०), इच्छानुरूपा चासौ संपत्, इच्छासंपत्, इच्छासंपत् (मध्यमपदलोपिसमासः), यथाऽधिककष्टवतीषु, जीवयोनिषु, इच्छानुरूपा सम्पत्तिः न प्राप्नोति, इच्छापि न नश्यति, अस्मादधिकं किं कष्टं भवेदिति भावः ।

भावार्थः—क्योंकि नाना प्रकार के दुःखों से युक्त जीवन में इच्छानुसार सम्पत्तिः प्राप्त नहीं होती है, और इच्छा भी निवृत्त नहीं होती; तो इससे अधिक दुःख क्या है ? ॥ १७७ ॥

अन्यच्च भ्रातः शृणु—

व्याख्या—हे भ्रातः ! अन्यच्च = अपरंच, शृणु = आकर्णय ।

भावार्थः—हे भाई ! और भी सुनो—

धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण पाल्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिन्तयेत् ॥ १७८ ॥

अन्वयः—तावत् धनम् असुलभम्, लब्धं कृच्छ्रेण पाल्यते, लब्धनाशः मृत्युः यथा तस्मात् एतत् न चिन्तयेत् ।

व्याख्या—तावत् = आदौ, धनम् = द्रव्यम्, असुलभम् = दुर्लभम्, लब्धम् = प्राप्तम्, कृच्छ्रेण = कष्टेन, पाल्यते = रक्ष्यते, लब्धस्य = प्राप्तस्य, नाशः = विनष्टिः, मृत्युर्यथा = मरणम् इव, तस्मात् = कारणात् , एतत् = धनम्, न चिन्तयेत् = नेच्छेत् ॥

टिप्पणी—प्रथमस्तु धनमेव सुलभं नास्ति, लब्धेऽपि तस्मिन् , तस्य रक्षणेऽति कष्टं भवति, तस्य (धनस्य) नाशस्तु आत्मनः मरणमेव, अतो धनं नेच्छेदिति भावः ।

भावार्थ—पहले तो धन सुलभ नहीं है, यदि मिल भी गया तो उसको दुःख से बचाया जाता है, फिर लाभ हुए धन का नाश मौत के समान है इसलिये धन की चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥ १७८ ॥

सा तृष्णा चेत् परित्यक्ता को दरिद्रः क ईश्वरः ।
तस्याश्चेत् प्रसरो दत्तो दास्यञ्च शिरसि स्थितम् ॥ १७९ ॥

अन्वयः—सा तृष्णा परित्यक्ता चेत् कः दरिद्रः कः ईश्वरः । तस्याः प्रसरः दत्तश्चेत् , दास्यम् शिरसि स्थितम् ।

व्याख्या—सा = प्रसिद्धा, तृष्णा = धनस्पृहा, त्यक्ता = विलीनीकृता, चेत् = यदि, 'तर्हि' कः दरिद्रः = कोनाम निर्धनः, कः ईश्वरः = को वा धनिकः । तस्याः = धनस्पृहायाः, प्रसरः = अवसरः, दत्तः चेत् , वितीर्णो यदि, तदा, दास्यम् = दासत्वम्, शिरसि = मस्तके स्थितम् = आरोपितम्, भविष्यति ।

टिप्पणी—तृष्णापरित्यागे, निर्धनधनिकयोः को भेदः । तस्याः स्वीकारे तु आत्मनः दासत्वमेव स्वीकृतमिति भावः ।

भावार्थः—यदि वह तृष्णा (धन की पीपासा) त्याग दी जाय तो फिर कौन दरिद्र है, और कौन धनी है ? यदि उस तृष्णा का बढ़ावा दिया तो शिर पर

दासता सवार हो गयी (अर्थात् अपने को गुलामी की बेड़ियों से जकड़ लिया) ॥ १७९ ॥

अपरञ्च—यद् यदेव हि वाञ्छेत ततो वाञ्छा प्रवर्तते ।
प्राप्त एवाऽर्थतः सोऽर्थो यतो वाञ्छा निवर्तते ॥ १८० ॥

अन्वयः—यद् यत् एव वाञ्छेत ततः वाञ्छा प्रवर्तते, यतः वाञ्छा निवर्तते सः, अर्थः; अर्थतः प्राप्त एव ।

व्याख्या—यद् यद् = यत् यत् वस्तु, वाञ्छेत = इच्छेत ; ततः = तदनन्तरम्; वाञ्छा = इच्छा, प्रवर्तते = उत्तरोत्तरं प्रवृत्ता भवति । यतः = यस्मात् वस्तुतः; वाञ्छा = इच्छा, निवर्तते = निवृत्ता भवति, हि = यतः, स अर्थः = सः पदार्थः; अर्थतः = यथार्थतः, प्राप्त एव = आसादित एव ॥

टिप्पणी—मनुष्यः यद् यद् वस्तु, एषिष्यति । उत्तरोत्तरं इच्छा प्रवर्तत एव । तस्य (मनुष्यस्य), यस्माद् वस्तुतः वाञ्छा निवृत्ता भवति, तत् वस्तु, वस्तुतः प्राप्तमेव भवति ।

भावार्थः—मनुष्य जिस जिस वस्तु की इच्छा करेगा, उत्तरोत्तर इच्छा प्रवृत्त ही होती है । क्योंकि जिस वस्तु से इच्छा निवृत्त होती है, वह वस्तु वास्तव में प्राप्त ही रहती है ॥ १८० ॥

किं वहुना, विश्रम्भालापैः मयैव सहाऽत्र कालो नीयताम् ।

व्याख्याः—किं बहुना = अधिकेन किं भवति, विश्रम्भस्य = विश्वासस्य; आलापाः आभाषणानि तैः (ष० त०), मया = कच्छपेन, मन्थरेण, सहैव = साकमेव; कालः = समयः, नीयतम् = यापनीयः ।

भावार्थः—अधिक कहने से क्या ? मेरे ही साथ विश्वास पूर्ण वचनों से यहाँ पर समय बिताइये ॥

यतः—आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत्क्षणभङ्गुराः ।
परित्यागाश्च निःसङ्गा भवन्ति हि महात्मनाम् ॥ १८१ ॥

अन्वयः—महात्मनाम्, प्रणयाः आमरणान्ताः कोपाः तत्क्षणभङ्गुराः परित्यागाः निःसङ्गा भवन्ति ।

व्याख्या—महात्मनाम् = उदारचित्तानाम्, प्रणयाः = स्नेहाः, आमरणान्ताः = मृत्युपर्यन्तस्थायिनः, कोपाः = क्रोधाः, तत्क्षणभङ्गुराः = उत्पत्त्युत्तरविलयशीलाः, परित्यागाः = दानादयस्तु, निसङ्गाः = आसक्तिरहिताः, भवन्ति = विद्यन्ते । हि = निश्चयमेतत् ।

टिप्पणी—आमरणान्ताः = मरणमभिव्याप्य, इति आमरणम् (अव्ययीभावः), आमरणम् अन्तो येषां ते (बहु०), तत्क्षणभङ्गुराः = सश्चासौ क्षणः, तत्क्षणः

(क० धा०), तस्मिन् भङ्गुराः (स० त०), निःसङ्गाः=निर्गतः सङ्गो येषां ते (बहु०)। उदारचित्तानां स्नेहाः, मृत्युपर्यन्तस्थायिनो भवन्ति, कोपाः तस्मिन्नेव क्षणे विनश्यन्ति, दानादयस्तु, आसक्तिरहिताः, भवन्तीति भावः।

भाषार्थः—महात्माओं के प्रेम मृत्युपर्यन्त रहते हैं, क्रोध उसी समय नष्ट हो जाते हैं तथा उनके दान आसक्तिरहित होते हैं ॥ १८१ ॥

इति श्रुत्वा लघुपतनको ब्रूते—'धन्योऽसि मन्थर ? सर्वथा आश्रयणीयोऽसि।'

व्याख्या—इति=एतत्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, लघुपतनकः=तन्नामकः काकः; ब्रूते=ब्रवीति-मन्थर ! भो मित्र ! धन्योऽसि=सुकृतिरसि, सर्वथा=सर्वैं प्रकारैः; आश्रयणीयः=आश्रयितुमर्हः, असि=भवसि।

भाषार्थः—यह सुनकर लघुपतनक कहता है—'मित्र मन्थर ! तू धन्य है, सर्व प्रकार से आश्रय योग्य है।'

यतः—सन्त एव सतां नित्यमापदुद्धरणक्षमाः।
गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरन्धराः ॥ १८२ ॥

अन्वयः—सन्तः, एव सताम् आपदुद्धरणक्षमाः 'भवन्ति, यथा' पङ्कमग्नानाम्, गजानाम्, गजा एव धुरन्धराः 'भवन्तीति शेषः'

व्याख्या—सन्तः=सज्जना एव, सताम्=सज्जनानाम्; आपदुद्धरणक्षमाः= विपत्तिनिवारणसमर्थाः भवन्तीति शेषः। यथा, पङ्कमग्नानाम्=कर्दमपतितानाम्; गजानाम्=हस्तिनाम्, गजाः=हस्तिनः, एव, धुरन्धराः=धुरीणाः 'भवन्तीति शेषः।

टिप्पणी—आपदुद्धरणक्षमाः=आपदः उद्धरणम् (पं० त०), तस्मिन् क्षमाः (स० त०), पङ्कमग्नानाम्=पङ्के मग्नास्ते (स० त०), कारयन्ति सज्जनानामापद उद्धरणम्। यथा पङ्कनिमग्नानां हस्तिनां पङ्कादुद्धरणाय हस्तिन एव समर्थाः, भवन्तीति भावः।

भाषार्थः—सन्त ही सन्तों को आपत्तियों से उद्धार करने में समर्थ (होते हैं), पाँक में फँसे हाथियों के (उद्धार) में हाथी ही समर्थ होते हैं ॥१८२॥

अपरञ्च—श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा नाशाविभङ्गा विमुखाः प्रयान्ति ॥१८३॥

अन्वयः—यस्य अर्थिनः वा शरणागता, आशाविभङ्गाः, विमुखाः, न प्रयान्ति। भुवि मानवानाम् स एकः श्लाघ्यः, सः उत्तमः सत्पुरुषः, 'सः' धन्यः॥

व्याख्या—यस्य=जनस्य, अर्थिनः याचकाः; वा=अथवा, शरणागताः= गृहागताः, 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। 'केऽपि जनाः' आशाविभङ्गाः=अपूरिताभिलाषाः, विमुखाः=पराङ्मुखा, न प्रयान्ति, न गच्छन्ति, भुवि=भूमौ, मानवानाम्=मनुजानाम्, मध्ये सः=पूर्वोक्तः जनः, श्लाघ्यः=प्रशस्यः, सः=पूर्वोक्तः,

उत्तमः = उत्कृष्टः, सः पूर्वोक्तः एकः = अद्वितीयः, सत्पुरुषः = सज्जनः, सः = पूर्वोक्तः, धन्यः = सफलजन्मा, अस्तीति शेषः।

टिप्पणी—सत्पुरुषः = संश्चासौ पुरुषः सः (क० धा०), शरणागताः = शरणे, आगता (स० त०), आशाविभङ्गाः = विशिष्टोभङ्गो येषां ते (बहु०), आशायां विभङ्गाः ते (स० त०), विमुखाः = विपरीतं मुखं येषां ते (बहु०)। यस्य जनस्य याचका निजगृहं समागता वा जनाः, आशां विहाय विमुखाः सन्त न गच्छन्ति। भूमौ, मनुष्याणां प्रशंसनीयत्वोत्कृष्टत्वसत्पुरुषत्वसफलजन्मत्वादयः सर्वे गुणास्तस्मिन् तिष्ठन्तीति भावः।

भाषार्थः—जिस पुरुष के (पास में आये हुए) शरणागत व्यक्ति अथवा याचक अपनी आशा के विफल होने से विमुख होकर नहीं जाते हैं। पृथ्वी पर मनुष्यों के मध्य में वह एक प्रशंसनीय है, वह उत्तम है, वह सत्पुरुष है, वह धन्य है (प्रसंशनीय तथा भाग्यवान है)॥ १८३॥

तदेवं ते स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः सन्तुष्टाः सुखं निवसन्तिस्म। अथ कदाचित् चित्राङ्गनामा मृगः केनाऽपि त्रासितस्तत्राऽऽगत्य मिलितः। तत्पश्चादायान्तं भयहेतुं सम्भाव्य मन्थरो जलं प्रविष्टः, मूषिकश्च विवरं गतः, काकोऽपि उड्डीय वृक्षाग्रमारूढः। ततो लघुपतनकेन सुदूरं निरूप्य भयहेतुर्न कोऽप्यवलम्बितः, पश्चात्-तद्वचनादागत्य पुनः सर्वे मिलित्वा तत्रैवोपविष्टाः। मन्थरेणोक्तम्—भद्र मृग ! कुशलं ते ? स्वेच्छया उदकाद्याहारोऽनुभूयताम्। अत्रावस्थानेन वनमिदं सनाथीक्रियताम्। चित्राङ्गो ब्रूते—लुब्धकत्रासितोऽहं भवतां शरणमागतः। ततश्च भवद्भिः सह मित्रत्वमिच्छामि, भवन्तश्च अनुकम्पयन्तु मैत्र्येण।

व्याख्या—तत् = तस्माद्धेतो, एवम् = इत्थम्, ते = हिरण्यकादयः, स्वेच्छाहारविहारम् = निजमनोरथानुसारं भोजनक्रीडनम्, कुर्वाणाः = विदधतः, सन्तुष्टाः = कृतसन्तोषाः, सुखम् = आनन्दपूर्वकम्, निवसन्ति स्म = निवासमकुर्वन्, अथ = अनन्तरम्, कदाचित् = जातुचित्, चित्राङ्गनामा = चित्राङ्गवाभिधः, मृगः = हरिणः, केनापि = अनिर्वचनीयेन, त्रासितः = भयं प्रापितः; तत्र = तस्मिन् स्थाने, आगत्य, आगमनं कृत्वा, मिलितः = संगतः, तत्पश्चात् = तदनु, भयहेतुम् = भीतिकारणम्, सम्भाव्य = तर्कयित्वा, मूषिकः = आखुः (हिरण्यकः), विवरम् = बिलम्, प्रविष्टः = प्रवेशमकरोत्, मन्थरः = कूर्मः जलम् तडागपानीयम्, प्रविष्टः = विवेशः, काकोऽपि = वायसोऽपि, लघुपतनकः, उड्डीय = उत्पत्य, वृक्षाग्रम् द्रुमोर्ध्वभागम्, आरूढः = आरोहत्। तत् = तदनन्तरम्, लघुपतनकेन = काकेन, सुदूरम् = अतिविप्रकृष्टम्,

निरूप्य = दृष्ट्वा, भयहेतुः = भीतिकारणम्, न कोऽपि = न कश्चिदपि, अवलम्बितः = निश्चितः, पश्चात् = अनन्तरम्, तद्वचनात् = काकस्य भयाभावसूचकवाक्यात्, आगत्य = आगमनं, कृत्वाः पुनः = भूयः, सर्वे = समस्ताः, कूर्मादयः, मिलित्वा = संगम्य, तत्रैव = तस्मिन् , स्थान एव, उपविष्टाः = उपनिषेदुः, मन्थरेण = कच्छपेन, उक्तम् = अभिहितम् । भद्र मृग ! महाशय हरिण ! ते = तव, कुशलम्=अनामयम्, वर्तते, स्वेच्छया = यथेच्छम्, उदकाद्याहारः = जलघासादि, आहारः, अनुभूयताम्= गृह्यताम् । अत्र = मम गृहे, अवस्थानेन = निवासेन, वनम् = अरण्यम्, इदम् = एतत् , सनाथीक्रियताम् = अलंक्रियताम् । चित्राङ्गो = हरिणः, ब्रूते = ब्रवीति, लुब्धकत्रासितः = मृगयुभीषितः, अहम् = चित्राङ्गः, भवताम्=युष्माकम्, शरणम्= गृहम्, आगतः = आयातः, ततः = तस्माद्धेतोः, भवद्भिः = युष्माभिः, सह = समम्, मित्रत्वम् = सख्यम्, इच्छामि = वाञ्छामि । भवन्तश्च = यूयम् च, सख्येण=सख्येन, अनुकम्पयन्तु = अनुगृह्णन्तु ।

टिप्पणी—स्वेच्छाहारम् = स्वस्य इच्छा स्वेच्छा (ष० त०), आहारश्च विहारश्च, अनयोः समाहारः आहारविहारम् (समाहारद्वन्द्वः) स्वेच्छया आहार विहारम् (तृ० त०), भयहेतुम् = भयस्य हेतुस्तम् (ष० त०), वृक्षाग्रम् = वृक्षस्य अग्रम् (ष० त०), तद्वचनात् = तस्य वचनम् तत् तस्मात् (ष० त०), लुब्धकत्रासितः = लुब्धकेन त्रासितः (तृ० त०), सनाथीक्रियताम् = असनाथं सनाथं यथा सम्पद्यते तथा क्रियताम्, सनाथ + कृ + च्विः + लोट् ।

भावार्थः—इस प्रकार वे सब (कूर्मादि) अपनी इच्छा के अनुसार, आहार-विहार करते हुए संतुष्ट होकर सुखपूर्वक रहते थे। इसके बाद किसी समय चित्राङ्ग नाम का मृग किसी से डर कर वहाँ आकर मिला। उसके बाद आने वाले भय के कारण की सम्भावना करके मन्थर सरोवर के जल में प्रवेश किया, चूहा बिल में गया, कौआ भी उड़कर वृक्ष के ऊँचे भाग (फुनगी) पर जा बैठा। इसके बाद कौआ ने बहुत दूर तक देखकर भय का कारण कुछ भी नहीं पाया। बाद में उसके कहने से आकर फिर सब लोग मिलकर उसी स्थान पर बैठ गये। मन्थर ने कहा—'कल्याण मृग ! तुम्हारा सकुशल है ? स्वेच्छा से पानी आदि का आहार करो। यहाँ रहकर इस वन को सनाथ (सुशोभित) कीजिये। चित्राङ्ग (मृग) बोलता है—शिकारी से डर कर मैं आप सब के शरण में आया हूं, और आप सब के साथ मैत्री चाहता हूँ। आप सब मैत्रीभाव से मुझे अनुगृहीत करें।

यतः—लोभाद्वाऽथ भयाद्वाऽपि यस्त्यजेच्छरणागतम् ।
ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः ॥ १८४ ॥

अन्वयः—यः लोभात् अथवा भयात् अपि शरणागतम् त्यजेत्, मनीषिणः तस्य ब्रह्महत्य समम् पापम् आहुः ।

अन्वयः—यः = जनः, लोभात् = लोलुपत्वात् , अथवा=यद्वा, भयात्=त्रासात्, शरणगतम् = गृहप्राप्तं जनम्, त्यजेत = मुच्येत् , तस्य=शरणागताऽरक्षकस्य, ब्रह्म-हत्यासमम् = ब्राह्मणघातसदृशम्, पापम् = कल्मषम्, मनीषिणः=विद्वांसः, आहुः= कथयन्ति ।

टिप्पणी—शरणागतम् = शरणे आगतः तम् (स० त०), ब्रह्महत्यासमम् = ब्रह्मणः हत्या (ष० त०), तया समम् (तृ० त०), यो जनः स्वगृहागतं जनं न रक्षति तस्य ब्राह्मणवधसमानं पापं भवति, एवं विद्वांसः कथयन्तीति भावः ।

भावार्थः—जो लोभ से अथवा भय से भी शरणागत को परित्याग दे, तो विद्वान् लोग उसको ब्रह्महत्या के समान पाप कहते हैं ॥ १८४ ॥

हिरण्यकोऽप्यवदत्—मित्रत्वं तावदस्माभिः सह, अयत्नेन निष्पन्नं भवतः ।

व्याख्या—हिरण्यकः अपि = मूषिकोऽपि, अवदत् = अब्रवीत् , मित्रत्वम् = सख्यम्, अस्माभिः = कूर्मादिभि, सह अयत्नेन = अप्रयासेन, भवतः = तव, निष्पन्नम् = संजातम् ।

भावार्थः—हिरण्यक ने भी कहा—'आपकी मित्रता तो हम सब के साथ बिना प्रयत्न के ही हो चुकी ।

यतः—औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमाऽऽगतम् ।
रक्षकं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ॥ १८५ ॥

अन्वयः—औरसम्, कृतसम्बन्धम्, तथा वंशक्रमागतम्, व्यसनेभ्यः रक्षकम् एवं मित्रम् चतुर्विधम् ज्ञेयम् ।

व्याख्या—औरसम् = उरोजातम्, पुत्रादि, कृतसम्बन्धम् = विहितसम्पर्कम्, तथा = तेन प्रकारेण, वंशक्रमागतम् = कुलपरिपाट्या प्राप्तम्, व्यसनेभ्यः = कष्टेभ्यः, रक्षकम् = रक्षितारम् एवं मित्रम् , सुहृत् चतुर्विधम् = चतुष्प्रकारकम्, ज्ञेयम् = बोध्यम् ।

टिप्पणी—औरसम् = उरसा निर्मितम्, उरस् + अण ; कृतसम्बन्धम् = कृतः सम्बन्धो येन सतम् (बहु०), वंशक्रमागतम्=वंशस्य क्रमः (ष० त०), तस्मात् आगतम् (पं० त०), चतुर्विधम् = चतस्रः विधाः यस्य तत् (बहु०) । स्वस्मात्, जातम्, सम्बन्धसम्पन्नम्, कुलपरिपाटिसमागतम्, कष्टेभ्यो रक्षकम्, एवं मित्रं चतुर्विधं बोध्यम् ।

तदत्र भवता स्वगृहनिर्विशेषेण स्थीयताम् । तच्छ्रुत्वा मृगः सानन्दो भूत्वा कृतस्वेच्छाऽऽहारः पानीयं पीत्वा जलासन्नवटतरुच्छायायामुपविष्टः ।

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात्, भवता = त्वया, अत्र = ममगृहे, स्वगृह-निर्विशेषेण = निजालयभेदशून्येन, स्थीयताम्=उष्यताम्, तत्=वचनं हिरण्यकस्य; श्रुत्वा = आकर्ण्य, मृगः = हरिणः, सानन्दः = आनन्दयुक्तोभूत्वा, कृतस्वेच्छाहारः = विहिताभिलषितभोजनः, पानीयम् = जलम्, पीत्वा = पानंकृत्वा, जलासन्नवटतरु-च्छायायाम् = सलिलोपकण्ठन्यग्रोधतरुच्छायायाम्, उपविष्टः = उपविवेश ।

टिप्पणी—स्वगृहनिर्विशेषेण = स्वस्य गृहं (ष० त०), निर्गतो विशेषो यस्मात् (बहु०), स्वगृहात् निर्विशेषस्तेन (पं० त०), सानन्दः = आनन्देन सहितः (तुल्ययोगबहु०), कृतस्वेच्छाहारः = स्वस्य इच्छा, स्वेच्छा, स्वेच्छया, आहारः स्वेच्छाहारः (तृ० त०), कृतः स्वेच्छाहारो येन, सः (बहु०), जलासन्न-वटतरुच्छायायाम् = जलस्य आसन्नः जलासन्नः (ष० त०), वटश्चासौ तरुः (क० धा०), जलासन्नश्चासौ वटतरुः (क०धा०), तस्य छाया, तस्याम् (ष०त०) ।

भावार्थः—इसलिये यहाँ आप अपने घर के समान रहिये । इसे सुनकर मृग प्रसन्न होकर अपनी इच्छानुसार आहार लेकर (घास चर के) तथा पानी पीकर जल के समीप स्थित वट वृक्ष की छाया में बैठ गया ।

अथ मन्थरो ब्रूते—'सखे मृग ! केन त्रासितोऽसि ? अस्मिन्निर्जने वने कदाचित् किं व्याधाः सञ्चरन्ति ?' मृगेण उक्तम्—'अस्ति कलिङ्गविषये रुक्माङ्गदो नाम नृपतिः, स च दिग्विजयव्यापारक्रमेण आगत्य चन्द्रभागा-नदीतीरे समावेशितकटको वर्तते, प्रातश्च तेनाऽत्रागत्य कर्पूरसरःसमीपे भवितव्यम्' इति व्याधानां मुखात् किंवदन्ती श्रूयते, तदत्रापि प्रातरवस्थानं भयहेतुकमित्यालोच्य यथा कार्यं तथा आरभ्यताम् । तच्छ्रुत्वा कूर्मः सभयमाह— 'मित्र ! जलाशयाऽन्तरं गच्छामि' । काकमृगावपि उक्तवन्तौ—'मित्र ! 'एवमस्तु' । हिरण्यको विमृश्याऽब्रवीत्—पुनर्जलाशये प्राप्ते मन्थरस्य कुशलम्, स्थले गच्छतोऽस्य का विधा ?

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, मन्थरः = कूर्मः, ब्रूते = वदति—'सखे = मित्र ! मृग ! हरिण ! केन = जनेन, त्रासितः = त्रासं प्रापितः, असि = विद्यसे ? अस्मिन् = एतस्मिन्, निर्जने = जनशून्ये, वने = अरण्ये, कदाचित् = जातुचित्, व्याधाः =

मृगयवः, सञ्चरन्ति किम् = परिभ्रमन्ति किम् ? मृगेण = हरिणेन, उक्तम् = अभिहितम्, कलिङ्गविषये = तन्नामकदेशे। (जगन्नाथपुरीतः कृष्णानदीतटान्तपर्यन्तं भूभागः कलिङ्गदेशः—'जगन्नाथात् समारभ्य कृष्णातीरान्तगः प्रिये। कलिङ्गदेशः सम्प्रोक्तो वाममार्गपरायणः॥ इति स्कान्दवचनात्), 'रुक्माङ्गदो नाम नृपतिः = राजा, स च = नृपतिश्च, दिग्विजयव्यापारक्रमेण = ककुब्जयकर्मपरिपाट्या, आगत्य = आगमनं कृत्वा, चन्द्रभागानदीतीरे = चन्द्रभागासरित्तटे, समावेशितकटकः = स्थापितशिविरः, वर्तते = विद्यते, प्रातश्च = प्रभाते च, तेन = रुक्माङ्गदेन, अत्र = इह, आगत्य, कर्पूरसरःसमीपे = कर्पूरसरःसंनिकटे, भवितव्यम्=भवनीयम्, इति = एवम्, व्याधानाम् = मृगयूनाम्, मुखात् = आननात्, किंवदन्ती=जनश्रुतिः, श्रूयते = आकर्ण्यते, तत् = तस्मात् कारणात्, अत्रापि = इहापि, प्रातरवस्थानम् = प्रभातस्थितिः, भयहेतुकम् = भीतिकारणकम्, इति = एवम्, आलोच्य = विमृश्य, यथा = येन प्रकारेण, कार्यम् = कर्तव्यम्, तथा = तेन प्रकारेण, आरभ्यताम् = क्रियताम्, तत् = वचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, कूर्मः = कमठः, मन्थरः इति यावत्, सभयम् = भीतिपूर्वकम्, आह = ब्रूते, मित्र != हे सखे !, जलाशयान्तरम् = अन्यसलिलाशयम्, गच्छामि = यामि, काकमृगौ अपि = वायसहरिणौ, लघुपतनकचित्राङ्गौ, उक्तवन्तौ = कथितवन्तौ, मित्र != हे सखे ! एवम् = इत्थम्, तवाभिमतम्, अस्तु = भवतु। हिरण्यकः = तन्नामकः मूषिकः, विमृश्य = विचार्य, अब्रवीत्= अवदत्। पुनः जलाशये = कासारान्तरे, प्राप्ते = आसादिते (सति), मन्थरस्य = तदाख्यकूर्मस्य, कुशलम् = कल्याणम्, परन्तु स्थले = भूतले, गच्छतः = व्रजतः, अस्य कूर्मस्य, का = कीदृशी, विधा = प्रकारः, दर्शेत्यर्थः। भविष्यतीति शेषः।

टिप्पणी—निर्जने = निर्गता जना यस्मात् तस्मिन् (बहु०), कलिङ्गविषये = कलिङ्गश्चासौ विषयः तस्मिन् (क० धा०), नृपतिः = नृणां पतिः (ष० त०), दिग्विजयव्यापारक्रमेण = दिशां विजयः (ष० त०), तस्य व्यापारः दिग्विजयव्यापारः तस्य क्रमः, तेन (ष० त०), चन्द्रभागानदीतीरे = चन्द्रभागा चासौ नदी (क० धा०), तस्याः तीरं तस्मिन् (ष० त०), समावेशितकटकः = समावेशितः कटको येन स (बहु०), कर्पूरसरःसमीपे = कर्पूरश्च तत् सरः (क० धा०), तस्य समीपस्तस्मिन् (ष० त०), भयहेतुकम् = भयं हेतुर्यस्य तत् (बहु०), जलाशयान्तरम् = जलस्य जलानाम् वा आशयः जलाशयः (ष० त०), अन्यः जलाशयः (मयूरव्यंसकादि०) तत्। काकमृगौ = काकश्च मृगश्च, (द्वन्द्वः)।

भाषार्थः—इसके बाद मन्थर (कछुआ) बोलता है—'मित्र! मृग! तुम किससे डरे हो ? क्या इस निर्जन वन में कभी व्याध (बहेलिये) घूमते हैं ? मृग ने कहा—'कलिङ्ग देश (प्रदेश) में रुक्माङ्गद नाम का राजा है, वह दिग्विजय के कार्यक्रम से आकर चन्द्रभागा नदी के तीर पर सेनाओं को इकट्ठा किया है। प्रातःकाल

कर्पूर सरोवर के पास आकर उसे रहना चाहिए।' इस प्रकार व्याधों (बहेलियों) के मुँह से यह किंवदन्ती सुनी जा रही है। तब फिर यहाँ भी प्रातःकाल रहना भय कारक है। यह विचार कर जो करना उचित हो वह किया जाय।' उसे सुन कर कछुवा ने भय के साथ कहा—'मित्र! दूसरे जलाशय में जा रहा हूँ।' कौआ और मृग ने भी कहा-'मित्र! ऐसा ही हो।' परन्तु हिरण्यक विचार करके बोला-फिर तो जलाशय मिलने पर ही मन्थर का कुशल है। परन्तु भूतल पर जाते हुए इसकी क्या दशा होगी?

यतः—अम्भांसि जलजन्तूनां दुर्गं दुर्गनिवासिनाम्।
स्वभूमिः श्वापदादीनां राज्ञां सैन्यं परं बलम्॥ १८६॥

अन्वयः—जलजन्तूनाम् अम्भांसि, दुर्गनिवासिनाम् दुर्गम्, श्वापदादीनाम् स्वभूमिः, राज्ञाम् सैन्यम् परम् बलम्।

व्याख्या—जलजन्तूनाम् = जलचराणाम्, अम्भांसि=जलानि, दुर्गनिवासिनाम्= कोट्टवासिनाम्, दुर्गम् = कोट्टः, श्वापदादीनाम् = हिंस्रजन्तूनाम्, व्याघ्रादीनाम्, स्वभूमिः = निजनिवासस्थानम्, परम् = उत्कृष्टम्, बलम् = सामर्थ्यं; शक्तिर्वा, (भवतीतिशेषः) परम् बलम् इति पदद्वयं सर्वत्र योज्यम्।

टिप्पणी—जलजन्तूनाम् = जले जन्तवस्ते, तेषां (स० त०), दुर्गे निवसन्तीति तच्छीलाः दुर्ग + निवस + णिनिः (उपपदसमासः), श्वापदादीनाम् = श्वापदः, आदिर्येषां, तेषां (बहु०), स्वभूमिः = स्वस्य भूमिः (ष० त०)।

भावार्थः—जल के जीवों का जल (ही उत्कृष्ट बल है), एवं किले में रहने वालों का किला, हिंसक जीवों (सिंह आदि) का अपना निवास स्थान (उत्तम बल है) तथा राजाओं का अपना सैन्य सर्वोत्तम बल है॥ १८७॥

अथाप्युपायश्चिन्त्यताम्। तथा चोक्तम्—

व्याख्या—अथापि = अनन्तरमपि, उपायः = रक्षणप्रकारः, चिन्त्यताम् = विचारणीयः।

भावार्थः—तब भी उपाय सोचना चाहिए।

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।
शृगालेन हतो हस्ती गच्छता पङ्कवर्त्मना॥ १८७॥

अन्वयः—उपायेन यत् शक्यम् तत् पराक्रमैः न शक्यम्, हि पङ्कवर्त्मना गच्छता शृगालेन हस्ती हतः॥

व्याख्या—उपायेन = यत्नेन, यत् = कार्यं, शक्यम् = शक्तुं योग्यम्, तत्=कार्यम्, पराक्रमैः = आयसैः, न शक्यम् = न शक्तुं योग्यम्, हि = यतः, पङ्कवर्त्मना = कर्दम-मार्गेण, गच्छता = व्रजताः, शृगालेन = जम्बुकेन, हस्ती = गजः, हतः=व्यापादितः।

भाषार्थः—उपाय से जो कार्य हो सकता है वह पराक्रम से नहीं हो सकता जैसे दलदल-कीचड़ के मार्ग से जाते हुए सियार ने हाथी को मार दिया ॥ १८७ ॥

६. हस्तीशृगालयोः कथा

अस्ति ब्रह्मारण्ये कर्पूरतिलको नाम हस्ती। तमवलोक्य सर्वे शृगालाश्चिन्तयन्ति स्म 'यद्ययं केनाऽप्युपायेन म्रियते, तदाऽस्माकम् एतेन देहेन मासचतुष्टयस्य स्वेच्छाभोजनं भवेत्'। ततस्तन्मध्यादेकेन वृद्धशृगालेन प्रतिज्ञा कृता–'मया बुद्धिप्रभावादस्य मरणं साधयितव्यम्'। अनन्तरं स वञ्चकः कर्पूरतिलकसमीपं गत्वा साष्टाङ्गपातं प्रणम्योवाच—'देव! दृष्टिप्रसादं कुरु।' हस्ती ब्रूते–'कस्त्वम्? कुतः समायातः?'। सोऽवदत्–'जम्बुकोऽहं सर्वैर्वनवासिभिः पशुभिर्मिलित्वा भवत्सकाशं प्रस्थापितः, यद्विना राज्ञा स्थातुं न युक्तम्, तदत्राऽटवीराज्येऽभिषेक्तुं भवान् सर्वस्वामिगुणोपेतो निरूपितः।

व्याख्या—ब्रह्मारण्ये = ब्रह्मनाम्निवने, कर्पूरतिलकोनाम = नाम्ना कर्पूरतिलकः, हस्ती = गजः, अस्ति = विद्यते, सर्वे = अखिलाः, शृगालाः = जम्बुकाः, तम् = हस्तिनम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा चिन्तयन्ति स्म = मन्त्रयामासुः, यदि = चेत्, अयम् = एषः, हस्ती = गजः, केनापि = उपायेन, केनचिदपि = प्रयत्नेन, म्रियते = मृत्युं गच्छति, तदा = तर्हि, अस्माकम् = अस्मदादीनाम्, शृगालानाम्, एतेन = अनेन गजसम्बन्धिना, देहेन = शरीरेण, मासचतुष्टयस्य = मासचतुष्कस्य, चतुरो मासात् इति यावत्। स्वेच्छाभोजनम् = निजवांच्छाभक्षणं, भवेत् = स्यात्, ततः = अनन्तरम्, तन्मध्यात् = शृगालसमुदायात्, एकेन = अद्वितीयेन, वृद्धशृगालेन = स्थविरजम्बुकेन, प्रतिज्ञा = सन्धा, कृता = अनुष्ठिता, मया = वृद्धशृगालेन, बुद्धिप्रभावात् = मतिप्रतापात्, अस्य = हस्तिनः, मरणम् = निधनम्, साधयितव्यम् = निष्पादनीयम्, अनन्तरम् = ततः, सः = पूर्वोक्तः, वञ्चकः = प्रतारकः, कर्पूरतिलकसमीपम् = कर्पूरतिलकसमीपम्, गत्वा = व्रजित्वा, साष्टाङ्गपातम् = अष्टावयवनमनपूर्वकम्, प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा, उवाच = जगाद, देव! महाराज! दृष्टिप्रसादम् = दर्शनाऽनुग्रहम्, कुरु = विधेहि, हस्ती = गजः, ब्रूते = वदति, कस्त्वम् = जात्या वा नाम्ना को भवान्, कुतः = कस्मात् स्थानात्, समायातः = आगतः। सः = वृद्धशृगालः, अवदत् = अब्रवीत्, अहम्, जम्बुकः = शृगालोऽहम्, सर्वैः = अखिलैः, वनवासिभिः = आरण्यकैः, मिलित्वा = संभूय, भवत्सकाशम् = त्वन्निकटम्, प्रस्थापितः = प्रेषितः, यत् = यतः, राज्ञा = नृपतिना, विना = ऋते, स्थातुम् = स्थितिं कर्तुं, न युक्तम् = नोचितम्। तत् = तस्माद्धेतोः, अत्र = अस्मिन् अटवीराज्ये, वनस्थली-

राज्ये, अभिषेक्तुम्, अभिषेकं कर्तुम्, सर्वस्वामिगुणोपेतः, अखिलप्रभुधर्मसम्पन्नः। भवान् = त्वम्, निरूपितः = निर्णीतः ॥

टिप्पणी—ब्रह्मारण्ये = ब्रह्म च तत् अरण्यम् (क० धा०), मासचतुष्टयस्य = मासानां चतुष्टयः तस्य (ष० त०), स्वेच्छाभोजनम् = स्वस्य इच्छा स्वेच्छा (ष०त०), स्वेच्छया भोजनम् तत (तृ०त०), तन्मध्यात् = तेषां मध्यम्, तस्मात् (प० त०), वृद्धश्रृगालेन = वृद्धश्चासौ श्रृगालः तेन (क०धा०), बुद्धिप्रभावात् = बुद्धेः प्रभावस्तस्मात् (ष० त०), कर्पूरतिलकसमीपम् = कर्पूरतिलकस्य समीपः तम् (ष० त०), अष्टाङ्गपातम् = अष्टौ च तानि अङ्गानि, अष्टाङ्गानि (क० धा०), अष्टाङ्गैः सहितः अष्टाङ्गसहितः (तृ० त०), अष्टाङ्गसहितः पातो तस्मिन् तत् (मध्यमपदलोपि०), दृष्टिप्रसादम् = दृष्टेः प्रसादः तम् (ष० त०), वनवासिभिः = वने वसन्तीति तच्छीला, वन + वस + णिनिः (उपपदसमा०), भवत्सकाशम् = भवतः सकाशः तम् (ष० त०), अटवीराज्ये = अटव्या राज्यं तस्मिन् (ष० त०), सर्वस्वामिगुणोपेतः = स्वामिनो गुणाः (ष० त०), सर्वे च ते स्वामिगुणाः (क० धा०) तैः उपेतः (तृ० त०)।

भावार्थः—ब्रह्म वन में कर्पूरतिलक नाम का हाथी था। उसे देखकर सब सियारों ने विचार किया—'यदि यह हाथी किसी उपाय से मरता है, तो हम लोगों का इसके देह से चार महिने तक का इच्छानुसार भोजन हो जाय।' इसके बाद उनके मध्य से एक वृद्ध सियार ने प्रतिज्ञा की—'मुझे अपनी बुद्धि के प्रभाव से इसकी मौत सिद्ध करनी चाहिए, अर्थात् इसे मरना चाहिए।' इसके बाद वह धूर्त कर्पूरतिलक के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोला—'देव! अपने दृष्टि-पात से मुझे अनुगृहीत कीजिए।' हाथी बोला—'तुम कौन हो? कहाँ से आये हो?' वह (सियार) बोला—'मैं सियार हूँ। समस्त वनवासी पशुओं ने मिलकर मुझे आपके पास भेजा है। क्योंकि बिना राजा के रहना ठीक नहीं है। अतः इस वन के राज्य में अभिषेक के लिए आप सब स्वामी के गुणों से युक्त निश्चित किये गये हैं॥

यतः—कुलाचारजनाऽऽचारैरतिशुद्धः प्रतापवान्।
धार्मिको नीतिकुशलः स स्वामी युज्यते भुवि ॥ १८८ ॥

अन्वयः—कुलाचारजनाचारैः अति शुद्धः प्रतापवान् धार्मिकः नीतिकुशलः 'योऽस्ति' सः भुवि स्वामी युज्यते ॥

व्याख्या—कुलाचारजनाचारैः = वंशरीतिजनरीतिभिः, अतिशुद्धः = अतिपवित्रः, धार्मिकः = धर्माचरणशीलः, प्रतापवान् = सम्पन्नप्रभावः, नीतिकुशलः = नयनिपुणः,

'यः पुरुषः विद्यते' सः तादृशः पुरुषः, स्वामी=राजा, भुवि=भूतले, युज्यते= नियुक्तः क्रियते ॥

टिप्पणी—कुलाचारजनाचारैः=कुलस्य आचारास्ते (ष० त०), जनानामाचारास्ते (ष० त०), कुलाचाराश्च जनाचाराश्च तैः (द्वन्द्वः), अतिशुद्धः= अत्यन्तं शुद्धः (गतिस०), प्रतापवान्=प्रतापोऽस्य विद्यते, प्रताप+मतुप्, नीतिकुशलः=नीतौ कुशलः (स० त०), यः पुरुषः वंशव्यवहारलोकाचारैः निष्कलङ्कः प्रभावशाली, धर्माचरणस्वभाव, नीतिनिपुणो भवति सः भूतले राज्य-सिंहासने नियुक्तः क्रियते, इति भावः ॥

भावार्थः—वंश-परंपरा तथा मानव आचारों से अति शुद्ध, प्रतापी, धर्मात्मा, नीतिकुशल वह स्वामी (राजा) भूतल पर शासन के लिये नियुक्त किया जाता है ॥

अन्यच्च—पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः ।
विकलेऽपि हि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥ १८९ ॥

अन्वयः—पृथिवीपतिः पर्जन्य इव भूतानाम् आधारः । हि पर्जन्ये विकले अपि जीव्यते भूपतौ तु न जीव्यते ।

व्याख्या—पृथिवीपतिः=धराधिपः, पर्जन्यः=मेघः, इव=यथा, आधारः= स्थितिहेतुः । हि=यतः, पर्जन्ये=मेघे, विकले=अवर्षत्यपि, जनैः, जीव्यते=जीवनं, धार्यते, भूपतौ=राज्ञोऽभावे सति न जीव्यते ।

टिप्पणी—पृथिवीपतिः=पृथिव्याः पतिः (ष० त०), भूपतौ=भुवः पतिः, तस्मिन् (ष०त०), प्राणिनां मेघ इव जीवनमूलः नृप एवास्ति । यतः मेघे वर्षत्यपि कथञ्चित प्राणाः धार्यन्ते, नृपाभावे तु संशय एवास्ति, इति भावः ।

भाषार्थः—राजा मेघ के समान देहधारियों के जीवन का आधार है; फिर भी मेघ की अपेक्षा राजा में विशेषता है क्योंकि मेघ के बिना भी जिया जा सकता है, लेकिन राजा के न होने पर किसी तरह भी जीने की सम्भावना नहीं है ॥१८९॥

किञ्च—नियतविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगा-
ज्जगति परवशेऽस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः ।
कृशमपि विकलं वा व्याधितं वाऽधनं वा
पतिमपि कुलनारी दण्डभीत्याऽभ्युपैति ॥ १९० ॥

अन्वयः—परवशे अस्मिन् जगति प्रायशः दण्डयोगात्, नियतविषयवर्ती, साधुवृत्तः दुर्लभः 'जनः' इति शेषः' । कुलनारी अपि कृशम् वा विकलम् वा व्याधितम् पतिम् अपि दण्डभीत्या अभ्युपैति ॥

व्याख्या—परवशे = परतन्त्रे, अस्मिन् = एतस्मिन्, जगति = लोके, प्रायशः = बहुधाः, दण्डयोगात् = दमनसम्पर्कात्, नियतविषयवर्ती = लोकवेदमर्यादानिष्ठः, 'भवति जनः' अत्र=निदर्शनमाह, कुलनारी = कुलाङ्गना, कुलीना = वधूः, अपि कृशम् = तनुतां गतम्; विकलम् = काणबधिरादिदोषोपेतम्, व्याधितम् = रोगिणम्, अधनम् = वित्तशून्यम्, पतिम् = भर्तारम्, दण्डभीत्या = दमनभयेन, न तु स्वेच्छया; अभ्युपैति = पतित्वेन स्वीकरोति, सेवते, इति यावत्।

टिप्पणी—दण्डयोगात्=दण्डस्य योगः तस्मात् (ष०त०), नियतविषयवर्ती= नियतश्चासौ विषयः (क० धा०), तस्मिन् वर्तते तच्छीलः नियतविषय+वृत्+ णिनिः (उप० स०), साधुवृत्तः=साधुः वृत्तः यस्य सः (बहु०), कुलनारी = कुलस्य नारी (ष० त०), व्याधितम्=व्याधिः संजाता, अस्येति व्याधितः तम्, व्याधि+इतच्, अधनम्=अविद्यमानम् धनम् यस्य सः तम् (नञ् बहु०उत्त० लो०), दण्डभीत्या=दण्डात् भीतिः दण्डभीतिः तया (पं० त०)। परतन्त्रेऽस्मिन् संसारे प्रायेण लोकः दण्डभयेन निश्चितविषये वर्तते, मर्यादां सदाचारपरम्पराऽऽगताम् नोल्लङ्घयति। स्वभावतः मर्यादास्थितस्य दुर्लभत्वात्। अत्र दृष्टान्तः— सत्कुलोत्पन्ना वधूः अपि दुर्बलं, कस्यचित् इन्द्रियस्य शक्त्या हीनं रोगिणं निर्धनं पतिमपि दण्डभयेनैव स्वीकरोति पतित्वेनेति भावः।

भाषार्थः—पराधीन इस जगत् में प्रायः दण्ड के डर से यह प्राणी नियत दायरे में चलने वाला है (क्योंकि) साधु व्यवहार वाला व्यक्ति दुर्लभ है। कुल की नारी भी दण्ड के भय से दुबला-पतला अथवा विकलांग (अंग हीन), रोगी या निर्धन को भी पति स्वरूप स्वीकार करती है ॥ १९० ॥

राजानं प्रथमं विन्देत् ततो भार्यां ततो धनम्।
राजन्यसति लोकेऽस्मिन् कुतो भार्या कुतो धनम् ? ॥ १९१ ॥

अन्वयः—अस्मिन् लोके प्रथमम् राजानम् विन्देत् ततः भार्याम् ततः धनम् राजनि असति भार्या कुतः, धनम् कुतः ?

व्याख्या—अस्मिन् = वर्तमाने, लोके = जगति, प्रथमम् = पुरस्तात्, राजानम्= नृपतिम्, विन्देत्= लभेत्, ततः = तदनु, भार्याम् = पत्नीम्, ततः = तत्पश्चात्, धनम् = वित्तम् 'विन्देत् इत्यपि योज्यम्', राजनि = नृपतौ, असति = अविद्यमाने, (सति), भार्या = पत्नी, कुतः = क्व सुरक्षिता भवेत्, तत् धनम् = द्रव्यम्, कुतः= कुत्र सुरक्षितं स्यात्, उभयरक्षा राजाधीनेति भावः।

भाषार्थः—मनुष्य पहले राजा को प्राप्त करे, उसके बाद पत्नी को, बाद में धन को (प्राप्त करे), इस लोक में राजा के न रहने पर पत्नी कहाँ और धन कहाँ ? अर्थात् राजा से दोनों सुरक्षित होंगे ॥ १९१ ॥

तद् यथा लग्नवेला न चलति तथा कृत्वा सत्वरमागम्यतां देव ! इत्युक्त्वा उत्थाय चलितः। ततोऽसौ राज्यलोभाऽऽकृष्टः कर्पूरतिलकः शृगालदर्शितवर्त्मना धावन् महापङ्के निमग्नः। हस्तिना उक्तम्— 'सखे शृगाल ! किमधुना विधेयम् ? महापङ्कपतितोऽहं म्रिये. परावृत्य पश्य !' शृगालेन विहस्य उक्तम्—'देव ! मम पुच्छाग्रे हस्तं दत्त्वा उत्तिष्ठ। यस्मात् मद्विधस्य वचसि त्वया विश्वासः कृतः तस्य फलमेतत्। तदनुभूयताम् अशरणं दुःखम्।'

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात् , यथा = येन प्रकारेण, लग्नवेला = राज्याभिपेकमुहूर्तः, न चलति = न व्यत्येति, तथा = तेन प्रकारेण, कृत्वा = विधाय, सत्वरम् = शीघ्रम्, आगम्यताम् = आगमनीयम्, देव = महाराज ! इति = एवम्, उक्त्वा = अभिधाय, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, चलितः = प्रस्थितः। ततः = अनन्तरम्, राज्यलोभाकृष्टः = राज्यलोलुपत्वेन व्याप्तः, असौ = अयम्, कर्पूरतिलकः = एतन्नामकः, हस्ती, शृगालदर्शितवर्त्मना = जम्बुकावलोकितमार्गेण, धावन् = त्वरया गच्छन्, महापङ्के = दुस्तरे कर्दमे, निमग्नः = प्रसक्तः, हस्तिना = गजेन, उक्तम् = कथितम्। सखे = मित्र ! शृगाल = जम्बुक ! अधुना = सम्प्रति, किं करणीयम्, महापङ्कपतितः = सुदुस्तरकर्दमप्रसक्तः, अहम् = कर्पूरतिलकः, म्रिये = मरणं प्राप्नोमि, परावृत्य = व्याघुट्य, पश्य = विलोकय। शृगालेन = जम्बुकेन, विहस्य = हासं कृत्वा, उक्तम् = अभिहितम्, देव ! हे महाराज, मम=मे, पुच्छाग्रे= लाङ्गुलाग्रे, हस्तम् = शुण्डाम्, दत्त्वा = निधाय, उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु, यस्मात् = यतः, मद्विधस्य = मत्सदृशस्य, वचसि = वचने, त्वया=भवता, विश्वासः=विश्रम्भः, कृतः = अनुष्ठितः, तस्य = विश्वासस्य, एतत् = इदम्, फलम् = परिणामः। तत् = तस्मात् कारणात्, अशरणम् = रक्षकशून्यम्, दुःखम् = कष्टम्, अनुभूयताम् = आस्वाद्यताम्।

टिप्पणी—लग्नवेला = लग्नस्य वेला (ष० त०), राज्यलोभाकृष्टः = राज्यस्य लोभः (ष० त०), तेन = आकृष्टः (तृ० त०), शृगालदर्शितवर्त्मना = शृगालेन दर्शितम्, (तृ० त०), शृगालदर्शितं च तत् वर्त्म तेन (क० धा०), महापङ्के= महाँश्चासौ पङ्कः तस्मिन् (क० धा०), महापङ्कपतितः = पूर्वलिखित महत् शब्द तथा पङ्क शब्द का समास करके महापङ्के पतितः (स० त०), पुच्छाग्रे=पुच्छस्य अग्रं तस्मिन् (ष० त०), मद्विधस्य = अहंविधा यस्य तस्य (बहु०), अशरणम्= अविद्यमानं शरणं यत्र तत् (नञ् बहु० उत्त० लो०)।

भाषार्थः—इसलिए जैसे राज्याभिषेक का मुहूर्त न टल जाय वैसे करके हे महाराज ! शीघ्रता से आइये।' इतना कहके और उठकर चलदिया। तब राज्य के लोभ से आकृष्ट होकर कर्पूरतिलक (हाथी) सियार के दिखाये मार्ग से दौड़ता हुआ

भारी कीचड़ में फँस गया। तब हाथी ने कहा—'मित्र सियार! अब क्या करना चाहिए? दलदल (कीचड़) में फँसा हुआ मैं मरा जा रहा हूँ। पीछे घूमकर देखो।' सियार ने हँस कर कहा—'महाराज! मेरी पूँछ के सिरे (अग्रभाग) पर सूंड़ रख कर उठिये। जिस कारण से मेरे ऐसे (ठग) के वचन में आपने विश्वास किया उस का यह फल है। इसलिए रक्षक विहीन दुःख को अनुभव कीजिए।'

तथा चोक्तं—यदाऽसत्सङ्गरहितो भविष्यसि भविष्यसि।
यदासज्जनगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि ॥ १९२ ॥

अन्वयः—यदा, असत्सङ्गरहितः भविष्यसि (तदा), भविष्यसि, यदा असज्जनगोष्ठीषु पतिष्यसि (तदा), पतिष्यसि।

व्याख्या—यदा = यस्मिन् समये, असत्सङ्गरहितः = दुर्जनसङ्गातिशून्यः, भविष्यसि = भवितासि (तदा), भविष्यसि = जीवनं धारयिस्यसि। यदा = यस्मिन्, काले, असज्जनगोष्ठीषु = दुर्जनसंगतिषु, पतिष्यसि विश्वासं करिष्यसि (तदा), पतिष्यसि = महापङ्के, पतितो भविष्यसि ॥

टिप्पणी—असत्सङ्गरहितः = असतां सङ्गः (ष० त०), तेन रहितः (ष० त०), असज्जनगोष्ठीषु = असज्जनानां गोष्ठयस्तासु (ष० त०), पुरुषः यदा दुर्जनसम्पर्कशून्यश्चेत् तदा सुखेन जीवनं यापयति, यदि दुर्जनानां वार्तासु विश्वासं करोति, तदा महादुःखे पतितो भवति। अतः सर्वानर्थमूला दुष्टसंगति रिति भावः।

भावार्थः—जब दुर्जनों की संगति से रहित (तुम) होगे तब इस दुनिया में रहोगे। जब दुर्जनों की मंडली में पड़ोगे (तब तुम दुःखरूपी पोंक में ही) गिरोगे ॥ १९२ ॥

ततो महापङ्के निमग्नो हस्ती शृगालैर्भक्षितः। अतोऽहं ब्रवीमि—'उपायेन हि यच्छक्यम्' इत्यादि।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम्, महापङ्के = विपुलकर्दमे, निमग्नः=प्रसक्तः, हस्ती= गजः, शृगालैः = जम्बुकैः, भक्षितः = खादितः। अतः = अस्मात् कारणात्, अहम्= हिरण्यकः, ब्रवीमि = वदामि, उपायेन हि यच्छक्यम्।

भावार्थः—इसके बाद गम्भीर कीचड़ में फँसे हाथी को सियारों ने खा डाला। इसलिये मैं कहता हूँ—'उपाय से जो शक्य है' इत्यादि।

ततस्तद्धितवचनमवधीर्य महता भयेन विमुग्ध इव मन्थरस्तज्जलाशयमुत्सृज्य प्रचलितः। तेऽपि हिरण्यकादयः स्नेहादनिष्टं शङ्कमानास्तमनुजग्मुः। ततः स्थले गच्छन् केनाऽपि व्याधेन वने पर्यटता स मन्थरः प्राप्तः, स च तं

गृहीत्वा उत्थाय धनुषि बद्ध्वा 'धन्योऽस्मि' इत्यभिधाय भ्रमणक्लेशात् क्षुत्पिपासाकुलः स्वगृहाभिमुखं प्रयातः। अथ ते मृगवायसमूषिकाः परं विषादमुपगताः तमनुगच्छन्ति स्म। ततः हिरण्यको विलपति—

व्याख्या—ततः = अनन्तरम्, तद्धितवचनम्=हिरण्यकहितवाक्यम्, अवधीर्य= तिरस्कृत्य, महता = प्रचुरेण, भयेन = त्रासेन, विमुग्ध इव = सम्पन्नमोह इव, मन्थरः = कूर्मः, तज्जलाशयम् = तत् प्राचीनतडागम्, उत्सृज्य=त्यक्त्वा, प्रचलितः= प्रस्थितः। तेऽपि = पूर्वोक्ताः अपि, हिरण्यकादयः = मूषिकप्रभृतयः, स्नेहात् = प्रेमभावात्, तदनुगच्छन्ति स्म = मन्थरस्य पश्चाद् गच्छन्। ततः=तदनन्तरम्, स्थले= भूतले गच्छन् = व्रजन्, वने = कानने, पर्यटता = परिभ्रमता, केनापि = केनचित्, व्याधेन = लुब्धकेन, सः = प्रसिद्धः, मन्थरः = कूर्म, प्राप्तः = आसादितः, स च = व्याधश्च, तम् = कमठम्, मन्थरम्, गृहीत्वा = आदाय, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, धनुषि = कार्मुके, बद्ध्वा = संनह्य, धन्योऽस्मि = कृतार्थोभवामि, इत्यभिधाय = इत्युक्त्वा, भ्रमणक्लेशात् = पर्यटनश्रमात्, क्षुत्पिपासाकुलः = बुभुक्षाजलपानेच्छा-व्याकुलः, स्वगृहाभिमुखम् = निजालयादशम्, प्रयातः=प्रस्थितः। अथ=अनन्तरम्, ते = पूर्वोक्ताः मृगवायसमूषिकाः = हरिणकाकाखवः, परम् = महत्, विषादम् = कष्टम्, उपगताः = प्राप्ताः, तमनुगच्छन्ति स्म = व्याधस्य पश्चात् वव्रजुः। ततः = तदनु, हिरण्यकः = मूषिक, विलपति = विलाप करोति।

टिप्पणी—तद्धितवचनम् = हितं च तत् वचनं तत (क० धा०), तस्य हितवचनम (ष० त०), हिरण्यकादयः = हिरण्यक आदिर्येषां ते (बहु०), भ्रमणक्लेशात् = भ्रमणे क्लेशः तस्मात् (स० त०), क्षुत्पिपासाकुलः=क्षुच्च पिपासा च क्षुत्पिपासे (द्वन्द्वः), ताभ्यामाकुलः (तृ० त०), स्वगृहाभिमुखम् = स्वस्य गृहम् (ष० त०), तस्य अभिमुखम् तत् (ष० त०), मृगवायसमूषिकाः=मृगश्च वायसश्च मूषिकश्च ते (द्वन्द्वः)।

भावार्थः—इसके बाद हिरण्यक (चूहे) के हित वचन का तिरस्कार कर के बड़े भय से घबड़ाये हुए की तरह मन्थर (कछुवा) उस जलाशय को त्याग कर चल दिया। वे हिरण्यकादि स्नेह से अनिष्ट की शङ्का करते हुए उसके पीछे चले। तब जमीन पर जाता हुआ मन्थर वन में घुमते हुए किसी बहेलिया को मिला। उसने उसे (कछुआ को) पकड़ा (और जमीन से) उठाकर धनुष में बाँधकर 'धन्य हूँ' ऐसा कहकर भ्रमण के परिश्रम से थका भूख-प्यास से व्याकुल वह व्याध अपने घर की ओर चल दिया। तब फिर वे हिरन, कौआ और चूहा भी बहुत दुखी हुए और उसके पीछे-पीछे चले। इसके बाद हिरण्यक विलाप करने लगा—

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य ।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥१९३॥

अन्वयः—अहम् अर्णवस्य पारम् इव यावत् एकस्य दुःखस्य अन्तं न गच्छामि। तावत् मे द्वितीयम् समुपस्थितम्, छिद्रेषु अनर्था बहुलीभवन्ति ॥

व्याख्या—अहम् = मूषिकः अर्णवस्य = समुद्रस्य, पारम् = अपरतटम् , इव = यथा, यावत् = यत्कालपर्यन्तरम् , एकस्य = एकत्वविशिष्टस्य, दुःखस्य = कष्टस्य स्वधननाशात्मकस्य, मित्रग्रीवबन्धनजनितस्य वा, अन्तम् = अवसानम्, न गच्छामि = न लभे, तावत् = तत्परिमाणककाल द्वितीयम् अपरम् (कूर्ममित्र-वियोगजन्यम), दुःखम्, मे = मम, समुपस्थितम् = सम्प्राप्तम् , छिद्रेषु = रन्ध्रेषु (सत्सु), अनर्थाः = विपत्तयः, बहुलीभवन्ति = बहुप्रकारका भवन्ति ।

टिप्पणी —बहुलीभवन्ति = अबहुलाः बहुला यथा सम्पद्यन्ते तथा भवन्ति, बहुल + च्वि । अहं समुद्रस्य पारं यथा न गम्यते तद्वत् एकस्य, स्वधननाशात्मकस्य, कष्टस्य, समाप्तिं न करोमि तावदिदं कूर्ममित्रवियोगजं द्वितीयं दुःखं सम्प्राप्तम् । सत्यां विपत्तौ, अवसरं प्राप्य अनेकानि दुःखानि समायान्तीति भावः ।

भाषार्थः—मैं समुद्र के पार की तरह जबतक एक दुःख का अन्त नहीं कर पाया हूँ तब तक मेरा दूसरा (दुःख) उपस्थित हो गया; (सचमुच में) छिद्रों में (कमजोरियों) अनर्थ बहुतेरे होते हैं ॥ १९३ ॥

स्वभावजं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति ॥ १९४ ॥

अन्वयः—यत् स्वभावजम् मित्रम् भाग्येन एव अभिजायते, तत्, अकृत्रिम-सौहार्दम् आपत्सु, अपि न मुञ्चति ।

व्याख्या—यत् = स्वभावजम् = स्वाभाविकम्, मित्रम् = सुहृत्, भाग्येन एव= पूर्वसञ्चितपुण्यकर्मणैव, अभिजायते = उत्पद्यते, तत् = तादृशं मित्रम, अकृत्रिम-सौहार्दम् = स्वाभाविकसुहृद्भावम् , आपत्स्वपि = विपत्तिष्वपि, न मुञ्चति = न त्यजति ।

टिप्पणी—स्वभावजम् = स्वभावात् , जातम् = स्वभाव + जन् + डः (उपपद-समासः), अकृत्रिमसौहार्दम् = न कृत्रिमम् , (नञ्० त०), अकृत्रिमं च तत् सौहार्दम् (क० धा०)। स्वाभाविकमित्रलाभः पूर्वोपचितपुण्यकर्ममूलः। तादृशं मित्रम् स्वाभाविकसुहृद्भावं सत्स्वपि विपत्तिषु न मुञ्चतीति भावः ।

भाषार्थः—जो स्वाभाविक मित्र है वह भाग्य से ही मिलता है। वह स्वाभाविक मित्र आपत्तियों में भी नहीं छोड़ता है ॥ १९४ ॥

अपि च—न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चाऽऽत्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे ॥ १९५ ॥

अन्वयः—पुंसाम् स्वभावजे मित्रे यादृक् विश्वासः, तादृशः न मातरि, न दारेषु, न सोदर्ये, न च आत्मजे वर्तते इति शेषः ।

व्याख्या—पुंसाम् = पुरुषाणाम् , स्वभावजे = नैसर्गिके, मित्रे=सुहृदि, यादृक्= यादृशः, विश्वासः = विस्रम्भः, तादृशः = तादृक् , न मातरि =जनन्यां न, दारेषु = पत्न्यां, न, सोदर्ये = समानोदरे जाते, भ्रातरि न, आत्मजे = औरसापत्ये, पुत्रे च न 'भवति'।

भावार्थः—पुरुषों का स्वाभाविक मित्र में जैसा विश्वास (होता है) वैसा (विश्वास) माता में नहीं, पत्नी में नहीं, सहोदर भाई में नहीं, और अपने पुत्र में भी नहीं होता है ॥ १९५ ॥

इति मुहुः विचिन्त्य प्राह—'अहो ! मे दुर्दैवम्' ।

व्याख्या—इति = एवं, मुहुः = वारं-वारं, विचिन्त्य = विचार्य, प्राह = कथयति । 'अहो = आश्चर्यम्, मे = मम, दुर्दैवम् = दुर्भाग्यम् ।'

भावार्थः—इस प्रकार बार-बार चिन्ता कर के कहा—'अहो ! मेरा दुर्भाग्य है।'

अतः—स्वकर्मसन्तानविचेष्टितानि कालान्तराऽऽवर्तिशुभाऽशुभानि ।
इहैव दृष्टानि मयैव तानि जन्मान्तराणीव दशान्तराणि ॥ १९६ ॥

अन्वयः—मया एवं स्वकर्मसंतानविचेष्टितानि कालान्तरावर्तिशुभाशुभानि, तानि दशान्तराणि जन्मान्तराणि इव इह एव दृष्टानि ।

व्याख्या—मया हिरण्यकेन, स्वकर्मसन्तानविचेष्टितानि = निजक्रियापरम्परा-चेष्टाः, कालान्तरावर्तिशुभाशुभानि = समयान्तराभाविकल्याणानि, तानि = पूर्वा-नुभूतानि, दशान्तराणि = अवस्थान्तराणि, जन्मान्तराणि इव = अन्यानि जननानि इव, इह एव=अस्मिन् जन्मनि एव, दृष्टानि=साक्षात्कृतानि, उपभुक्तानीति भावः ।

टिप्पणी—स्वकर्मसन्तानविचेष्टितानि = स्वस्य कर्माणि (ष० त०), तेषां सन्तानः (ष० त०), तेषां विचेष्टितानि, (ष० त०), कालान्तरावर्तिशुभा-शुभानि = अन्यः, कालः कालान्तरम् (मयूरव्यंसकादि०), कालान्तरे आवर्तन्ते, कालान्तरावर्तीनि, कालान्तर + आ + वृत् + णिनिः (उप स०), शुभानि च अशु-भानि च (द्वन्द्वः), कालान्तरावर्तीनि शुभाशुभानि येषु तानि (बहु०), दशान्तराणि = अन्याः दशाः दशान्तराणि (मयूरव्यंसकादि०), जन्मान्तराणि = अन्यानि जन्मानि (मयूरव्यंस०), उपजाति छन्दः । मयैव आत्मनः कर्मपरम्पराणां चेष्टारूपः समयान्तरभाविशुभाशुभफलयुक्ताः अनेकदशाः जन्मान्तरणीव, अस्मिन्नेव जन्मनि, भुक्तानीति भावः ।

भाषार्थः—मैंने इस प्रकार अपने किये हुए कर्मसमूहों से उत्पन्न होने वाले कालान्तर में होने वाले शुभाशुभ फलवाली उन अनेक दशाओं को जन्मान्तर (दूसरे जन्म में भोग्य) की भांति इस जन्म में ही देख लिया ॥१९६॥

अथवा इत्थमेवैतत्—

भाषार्थः—अथवा यह इसी प्रकार है—

कायः सन्निहिताऽपायः सम्पदः पदमापदम् ।
समागमाः साऽपगमाः सर्वमुत्पादि भङ्गुरम् ॥ १९७ ॥

अन्वयः—कायः सन्निहितापायः संपदः आपदाम् पदम्, समागमाः सापगमाः सर्वम् उत्पादि भङ्गुरम् 'वर्तते'।

व्याख्या—कायः = शरीरम्, संनिहितापायः = आसन्नमृत्युः, संपदः = सम्पत्तयः, आपदाम् = विपदाम्, पदम् = स्थानम्, समागमाः = संयोगाः, सापगमाः = वियोगसहिता, उत्पादि = उत्पत्तिशीलम्, सर्वम् = सकलम्, भङ्गुरम् = विनाशशीलं, अस्तीति शेषः ।

टिप्पणी—सन्निहितापायः = सन्निहितः अपायो यस्य सः (बहु०), सापगमाः= अपगमेन सहिताः (तुल्ययोगबहु०), शरीरं विनाशशीलं संपत्तयः दुःखस्थानानि, मित्रादिसंगतिः विप्रयोगसहिता, अपरं सर्वं यत् उत्पद्यते तत् विनश्वरमेवास्ति । 'अतः शोकः कुतः करणीयः, इति भावः ।

भाषार्थः—शरीर विनाश के पास है, सम्पदायें विपदा के स्थान पर हैं, समागम वियोग वाले हैं (इस प्रकार) सब कुछ उत्पन्न होने वाले पदार्थ नाशवान हैं ॥१९७॥

पुनर्विमृश्याऽऽह—

व्याख्या—पुनः = भूयः, विमृश्य = विचार्य, आह = वदति ।

भाषार्थः—फिर विचार कर बोला—

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥ १९८ ॥

अन्वयः—शोकारातिभयत्राणम् प्रीतिविश्रम्भभाजनम्, मित्रम् इति, इदम् अक्षरद्वयम् केन सृष्टम् ?

व्याख्या—शोकारातिभयत्राणम् = विषादशत्रुभीतिरक्षकम्, प्रीतिविश्रम्भभाजनम् = स्नेहविश्वासपात्रम्, मित्रम् = इत्यानुपूर्वीकम्, इदम् = निकटस्थम्, अक्षरद्वयम् = वर्णद्वितयम्, केन = पुरुषेण, विधात्रा वा, सृष्टम् = उत्पादितम् ।

टिप्पणी—शोकारातिभयत्राणम् = शोकश्च अरातिश्च भयं च शोकारातिभयानि, (द्वन्द्वः), तेभ्यः = त्राणं यस्मात् , तत् (व्य० बहु०), प्रीतिविश्रम्भभाजनम् =

प्रीतिश्च विश्रम्भश्च, प्रीतिविश्रम्भौ (द्वन्द्वः), तयोः भाजनम् (ष० त०), अक्षर-द्वयम् = अक्षरयोः द्वयम् (ष० त०), शोकशत्रुभयरक्षकं स्नेहविश्वासपात्रं रत्नरूपं वर्णद्वयवत् मित्रमितिपदं केन महापुरुषेणोत्पादितमिति भावः।

भाषार्थः—शोक, शत्रु, भय से रक्षा करने वाला, प्रीति एवं विश्वास का पात्र 'मित्र' रूप यह दो अक्षर किस महापुरुष ने उत्पन्न किया है ? ॥ १९८ ॥

किञ्च—मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत् सुखदुःखयोः सममिदं पुण्यात्मना लभ्यते।
ये चाऽन्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याऽभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥ १९९ ॥

अन्वयः—यत् मित्रम्, नयनयोः प्रीतिरसायनम्, चेतसः आनन्दम्, सुख-दुःखयोः समम् पात्रम्, इदम् पुण्यात्मना लभ्यते। समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषा-कुलाः ये च अन्ये सुहृदः ते सर्वत्र मिलन्ति तेषां तु तत्त्वनिकषग्रावा विपत्(अस्ति)।

व्याख्या—यत् मित्रम् = सुहृत् , नयनयोः नेत्रयोः, प्रीतिरसायनम् = स्नेहरस-स्थानम्, चेतसः = मनसः, आनन्दनम् = हर्षकम्, सुखदुःखयोः = हर्षविषादयोः, समम् = तुल्यम्, पात्रम् = भाजनम्, इदम् = एतादृशम्, मित्रम्, पुण्यात्मना = सुकृतिना जनेन, लभ्यते = प्राप्यते, समृद्धिसमये = धनाढ्यतावेलायाम्, द्रव्याभि-लाषाकुलाः = धनलालसाव्याकुलाः, ये च अन्ये = अपरे, सुहृदः = मित्राणि, ते = तादृशाः, सर्वत्र = सर्वस्मिन् स्थाने, मिलन्ति = अधिगच्छन्ति, तेषां = तादृशानाम्, तत्त्वनिकषग्रावा = मित्रत्वपरीक्षकप्रस्तरः, विपत् = आपत्।

टिप्पणी—प्रीतिरसायनम् = रसस्य अयनम् (ष० त०), प्रीतेः रसायनम् (ष० त०), सुखदुःखयोः = सुखं च दुःखं च तयोः (द्वन्द्वः), पुण्यात्मना = पुण्य आत्मा यस्य सः, तेन (बहु०), समृद्धिसमये = समृद्धेः समयस्तस्मिन् (ष० त०), द्रव्याभिलाषाकुलाः = द्रव्यस्य अभिलाषैः (ष० त०), तेन आकुलाः (तृ० त०), तत्त्वनिकषग्रावा = तस्य (मित्रस्य भावः), तत्त्वम् निकषश्चासौ ग्रावा, निकषग्रावा (क० धा०), तत्त्वस्य निकषग्रावा (ष० त०), यत् मित्रं नयनयोः प्रीतिमुत्पादयति, चित्तमाह्लादयति, हर्षविषादयोः तुल्यभावेन वर्तते, एतादृशं मित्रन्तु केनापि सुकृतिना जनेनावाप्तुं शक्यते। धनिकदशायां, वित्तलालसोपेता, ये चापरे सुहृदस्ते तु सर्वत्र प्राप्नुवन्ति, परन्तु तादृशस्वार्थपरायणानाम मित्रत्वपरीक्षकशाणप्रस्तरस्तु, आपत्तिरेवास्तीति, आपत्ता-वेव मित्राणि परिचयन्ते।

भाषार्थः—जो मित्र नेत्रों के प्रीतिरस का स्थान है, चित्त को आनन्द देने वाला है, सुख-दुःख में समान भाव से साथ देने वाला पात्र है; ऐसे मित्र का लाभ

किसी पुण्यात्मा को होता है। उन्नति काल में धन की लालसा से व्याकुल जो अन्य मित्र हैं, वे तो सर्वत्र मिलते हैं। परन्तु उनके तत्त्व (मित्रता) की कसौटी तो विपत्ति है (अर्थात् विपत्ति में मित्र पहचाने जाते हैं) ॥ १९९ ॥

इति बहु विलप्य हिरण्यकश्चित्राङ्गलघुपतनकावाह—'यावदयं व्याधो वनान्न निःसरति, तावन्मन्थरं मोचयितुं यत्नः क्रियताम्'। तौ ऊचतुः—'सत्वरं यथाकार्यमुपदिश'। हिरण्यको ब्रूते—'चित्राङ्गो जलसमीपं गत्वा मृतमिवाऽऽत्मानं निश्चेष्टं दर्शयतु, काकश्च तस्योपरि स्थित्वा चञ्च्वा किमपि विलिखतु, नूनमनेन लुब्धकेन मृगमांसार्थिना तत्र कच्छपं परित्यज्य सत्वरं गन्तव्यम्, ततोऽहं मन्थरस्य बन्धनं छेत्स्यामि, सन्निहिते लुब्धके भवद्भ्यां पलायितव्यम्'।

व्याख्या—इति = एवं, बहु = अत्यन्तम्, विलप्य = विलापं कृत्वा, हिरण्यकः= मूषिकः, चित्राङ्गलघुपतनकौ = मृगवायसौ, आह = वदति, अयम् = एषः, व्याधः = लुब्धकः, यावत् = यत्परिमाणकसमयेन, वनात् = अरण्यात्, न निःसरतिः = न निष्क्रामति, तावत् = तावता कालेन, मन्थरम् = कच्छपम्, मोचयितुम् = व्याध-बन्धनात् मुक्तं कर्तुम्, सत्वम् = शीघ्रम्, यत्नः = उद्यमः, क्रियताम् = विधीयताम्, तौ = वायसमृगौ, ऊचतुः = जगदतुः, यथा = येन प्रकारेण, कार्यम् = कर्तव्यम्, तत् सत्वरम् = शीघ्रम्, उपदिश = उपदेशं कुरु। हिरण्यकः = मूषिकः ब्रूते = वदति, चित्राङ्गः = मृगः, जलसमीपम् = सलिलपार्श्वम्, गत्वा = यात्वा, आत्मानम् = स्वम्, मृतम् = प्राणविहीनम्, इव = यथा, निश्चेष्टम् = करपादिचालनव्यवहारशून्यं, दर्शयतु = दर्शनं कारयतु, काकश्च = वायश्च, तस्य = मृगस्य, उपरि = देहोपरि, स्थित्वा = उपविश्य, चञ्च्वा = त्रोट्या, किमपि = किञ्चिदपि, विलिखतु = विलेखनं, करोतु चञ्चुपुटेन = विकर्षतु वा, मृगमांसार्थिना = हरिणामिषेच्छुकेन, अनेन = एतेन, लुब्धकेन = व्याधेन, नूनम् = अवश्यम्, तत्र=तस्मिन्नेव स्थले, कच्छपम्=मन्थरम्, परित्यज्य = हित्वा, सत्वरं = तूर्णम्, (मृगं प्रति), गन्तव्यम् = गमनीयम्। ततः= तदनन्तरम्, अहम् = हिरण्यकः, मन्थरस्य = कच्छपस्य, बन्धम् = नहनम्, छेत्स्यामि = खण्डयिष्यामि। लुब्धके च = व्याधे च (युवयोः), सन्निहिते = समीपमागते (सति) भवद्भ्याम् = युवाभ्याम्, पलायितव्यम् = पलायनं करणीयम्।

टिप्पणी—जलसमीपम् = जलस्य समीपः तम् (ष० त०), निश्चेष्टम् = निर्गता चेष्टा यस्मात् सः तम् (बहु०), मृगमांसार्थिना = मृगस्य मांसः (ष० त०), तम् अर्थयते तच्छीलः मृगमांस+अर्थ+णिनिः (उप० स०)।

भापार्थः—इस तरह बहुत विलाप करके हिरण्यक ने चित्राङ्ग (मृग) और लघुपतनक (कौआ) से कहा—'जब तक यह व्याध वन से बाहर नहीं निकलता है तब तक मन्थर (कछुआ) के छुड़ाने का उपाय करना चाहिए'। (उन दोनों) ने कहा—'जैसा करना चाहिए उसका शीघ्र निर्देश कीजिए'। हिरण्यक कहता है—'चित्राङ्ग (मृग) जल के समीप जाकर अपने को मृतक के समान निश्चेष्ट (अङ्गक्रियाओं से शून्य) दिखलावे और कौआ उसके ऊपर बैठ कर अपनी चोंच से कुछ लिखे। मृग-मांस का लालची यह व्याध कच्छप को छोड़ कर अवश्य वहाँ जायगा। इतने में मैं मन्थर (कछुआ) के बंधन को काट दूंगा। व्याध के समीप आने पर आप दोनों उठकर भाग जाना।

ततश्चित्राङ्गलघुपतनकाभ्यां शीघ्रं गत्वा तथाऽनुष्ठिते सति स व्याधः परिश्रान्तः पानीयं पीत्वा तरोरधस्तादुपविष्टः सन् तथाविधं मृगमपश्यत्। ततः कच्छपं जलसमीपे निधाय कर्तरिकामादाय प्रहृष्टमना मृगान्तिकं चलितः। अत्राऽन्तरे हिरण्यकेन आगत्य मन्थरस्य बन्धनं छिन्नम्। छिन्नबन्धनः कूर्मः सत्वरं जलाशयं प्रविष्टः, स च मृग आसन्नं तं व्याधं विलोक्योत्थाय द्रुतं पलायितः, प्रत्यावृत्य लुब्धको यावत् तरुतलमायाति तावत् कूर्ममपश्यन्नचिन्तयत्—'उचितमेवैतत् ममाऽसमीक्ष्यकारिणः'।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम्, चित्राङ्गलघुपतनकाभ्याम् = तदाख्यमृगकाकाभ्याम्, शीघ्रम् = सत्वरं, गत्वा = व्रजित्वा, तथा = तेन प्रकारेण, अनुष्ठिते = कृते सति, सः = पूर्वोक्तः, व्याधः = लुब्धकः, परिश्रान्तः = कृतपरिश्रमः, पानीयम् = जलम्, पीत्वा = पानं कृत्वा, तरोः = वृक्षस्य, अधस्तात् = अधोभागे, उपविष्टः = निषण्णः सन्, तथाविधम् = तादृशम्, मृगम् = हरिणम्, अपश्यत् = ददर्श। ततः = तदनन्तरम्, कच्छपम् = कूर्मम्, जलसमीपे = सलिलनिकटे, निधाय = स्थापयित्वा, कर्तरिकाम् = छुरिकाम्, आदाय = गृहीत्वा, प्रहृष्टमनाः = प्रसन्नचित्तः, मृगान्तिकं = हरिणसमीपम्, चलितः = प्रयातः। अत्र = अस्मिन्, अन्तरे = अवसरे, हिरण्यकेन = मूषिकेन, आगत्य = आगमनं कृत्वा, मन्थरस्य = कच्छपस्य, बन्धनम् = नहनम्, छिन्नम् = कृत्तम्, छिन्नबन्धनः = कृत्तनहनः, कूर्मः = कमठः, सत्वरम् = शीघ्रम्, जलाशयम् = कासरम्, प्रविष्टः = प्रवेशं कृतवान्, स च = पूर्वनिर्दिष्टः, मृगः = हरिणः, आसन्नम् = निकटस्थम्, तम् व्याधम् = लुब्धकम्, विलोक्य = दृष्ट्वा, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, द्रुतम् = सत्वरम्, पलायितः = पलायनं कृतवान्। प्रत्यावृत्य = प्रत्यागत्य, लुब्धकः = व्याधः, यावत् = यत्कालपर्यन्तम्, तरुतलम् = द्रुमाधस्तात्, आयाति = आगच्छति, तावत् = तत्कालं, कूर्मम् =

कच्छपम् , अपश्यन् = अनवलोकयन् , अचिन्तयत् = विचारितवान् । असमीक्ष्यकारिणः = जाल्मस्य, मम = मे, एतत् = कच्छपपलायनम् , उचितमेव=योग्यमेव ।

टिप्पणी—तथाविधम् = तथा विधा यस्य सः तम् (बहु०), प्रहृष्टमनाः = प्रहृष्टं मनो यस्य सः (बहु०), मृगान्तिकम् = मृगस्य अन्तिकः तम् (ष० त०), छिन्नबन्धनः = छिन्नं बन्धनं यस्य सः (बहु०), तरुतलम् = तरोः तलं तत् (ष० त०), असमीक्ष्यकारिणः = समीक्ष्य करोति इति तच्छीलः, समीक्ष्य + कृ + णिनिः (उप० स०), न समीक्ष्यकारी असमीक्ष्यकारी तस्य (नञ् त०) ।

भाषार्थः—तब चित्राङ्ग और लघुपतनक ने शीघ्र जाकर वैसा ही किया, वह व्याध थका हुआ था अतः पानी पीकर पेड़ के नीचे बैठा तो उस तरह से पड़े हुए मृग को देखा। इसके बाद कछुआ को जल के समीप रखकर और छुरी लेकर प्रसन्न मन से हिरन के पास चला गया । इसी अवसर पर हिरण्यक ने आकर मन्थर का बन्धन काट डाला । बन्धन कटने पर कछुआ (मन्थर) शीघ्रता से सरोवर में घुस गया । जब उस मृग ने अपने समीप आते हुए उस व्याध को देखा तब उठकर शीघ्र भाग गया । व्याध लौटकर जब पेड़ के नीचे आता है तब कछुआ को न देख कर चिन्तन किया—'बिना विचार के कार्य करने वाले मेरे लिए यह ठीक ही हुआ' ।

यतः—यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि ॥ २०० ॥

अन्वयः—यः ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते, तस्य ध्रुवाणि नश्यन्ति, अध्रुवम् नष्टम् एव हि ।

व्याख्या—यः = जनः, ध्रुवाणि = निश्चितानि, स्थिराणि वा, परित्यज्य=विहाय, अध्रुवाणि = अस्थिराणि, निषेवते = भजते, श्रयते वा, तस्य = जनस्य, ध्रुवाणि = निश्चितानि, नश्यन्ति = अदर्शनम् यान्ति, अध्रुवं = अस्थिरम्, नष्टमेव = प्राप्तनाशमेव, हि = निश्चितम् ।

टिप्पणी—अध्रुवाणि = न ध्रुवाणि (नञ्० त०), एवमेव, अध्रुवम् (नञ्० त०) । यः पुरुषः निर्णीतवस्तूनि त्यक्त्वा, अनिश्चितपदार्थन् , आश्रयते तस्य निश्चितानि वस्तूनि नाशं प्राप्नुवन्ति, अनिश्चितन्तु नष्टप्रायमस्त्येव निश्चयेनेति भावः ।

भाषार्थः—जो पुरुष निश्चित (वस्तुओं) को छोड़कर अनिश्चितों का आश्रय करता है, उसके निश्चित (पदार्थ) नष्ट हो जाते हैं, अनिश्चित तो नष्ट ही है ॥२००॥

ततऽसौ स्वकर्मवशान्निराशः कटकं प्रविष्टः, मन्थरादयश्च सर्वे मुक्ताऽऽपदः स्वस्थानं गत्वा यथासुखमास्थिताः ।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम्, असौ=एषः व्याधः, स्वकर्मवशात्=निजासमीक्ष्यकारित्वात्मककार्यविधया। निराशः = भ्रष्टाभिलाषः, कटकम् = स्वशीविरम्, स्वस्थानमिति वा, प्रविष्टः = कृतप्रवेशः, सर्वे = समस्ताः, मन्थरादयः = कच्छपमृगकाकमूषिकाः, मुक्तापदः = त्यक्तविपत्तयः, स्वस्थानम् = निजनिवासम्, गत्वा = प्राप्य, यथासुखम् = शान्तिपूर्वकम्, आस्थिताः = वसन्ति स्म।

टिप्पणी—स्वकर्मवशात् = स्वस्य कर्म (ष० त०), स्वकर्मणः वशः तस्मात् (ष० त०), निराशः = निर्गता आशा यस्मात् सः (बहु०), मन्थरादयः = मन्थरः आदिर्येषां ते (बहु०), मुक्तापदः=मुक्ता आपत् येषां ते (बहु०), स्वस्थानम् = स्वस्य स्थानम् (ष० त०), यथासुखम् = सुखमनतिक्रम्य (अव्ययीभावः)।

भाषार्थः—तब वह (व्याध) अपने अविवेकपूर्ण कर्म वश निराश होकर अपने शिविर में चला गया और मन्थरादि सबके सब आपत्ति से छुटकारा पाकर अपने स्थान पर जाकर सुख से रहने लगे।

अथ राजपुत्रैः सानन्दमुक्तम्—'सर्वं श्रुतवन्तः। सुखिनो वयम्, सिद्धं नः समीहितम्'। विष्णुशर्मोवाच—'एतद्भवतामभिलषितमपि सम्पन्नम् अपरमपि इदमस्तु—

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, राजपुत्रैः = नृपकुमारैः, सानन्दम् = हर्षपूर्वकम्, उक्तम् = अभिहितम्, सर्वे = अखिला, वयम् = अस्मदादयः, श्रुतवन्तः = शुश्रुम, सुखिनः = लब्धप्रमोदाः, 'संवृत्ताः', नः = अस्माकम्, समीहितम् = इच्छितम्, सिद्धम् = निष्पन्नम्, विष्णुशर्मा = पूर्वोक्तः, महापण्डितः, उवाच = जगाद। एतत् = इदम्, भवताम् = युष्माकम्, अभिलषितम्, अपि = अभीष्टम् अपि, सम्पन्नम् = सिद्धम्, अपरमपि = मित्रलाभातिरिक्तम्, इदम् = वक्ष्यमाणमपि, अस्तु = भवतु।

भाषार्थः—इसके बाद राजकुमारों ने आनंदपूर्वक कहा—'हम सब सुन चुके। हम सभी सुखी हैं, हम लोगों का मनोरथ सिद्ध हुआ।' विष्णुशर्माजी बोले—'यह आप लोगों का अभिलषित भी सम्पन्न हुआ और भी यह होवे—

मित्रं यान्तु च सज्जना जनपदैर्लक्ष्मीः समालभ्यतां
भूपालाः परिपालयन्तु वसुधां शश्वत् स्वधर्मे स्थिताः।
आस्तां मानसतुष्टये सुकृतिनां नीतिर्नवोढेव वः
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवांश्चन्द्रार्धचूडामणिः॥ २०१॥

अन्वयः—सज्जनाः मित्रं यान्तु जनपदैः लक्ष्मीः समालभ्यताम्, भूपालाः स्वधर्मे स्थिताः (सन्तः) शश्वत् वसुधाम् परिपालयन्तु, वः नीतिः नवोढा इव सुकृतिनाम् मानसतुष्टये आस्ताम्, भगवान् चन्द्रार्धचूडामणिः जनस्य कल्याणम् कुरुताम्।

व्याख्या—सज्जनाः = शिष्टाः जनाः, मित्रम् = सुहृदम्, यान्तु = प्राप्नुवन्तु, जनपदैः = मण्डलैः, देशैः वा, लक्ष्मीः = सम्पत्तिः, समालभ्यताम् = सम्प्राप्यताम्, भूपालाः = नृपाः, स्वधर्मे = निजकर्मणि, स्थिताः = विद्यमानाः (सन्तः), वसुधाम् = पृथिवीम्, पालयन्तु = गोपायन्तु, शश्वत् = सततम् । वः = युष्माकम्, राजपुत्राणाम्, नीतिः = राजनीतिः, सुकृतिनाम् = पुण्यवताम् जनानाम्, मानसतुष्ट्यै = चित्त-सन्तोषाय, नवोढा इव = नवविवाहिता तरुणीव, आस्ताम् = भूयात्, चन्द्रार्धचूडा-मणिः = अर्धशशाङ्कमौलिः, भगवान् = षडैश्वर्यादिसम्पन्नो विश्वनाथः, जनस्य = मानवसमुदायस्य, प्राणिमात्रस्येति यावत्, कल्याणम् = श्रेयः, कल्ताम् = विधत्ताम् ।

टिप्पणी—सज्जनाः = सन्तश्च ते जनाः (क० धा०); भूपाला = भुवः पालाः (ष० त०), स्वधर्मे = स्वस्य धर्मः तस्मिन् (ष० त०), मानसतुष्ट्यै = मानसस्य तुष्टिः तस्यै (ष० त०), चन्द्रार्धचूडामणिः = चन्द्रस्य अर्धः चन्द्रार्धः (ष० त०), चान्द्रार्धः चूडामणिर्यस्य सः (बहु०), शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। सज्जनाः सुहृद-मधिगच्छन्तु, देशैः लक्ष्मीः लभ्यताम्, स्वधर्मनिरताः नृपाः पृथ्वीमवन्तु, वः (युष्माकं राजपुत्राणाम्), राजनीतिः नवपरिणता वधूरिव पुण्याचारवताम् चित्त-प्रसत्तये भूयात्, भगवान् शिवः लोकस्य कल्याणं कुरुतादिति भावः ।

भावार्थः—सज्जन लोग मित्रलाभ करें, देश लक्ष्मी (सम्पत्ति-शोभा) से परिपूर्ण हों, राजा लोग अपने धर्म में स्थित होकर पृथिवी का निरंतर पालन करें, आप लोगों (राजकुमारों) की राजनीति नव विवाहिता तरुणी की तरह पुण्यात्माओं के मानस-संतुष्टि के लिए हो, आधे चन्द्रमा को शिर में धारण करनेवाले भगवान् शिव लोक का कल्याण करें ॥ २०१ ॥

इति केशवदेवशास्त्रि विरचिता 'रश्मि 'कला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।

श्लोकानुक्रमणिका

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य

प्रथमपरीक्षायाम्, तृतीयपत्रम् (प्राचीनानियमावल्यानुसारेण)

ई० सन् १९७१

१ एकः श्लोकः पूरणीयः— ५

(अ) धर्मार्थकाममोक्षाणाम्० ।
(आ) हीयते हि मतिस्तात० ।

२ एकस्य गद्यभागस्य हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः । १२

(क) अतोऽहमत्र संसदि ध्रुवं प्रतिजाने यत् 'षण्मासाभ्यन्तर एव महाकुलसम्भूतान् तव शिष्टान् सुतान् अवश्यं नीतिशास्त्राऽभिज्ञान् करिष्यामि ।'

(ख) यतश्च विदुषामन्तेवासितयैव विद्याऽधिगम्यते । यां विद्यामधीत्य कुमारी कुमारो वा सर्वथा स्वाभ्युदयं साधयति ।

३ एकस्य गद्यभागस्य हिन्दी भाषायामनुवादः कार्यः— १२

(च) ओऽत्रविषये कापि विचारणा न कर्तव्या । किञ्चेह प्रवृत्तौ नाहं किञ्चिद् दोषं पश्यामीति श्रुत्वा लोभाकृष्टाः सर्वे कपोतास्तत्रो-पविष्टाः ।

(छ) इति विचिन्त्य सर्वेपि पक्षिण ऐक्यमहात्म्यमनुस्मरन्तः परस्पर-मेकचित्तीभूय जालमादायोत्पतिताः ।

४ एकस्य गद्यभागस्य हिन्दीभाषायाम् अनुवादः कार्यः— १२

(ट) एकदा लघुपतनको हिरण्यकमाह—'सखे, कष्टतरलभ्याहारमिदं स्थानं संप्रति सञ्जातम् । तदिदं परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तु-मिच्छामि' ।

(ठ) ततोऽसौ स्वकर्मवशाच्चिराशः कटकं प्रविष्टः । मन्थरादयः च सर्वे विमुक्तापदः स्वस्थानं गत्वा सर्वसुखोपकरणसमेताः सुखेन स्थिताः ।

(त) सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च धीरत्वम्
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ॥

(थ) नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः ॥

५ एकस्य पद्यस्य हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः— १२

(प) लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् ॥
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥

(फ) सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥

६ कर्पूरतिलकगजस्य कथा हिन्दी भाषया लेखनीया— १५

७ द्वयोः पदयोरर्थः करणीयः— ५

अपसर । व्यसनेभ्यः ।

८ अस्य पद्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या विधेया— १५

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥

(नवीन नियमावल्यनुसारेण)

१ एकः श्लोकः पूरणीयः— ५

(अ) आपदर्थे धनं रक्षेत्० ।
(आ) पिता रक्षति कौमारे० ।

२ (क) लोलुपविप्रव्याघ्रकथा हिन्दीभाषायां लेखनीया— १५

अथवा

(ख) निम्नपद्ययोरर्थः हिन्दीभाषायां लेखनीयः—

मासमेकं नरो याति द्वौ मासौ मृगशूकरौ ।
अहिरेकं दिनं याति अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः ॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि॥

३ निम्नगद्यभागस्य हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः— २०

अस्ति मगधदेशे चम्पकवतीनामारण्यानी। तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेनावलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत्—आः कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि—भवतु विश्वास तावदुत्पादयामि।

अथवा

आसीत् कल्याणकटकवास्तव्यो भैरवो नाम व्याधः। स चैकदा मृगमन्विष्यमाणो विन्ध्याटवीं गतवान्। ततस्तेन व्यापादितं मृगमादाय गच्छता घोराकृतिः शूकरः दृष्टः। तेन व्याधेन मृग भूमौ निधाय शूकरः शरेणाहतः।

ई० सन् १९७२

मृग-वायस-शृगालकथा हिन्दीभाषया लेख्या। २०

अथवा

रेखाङ्कितानां पद्यानामर्थः, हिन्दीभाषया लेखनीयः—

धनवान् बलवाँल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते॥

कर्तव्यः सञ्चयो नित्यं कर्तव्यो नातिसञ्चयः।
पश्य सञ्चयशीलोऽसौ धनुषा जम्बुको हतः॥

कुसुमस्तबकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः।
सर्वेषां मूर्ध्नि वातिष्ठत् विशीर्यत वनेऽथवा॥

२ अधद्यभागस्य हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः— २०

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूट नाम्निपर्वते महान् पर्कटी वृक्षः। तस्य कोटरे दैवपाकाद् गलितनखनयनः, जरद्गवनामागृध्रः प्रतिवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किञ्चित् किञ्चिदुद्धृत्य ददति तेनाऽसौ जीवति—तेषां शावकरक्षां च करोति।

ई० सन् १९७३

१ चित्रग्रीवहिरण्यककथा हिन्दीभाषया लेख्या । २०

(अथवा)

निम्नाङ्कितानां पद्यानां हिन्दीभाषयाऽर्थो लेख्यः—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥
यस्मिन् देशे न सन्मानो न वृत्तिः न च बान्धवः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥

२ अधोलिखितगद्यभागस्य हिन्दीभाषयाऽनुवादः कार्यः— २०

अस्ति गोदावरी तीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र नानादिग्देशादागत्य-रात्रौ पक्षिणः निवसन्ति । अथ कदाचित् , अवसन्नायां रात्रौ अस्ताऽचल-चूडाऽवमम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि, लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयं अटन्तं पाशहस्तं व्याधमपश्यत् ।

अथवा

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानी । तस्यां चिरात् महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः । स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्ट-पुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेन अवलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालः अचिन्तयत्—आः ! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि ।

ई० सन् १९७४

१ चित्रग्रीवहिरण्यककथा हिन्दीभाषया लेख्या । २०

(अथवा)

निम्नाङ्कितानां पद्यानामर्थो हिन्दीभाषया लेख्यः— २०

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ता केशा नखा नराः ।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥

यस्मिन् देशे न सन्मानो न वृत्ति र्न च बान्धवः।
न च विद्यागमः कश्चित तं देशं परिवर्जयेत्॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

२ निम्नलिखितगद्यभागस्य हिन्दीभापयाऽनुवादः कार्यः— २०

अस्ति मगधदेशे, चम्पकवतीनामारण्यानी। तस्यां चिरात् महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् श्रृगालेनाऽवलोकितः। तं दृष्ट्वा श्रृगालोऽचिन्तयत्—'आः कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि।'

(अथवा)

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणः निवसन्ति। अथ कदाचिद्वसन्नायां रात्रौ, अस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयम् अटन्तं पाशहस्तं व्याधमपश्यत्।

ई० सन् १९७५

१ निम्नाङ्कितपद्येषु द्वयोरेव हिन्दीभापया अर्थो लेख्यः— २०

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

स्थान भ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्॥

अथवा

काचित् कथा हिन्दीभाषया लेख्याः—

२ निम्नाङ्कितगद्यभागस्य हिन्दीभापया अनुवादः कार्यः— २०

अति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः। नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिद् अवसन्नायां रात्रौ अस्ताचल-

चूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयम् अटन्तं पाशहस्तं व्याधम् अपश्यत्।

अथवा

अस्ति मगधदेशे चम्कवती नाम अरण्यानी। तस्यां चिरात् महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेन अवलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालः अचिन्तयत्–आः! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्ष्यामि?

ई० सन् १९७६

१ निम्नाङ्कितपद्यभागयोः हिन्दी-भाषया अनुवादः कार्यः— ४०

(क) अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानी। तस्यां चिरात् महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेन अवलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालः अचिन्तयत्—आः! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि?

(ख) अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिद् अवसन्नायां रात्रौ अस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयं अटन्तं पाशहस्तं व्याधम् अपश्यत्।

अथवा

कश्चन स्वेच्छया लघुनिबन्धः लेख्यः।

——>o<——

नवीन प्रकाशन

११ निबन्ध-चन्द्रिका (निबन्ध)। कृष्णदेव उपाध्याय (१९८७) १५-००

१२ छन्दःप्रवेशिका (छन्दःशास्त्र)। 'प्रभा' हिन्दी टीकोपेता। व्याख्याकार देवशर्मा (१९७६) ३-००

१३ सांख्यकारिका (सांख्य)। गौडपादभाष्य सहित। संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। व्याख्याकर्त्री विमला कर्णाटक (१९८५) २०-००

१४ तर्कसंग्रहः (न्याय)। 'पदकृत्य' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। चन्द्रधर शुक्ल सम्पादित। द्वि० संस्करण (१९८५) ५-००

१५ बृहदवकहडाचक्रम् अर्थात् प्राथमिक ज्योतिषम्। (ज्योतिष)। 'हेमपुष्पिका' हिन्दी व्याख्या। व्याख्याकार श्यामदेव झा (१९८५) ५-००

१६ सामान्य संस्कृत व्याकरण (रचना तथा अनुवाद) सम्पादक—रामजी उपाध्याय तथा मनोरमा तिवारी। द्वि० संस्करण (१९९०) २०-००

१७ हितोपदेश-मित्रलाभ। (नीति) 'रश्मिकला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या। व्याख्याकार केशवदेव शास्त्री, सम्पादक—कपिलदेव गिरि (१९८५) १०-००

१८ तर्क-संग्रहः (पदकृत्ययुतः)। (न्याय) मूल। सम्पादक—चन्द्रधर शुक्ल (१९८२) २-००

१९ पालि-प्राकृत-संग्रह। (पालि-प्राकृत के श्रेष्ठ पदों का संग्रह) धम्मपद के चार पाठ और कर्पूरमञ्जरी का प्रथम तथा द्वितीय जवनिकान्तर। व्याख्याकार प्रभुनाथ द्विवेदी (१९७६) १०-००

२० अमरकोषः। 'रमण' हिन्दी व्याख्या। (कोष) प्रथमकाण्ड। सम्पादक कन्हैयालाल जोशी (१९८७) ५-००

२१ माध्यन्दिन शाखीय विवाह-पद्धतिः (कर्मकाण्ड)। हिन्दी मन्त्रार्थ सहित। वेणीराम शर्मा गौड (१९८५) १०-००

२२ रघुवंश महाकाव्यम्। (काव्य) कालिदास कृत। कोलाचल मल्लिनाथ सूरि कृत संजीविनी तथा सटिप्पणी 'निर्मला' हिन्दी टीकोपेत। हिन्दी व्याख्याकार प्रभुनाथ द्विवेदी ६-७ सर्ग १०-०० १३-१४ सर्ग (१९८४) १०-०० प्रत्येक सर्ग ५-००

२३ श्रुतबोधः (छन्द)। कालिदास प्रणीत। 'करुणा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेत। कन्हैयालाल जोशी (१९८८) ५-००

२४ पञ्चतन्त्रम् (अपरीक्षितकारक पञ्चमतन्त्रम्)। (नीति)। विष्णु शर्मा विरचित। 'वीणा' संस्कृत-हिन्दी टीका। व्याख्याकार कन्हैयालाल जोशी (१९८७) १०-००

२५ संस्कृत कवि-समीक्षा (समालोचना)। अमरनाथ पाण्डेय प्रणीत तेनैव हिन्दी भाषान्तर टिप्पण्यादि संयोज्य-सम्पादित (१९७७) १५-

अन्य प्राप्तिस्थान—(१) चौखम्भा ओरियन्टालिया
बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर, दिल्ली—११० ००७
(२) चौखम्भा भारती अकादमी, खजान्ची रोड, पटना—८०० ००४